भावत्रयफलप्रदर्शी

आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

प्रकाशक :
श्रीवसु प्रकाशन
मेरठ

1. श्रीमति फूलवती जैन धर्मपत्नी श्री बाबूलाल जी जैन 35-बी सुन्दर एपार्टमेंट्स, नई दिल्ली-110087 सुपुत्र : सतीश जैन, राकेश जेन, मनोज जैन

2. श्रीमति किरण जैन

   A2/218, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

   2005 नूतन वर्ष के प्रारमी में अष्ट दिवसीय विविध विधानों के समापन अवसर पर

आयोजक :

श्री दिगम्बर जैन धर्म प्रभावना समिति (पंजीकृत)

पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

कृति : भावत्रयफलप्रदर्शी

कृतिकार : आचार्य श्री कुन्थुसागरजी

शुभाशीष : प.पू. राष्ट्र संत, सिद्धांत चक्रवर्ती दि, जैनाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी महाराज

सम्पादक : उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

सहयोगी : ऐलक श्री विमुक्त सागर जी महाराज, क्षुल्लक श्री विशंक सागर जी महाराज, क्षुल्लक श्री नित्यानंद सागर जी महाराज एवं संघस्थ सभी त्यागी-व्रती

संस्करण : प्रथम संस्करण, 2005

आवृत्ति : 1100

प्रकाशक : श्री निर्ग्रंथ ग्रंथ माला समिति

व्यवस्था राशि : अग्रिम प्रकाशन हेतु मात्र 30 रुपये

प्राप्ति स्थान : श्री निर्ग्रंथ ग्रंथ माला समिति श्री 1008 ऋष्भदेव दि. जैन मंदिर, ऋषभपुरी, टूण्डला चौराहा, टूण्डला, जिला फिरोजाबाद (उ.प्र.)

प.पू.उपाध्याय श्री 108 निर्णय सागर जी महाराज
द्वारा रचित, संपादित एवं निर्ग्रंथ ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य

1. निज अवलोकन
2. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
3. हमारे आदर्श
4. चित्रसेन पद्मावती चरित्र
5. नंगानंग कुमार चित्र
6. धम्म रसायण
7. मौनव्रत कथा
8. सुदर्शन चरित्र
9. प्रभंजन चरित्र
10. सुरसुन्दरी चरित्र
11. जिनश्रमण भारती
12. सर्वोदय नैतिक धर्म
13. चारुदत चरित्र
14. करकन्डु चरित्र
15. रयणसार
16. नागकुमार चरित्र
17. सीता चरित्र
18. योगामृत भाग-1
19. योगामृत भाग-2
20. आध्यात्मतरंगिणी
21. सप्त व्यसन
22. वीर वर्धमान चरित्र भाग-1
23. वीर वर्धमान चरित्र भाग-2
24. भद्रबाहु चरित्र
25. हनुमान चरित्र
26. महापुराण भाग-1
27. महापुराण भाग-2
28. योगसार भाग-1
29. योगसार भाग-2
30. भव्य प्रमोद
31. सदार्चन सुमन
32. तत्त्वार्थ सार
33. कल्याण कारक
34. श्री जम्बूस्वामी चरित्र
35. आराधना सार
36. यशोधर चरित्र
37. व्रतकथा संग्रह
38. तनाव से मुक्ति
39. उपासकाध्ययन भाग-1
40. उपासकाध्ययन भाग-2
41. रामचरित्र भाग-1
42. रामचरित्र भाग-2
43. नीतिसार समुच्चय
44. आराधना कथा कोश भाग-1
45. आराधना कथा कोश भाग-2
46. आराधना कथा कोश भाग-3
47. दशामृत
48. सिन्दूर प्रकरण
49. प्रबोधसार
50. शान्तिनाथ पुराण भाग-1
51. शान्तिनाथ पुराण भाग-2
52. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
53. सम्यक्त्व कौमदी
54. धर्मामृत भाग-1
55. धर्मामृत भाग-2
56. पुण्यवर्धक
57. पुण्यास्त्र कथा कोश भाग-1
58. पुण्यास्त्र कथा कोश भाग-2
59. चौंतीस स्थान दर्शन
60. अमरसेन चरित्र
61. सार समुच्चय
62. दान के अचिन्त्य प्रभाव
63. पुराण सार संग्रह भाग-2
64. पुराण सार संग्रह भाग-1
65. आहार दान
66. सुलोचना चरित्र
67. गौतम स्वामी चरित्र
68. महीपाल चरित्र
69. जिनदत्त चरित्र
70. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
71. चेलना चरित्र
72. धन्यकुमार चरित्र
73. सुकुमाल चरित्र
74 कुरल काव्य
75. धर्म संस्कार भाग-1
76. प्रकृति समुत्कीर्तन
77. भगवती आराधना
78. निर्ग्रंथ आराधना
79. निर्ग्रंथ भक्ति
80. कर्मप्रकृति
81. पूजा-अर्जना
82. नौ-निधि
83. पंचरत्न
84. व्रताधीश्वर-रोहिणी व्रत
85. तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
86. रत्नकरण्डक श्रावकाचार
87. तत्त्वार्थ सूत्र
88. छहठाला
89. छत्रचूडामणी (जीवंधरचरित्र)
90. धर्म संस्कार भाग-2
91. गागर में सागर
92. स्वाति की बूँद
93. सीप का मोती (महावीर जयन्ती प्रवचन)
94. भावत्रयफल प्रदर्शी
95. सच्चे सुख का मार्ग
96. तनाव से मुक्ति भाग-2

''आद्य वक्तव्य''

–उपाध्याय मुनि मुनि निर्णय सागर

संसारी प्राणियों में मुख्य रूप से तीन प्रकार के भाव पाए जाते हैं। अशुभ, शुभ और शुद्ध। जिस समय जीव जिस परिणाम के परिणत है, उस समय वह उसी परिणाम का कर्ता है, उस भावानुसार उसे उसी प्रकार कर्म बंध हेाता है। बिना परिणाम वाला कोई जीव ही नहीं होता। आचार्य भगवन् कुंद कुंद स्वामी जी कहते हैं-

णत्थि विणा परिणामं अण्थो अत्थं विणेह परिणामो।

दव्ब गुण पज्जयत्थे अव्त्थद्दो अत्थित्तणिव्ववत्तो।।10।। प्रवचनसार

आ. कुंद कुंद स्वामी

अर्थ - इस लोक में पर्याय के बिना पदार्थ और पदर्थ के बिना पर्याय नहीं होती है।

पदार्थ - द्रव्य, गुण और पर्याय में रहने वाला तथा अस्तित्व से बना हुआ है।

संसार में ऐसा काई जीव नहीं जिसमें परिणाम नहीं होते हों, उन परिणामों से परिणत आत्मा व्यवहार में उसी संज्ञा को प्राप्त हो जाती हे, जैसे पुण्य रूप परिणत आत्मा को पुण्यांत्मा, पाप रूप परिणत आत्मा पापात्मा, धर्म रूप परिणत आत्मा को धर्मात्मा एवं महान् कार्यों रूप परिणत आत्मा महात्मा कहलाती है। आचार्य भगवन् कुंद कुंद स्वामी जी कहते हैं-

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं पण्णत्तं।

त्महा धम्म परिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो।।8।। प्रवचनसार

अर्थात् द्रव्य जिस समय जिस भाव से परिणत होता है उस समय

(उस रूप) ही होता है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है, अतः धर्म परिणत आत्मा को धर्म ही मानना चाहिए।

यदि आत्मा अशुभ उपयोग से युक्त है तो उसमें पापास्त्रव की प्रचुरता होती है, कदाचित् शुभयोग से भी पुण्ययास्त्रव कर सकता है। तथा शुभ उपयोग ये युक्त आत्मा में पुण्यास्त्रव भी होता है। पाप संवर की प्रचुरता, पूर्वबद्ध कार्यों की निर्जरा भी होती है। शुद्ध उपयोग से युक्त आत्मा में संवर व निर्जरा तत्व की मुख्यता होती है। किंचित् उत्कृष्ट पुण्यास्त्रव भी होता है। यह अशुभ उपयोग प्रथम (मिथ्यात्व) गुणस्थान से घटता हुआ तृतीय (सम्यक्मिथ्यात्व) गुणस्थान तक रहता है तथा शुभापयोग चतुर्थ (अविरत्सम्यक्दृष्टि) गुण स्थान लेकर वृद्धि को प्राप्त षष्ठम् (प्रमत विरत) गुणस्थान तक रहता है। तथा शुद्धोपयोग सातवें (अप्रमत विरत) गुण स्थान से लेकर बारहवें (क्षीण कषाय) गुण स्थान तक बढ़ता हुआ होता है। इसके आगे सयोग केवली जिन व अयोग केवलीजिन ये दो गुण स्थान शुद्धोपयोग के फलस्वरूप हैं।

आचार्य भगवन् कुंद-कुंद स्वामी जी ने कहा है-

जीवोपरिणमदि जदा सुहेण वा सुहो असुहो।

सुद्धेण तहा सुद्धो हवादि हि परिणाम सब्भावो।।9।। प्रवचनसार

अर्थ - परिणाम स्वभापी हाने से जीव जब शुभ, अशुभ या शुद्ध रूप से परिणमन करता है, तब वास्तव में वह शुभ, अशुभ व शुद्ध होता है।

आचार्य भगवन् कुंद कुंद स्वामी जी ने उपयोग के बारे में लिखा है-

असुहादोणिरयादो सुहभावादो सग्ग सुहमाऊ।

दुह सुहं भावं जाणदि, जं ते रूच्चइ तं कुणहो।।62।। रयणसार

अर्थ - अशुभ भावों से नरकादि आयु का तथा शुभ भावों से स्वर्ग

सुख की प्राप्ति व स्वर्ग आयु (देव आयु) का बंध होता है। दुःख सुख रूप दोनों भावों को जानकर जो तुम्हें रुचिकर लगे वही करो और भी कहते हैं-

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपयोग जुरो।

पावदि णिव्वाणं सुहं सुहोवजुत्तो य सग्ग सुहं।।11।।प्र.सा.

अर्थ - धर्म परिणत आत्मा यदि शुद्धोपयोगी होता है तो मोक्ष सुख प्राप्त करता है तथा यदि शुभोपयोगी होता है तो स्वर्ग सुख को प्राप्त करता है।

असुहोदएण आदाकुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।

दुक्ख सहस्सेहिं सदा अभिदो भमदि अच्चंतं।। प्र.सा.

अर्थ - अशुभ कर्म के उदय से आत्मा कुमनुस्य, तिर्यंच और नारकी होकर हजारो दुःखों से हमेशा दुःखी होता हुआ (संसार में) अत्यंत (अनंत काल तक) भ्रमण करता है।

अइसयमाद समुत्थं विसयातीदं अण्णोवममणंतं।

अवुच्छिण्णं च सुहं, सुद्धवओगप्प सिद्धाणं।।13।। प्र.सा.

अर्थ - शुद्धोपयोग से प्रसिद्ध जीवों के अतिशय, आत्मोत्पन्न, विषयातीत, अनुपम, अनंत और अखण्डित सुख होता है। वह शुद्धोपयोग, पदार्थों औश्र सूत्रों को अच्छी तरह जानने वाले, संयम और तप से सम्पन्न, रागादि से रहित, सुख-दुख में समभावी श्रमण (मुनि महाराज) में होता है।

प्रस्तुत ग्रंथ "भावत्रय फल प्रदर्शी" में विस्तार के साथ अशुभोपयोग से प्राप्त होने वाले विविध प्रकार के दुःखों का वर्ण किया है। किस प्रकार का कार्य करने से कौन-से कर्म का बंध होता है। अधिकांशतः प्राणियों को यह जानने की तीव्र इचछा रहती है कि मैंने पूर्व भव में ऐसे कौन-से कार्य किये जिनसे यह दुःख मिला है। चतुर्थ काल में तो अवधि-

ज्ञानी, मनः पर्यय ज्ञानी व केवलज्ञानी मुनिराज होते थे। प्रत्यक्ष में देखकर उस जिज्ञासु भव्य जीव के पूर्वभव बता देते थे। वर्तमान काल में ऐसे प्रत्यक्ष ज्ञानी मुनिराज हैं, नहीं, किन्तु उन प्रत्यक्ष ज्ञानी मुनिराज तीर्थंकरों की वाणी हमारे पा है जिसके माध्यम से जाना जा सकता है कि उस जीव ने पूर्व भव में किस प्रकार के कर्म किये हैं अच्छे या बुरे कर्म किये हैं। जिससे वह रोगी, कुरुप, अंधा, बहरा, लंगडा, लूला, काणा, संतानहीन, दुःखी, शोकाकुल, धूर्त, दुष्ट संगति, इष्ट वियोग, वैधव्योग, अपमान, तिरस्कार, अतिभोजी, दास, स्त्री, नपुंसक, अंगहीन, नीचकुलीन आदि अवसथाओं को प्राप्त हुआ है। इसका विस्तृत वर्णन इसी ग्रंथराज में विस्तार के साथ लिखा है तथा शुभापयोग के फल से जीव, धर्मात्मा, बुद्धिमान, सुन्दर, सर्वप्रिय, निपरोगी, दीर्घजीवी, निर्भय उदार, दानी, कुशलवक्ता, स्वतंत्र, सौम्य मूर्ति, समताधारी, संयमी, व्रती, सुजनयुक्त, आज्ञाकारी पुत्र, मनोनुकूल पत्नी, उत्तमोत्तम भोग, परिमित वैभव को प्राप्त होता है तथा शुद्धोपयोग से जीव किस प्रकार सकल कर्मों का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त करता है। इत्यादि विषयों का वर्णन इस ग्रंथराज में ही है।

प्रस्तुत गंथ की रचना पं.पू. चक्रवर्ती आचार्य श्री शांति सागर जी महाराज के सुयोग्य शिष्य आचार्य श्री कुंथु सागर जी महाराज ने की है। इनका जन्म कर्नाटक प्रांत के बेलगाँव जनपदस्थ ऐनापुर नगर में श्रीमान सातप्पा व श्रीमती सरस्वती जी के यहाँ वी.नि.ज. 2420 में हुआ, आप जन्म नाम रामचन्द्र व जाति चतुर्थ थी। आप उत्तम कोटि के कषाय विजयी व परिषहजयी उत्कृष्ट कोटि के विद्वान संत थे जिन्होंने विपुल मात्रा में संस्कृत भाषा में जैन वामय की रचना की है।

प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन सहयोगी श्री निर्ग्रंथ ग्रंथ माला समिति तथा ऐलक जी, युगल छुल्लक जी महाराज व त्यागी व्रती रहे,द एतदर्थ उन्हे धर्म वृद्धि, समाधिरस्तु आशीर्वाद। ग्रंथ के लिए मुनि श्री शिवसागर जी प्रेरित किया उन्हें प्रति नमोस्तु। वे इसी तरह प्रेरित करते रहेंगे। उनके प्रति मेरी यही भावना है। अपने द्रव्य का सुदपयोग करने वाले श्रावकों को

(सपरिवार) को हमारा धर्मवृद्धि शुभाशीष इसके हिंदी अनुवाद स्व0 पण्डित लाला राज जी ने किया था। उन्हें भी धर्म वृद्धि आशीर्वाद जिन्होंने माँ सरस्वती की सेवा में अपने त्रैयोगों को लगाकर जीवन सार्थक किया। सभी पाठक गण इस ग्रंथ को हंसवत् गुणग्राही दृष्टि बनाकर विनयपूर्वक आद्योपांत स्वाध्यान करें, ऐसी विनम्र भावना के साथ,

अलमतिविस्तरेण

ॐ ह्री नमः

श्री शुभमित्ते पौष बदी 5 शनिवार
वि.नि.सं.-2531, वि.स. 2061
श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर
पश्चिम विहार, दिल्ली

जिनचरणानुचरः समानुरक्तः
कश्चिदल्पज्ञ निग्रंथः पाठकः
01/01/2005
पश्चिम विहार, दिल्ली

अनुक्रमणिका

विषय	पृ.सं

प्रथम अध्याय

मंगलाचरण	1
शोक का कारण	3
निर्धनता का कारण	5
अनादर का कारण	7
दुष्ट स्त्री प्राप्त होने का कारण	9
दुष्ट पति प्राप्त होने का कारण	10
मलमूत्रादिकमें जनम लेने का कारण	12
धन कुटुंबके त्योग न करने का कारण	13
अंधे होने का कारण	14
लूले-लगड़े अपांग होने का कारण	16
व्याध योनि में जन्म लेने का कारण	17
कुपुत्री प्राप्त होने का कारण	17
ठग उत्पन्न होने का कारण	17
बहरा उत्पन्न होने का कारण	17
गूंगा हाने का कारण	17
धूर्त होने का कारण	
रोगी होने का कारण	
दुःखदायी कुटुंब की प्राति का कारण	
दुष्ट स्वभाव होने का कारण	
भयभीत होने का कारण	

अशक्त होने का कारण

कृपण हाने का कारण

मूर्ख होने का कारण

पराधीन होने काकारण

भोगोपभोग सामग्रीके रहते भी उपयोग न करे का कारण

कुरुष होने का कारण

निंदनीय होने का कारण

आदर सत्कार प्राप्त न होने का कारण

शस्त्रादिक से मरने का कारण

चोर होने का कारण

पुत्रवियोग का कारण

भाईयों के विरोध का कारण

माता और पुत्र के विरोध का कारण

गर्भ मे आये हुए भाग्यहीन पुत्र की पहिचान

पिता पुत्र के विरोध का कारण

लंगड़ा होने का कारण

नरक जाने का कारण

छोटा वामनशरीर धारण करने का कारण

पशुयोनि प्राप्त करने का कारण

कुभोगभृमि में उत्पन्न होने का कारण

कुग्रामवासी होने का कारण

निर्धनता का न्य कारण

कुन्सितकाव्यमें चतुरताका कारण

अधिक भारवाही होने का कारण

दीर्घायु पाकर भी महादुःखी होने का कारण

नपुंसक होने का कारण

विकलत्रय होने का कारण

दास होने का कारण

स्त्री पर्याय होने का कारण

स्थावरशरीर धारण करने का कारण

अंगहीन होने का कारण

नीच कुल में उत्पन्न होने का कारण

उच्च कुल में उत्पन्न होकर भी धनहीन होने का कारण

जीविकाके लिए भ्रमण करने का कारण

छलपूर्वक जीविका प्राप्त होने का कारण

घर घर बिकने वाला पशु होने का कारण

एक साथ अनेक जीवों की मृत्यु का कारण

स्त्री व पुरुष को देखकर कामोत्पत्तिका कारण

क्रोध उत्पन्न होने का कारण

एक साथ अनेक जीवों के रोगी होने का कारण

रोग शांत न होने का कारण

गर्भपात होने का कारण

कुव्यसनोंमे धन खर्च होने का कारण

मरकर कुत्ता होने का कारण

मरकर बिल्ली होने का कारण

सिंह पर्याय प्राप्त होने का करण

श्रृगाल पर्याय प्राप्त होने का कारण

शीलव्रतों के भंग करने का कारण

गाय की पर्याय प्राप्त होने का कारण

भैंस की पर्याय प्राप्त होने का कारण

बकरा होने का कारण

कौवा होने का कारण

दुष्ट होने का कारण

व्यभिचारी होने का कारण

पागल होने का कारण

बंदीगृह में पड़ने का कारण

उत्पन्न होते ही मर जाने का कारण

निंदनीय होने का कारण

अपमृत्यु होने का कारण

धन-घर आदि के जल जाने का कारण

स्त्री पुत्रादिकके वियोग का कारण

धन नाश होने का कारण

कंठमाला होने का कारण

ऊँट की पर्याय प्राप्त होने का कारण

हाथी की पर्याय प्राप्त होने का कारण

जोंककी पर्याय प्राप्त होने का कारण

उल्लू पक्षी की पर्याय प्राप्त होने का कारण

डांस, मच्छर की पर्याय प्राप्त होने का कारण

सर्प की पर्याय प्राप्त होने का कारण

बिच्छू की पर्याय प्राप्त होने का कारण

चिड़िया की पर्याय प्राप्त होने का कारण

तोते की पर्याय प्राप्त होने का कारण

वृक्ष की पर्याय प्राप्त होने का कारण

मयूर की पर्याय प्राप्त होने का कारण

बंदर की पर्याय प्राप्त होने का कारण

साधर्मियों के साथ विवाह करने का कारण

घर गृहस्थीसे रहित होने का कारण

कीड़े-मकोड़े की पर्याय प्राप्त होने का कारण

शक्तिहीन होने का कारण

श्रेष्ठकार्य करने पर भी निंदा होने का कारण

सत्कार्य करने पर भी धनादिक की हानि होने का कारण

वर्षा न होने का कारण

पुण्यकार्य करने वालों के विरोध करने का कारण

विपरीतबुद्धि होने का कारण

इस अध्याय के पठन-पाठन का अभिप्राय

इस अध्याय का सारांश

भावों की दुष्टता और चिनके विकारों का कारण

इस अध्याय का उपसंहार

दूसरा अध्याय

शुभोपयोग का फल

सुपुत्रों की प्राप्ति का कारण

सुयोग्य धार्मिक पति प्राप्त होने का कारण

सुपुत्री प्राप्त होने का कारण

श्रेठ पत्नी प्राप्त होने का कारण

संयमी होने का कारण

शोकरहित सुखी रहने का कारण

अनेक जीवों के स्वामी होने का कारण

निरोग शरीर प्राप्त होने का कारण

नीतिमान बलवान होने का कारण

समताभाव प्राप्त होने का कारण

धर्मात्मा होने का कारण

निर्भय होने का कारण

उदार होने का कारण

वक्ता होने का कारण

स्वतंत्र होने का कारण

सुंदर शरीर की प्राप्ति का कारण

संसार में मान्य होने का कारण

ज्ञानी व्रती होने का कारण

भाई-बंधुओं में प्रेम होने का कारण

बिछुड़े हुए पुत्र की प्राप्ति का कारण

पिता पुत्र के स्नेह का कारण

गर्भ में सुपुत्र होने का चिह्न

इच्छानुसार पदार्थों की प्राप्ति का कारण

देवपर्याय प्राप्त होने का कारण

मनुष्यपर्याय प्राप्त होने का कारण

भोगभूमि मनुष्य होने का कारण

आर्यखंड में उत्पन्न होने का कारण

अल्पभोजी होने का कारण

व्यवहारचतुर होने का कारण

कवि होने का कारण

दीर्घायु पाकर भी सुखी होने का कारण

पूर्ण अंग-उपांग प्राप्त होने का कारण

श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होने का कारण

स्थिरजीविका प्राप्त होने का कारण

नीच कुल में उत्पन्न होने पर भी धन राज्य आदि की प्राप्ति का कारण

सत्यताके साथ आजीविका चलने का कारण

अनेक जीवोका एक साथ सुखी होने का कारण

अनेक जीवों के एक साथ मोक्ष जाने का करण

पशुपक्षी मनुष्य में परस्पर प्रेमका कारण

दुःख में सहायक होने का कारण

धर्म में धन खर्च करने का कारण

श्रुतज्ञानी होने का कारण

शीलवान होने का कारण

सर्वप्रिय होने का कारण

घर-घर मंगल गान होने का कारण

मिष्टवाणी प्राप्त होने का कारण

संतोष और शांति के लाभ का कारण

पाप कार्यों से होने वाली धनवृद्धि का कारण

देवों के दास होने का कारण

खर्च करने पर भी धनकी वृद्धि का कारण

सर्वत्र कीर्ति फैलने का कारण

मनोज्ञ शरीर प्राप्त होने का कारण

श्रेष्ठ मनुष्यों में भी माननीय होने का कारण

पापानुबंधी पुण्य का कारण

पुण्यानुबंधी पुण्य का कारण

परस्पर शांति का कारण

सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न होने का कारण

तीर्थकर होने का कारण

अध्याय उपसंहार

तीसरा अध्याय

आत्माके शुद्ध स्वरूप का निरूपण

अनुभूतिके स्वामी होने का कारण

मन-वचन-काय की सरलताका कारण

मन पर्यायज्ञान का कारण

केवल ज्ञान होने का कारण

आत्मा के शुद्ध स्वरूप में अनुराग का कारण

स्वभाव से ही शुद्ध आत्मा में लीन होने का कारण

शुद्धाशुद्ध निश्चयनयसे सप्त तत्त्वों का निरूपण और सबसे शुद्ध

आत्मा की भिन्नता तथा जीव तत्त्वका निरूपण

अजीवतत्त्व और आत्मा की भिन्नता

आस्त्रव तत्त्व और उससे आत्मा की भिन्नता

बंध तत्त्व और उससे आत्मा की भिन्नता

संवर तत्त्व और उससे आत्मा की भिन्नता

निर्जरा तत्त्व और उससे आत्मा की भिन्नता

मोझ तत्त्व और उससे आत्मा की भिन्नता

सप्त तत्त्वों के कथन का उपसंहार

याचना करने पर भी स्वधन की प्राप्ति न होने का कारण

शुद्ध चैतन्यस्वरूप सुखके बिना समस्त क्रियाओं का निरर्थकपना

शुद्धोपयोग का विशेष वर्णन

शुद्धोपयोग की सिद्धि के लिए छहों द्रव्यों का निरूपण

जीवों की अवगाहना

शुद्धोपयोग की प्राप्ति के लिए स्वीकार करने योग्य धर्म

शुद्धोपयोग के लिए विचार

बाह्यपदार्थों के त्याग से लाभ का अभाव

ध्याता-ध्यान-ध्येय का स्वरूप

शुद्धोपयोग की भावना

शुद्धोपयोग धारण करने वाला कुछ बोलता है या नहीं

यथार्थ विजयी का स्वरूप

आत्मा का आधारधेय

विश्वधर्म का निरूपण

ध्यान का फल

संक्षेप से अशुभोपयोग-शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का फल

ग्रंथ का सारांश

ग्रंथ का उपसंहार,

प्रशस्ति

अन्तिम मंगल

आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागरविरचित

भावत्रयफलप्रदर्शी

मंगलाचरण

ज्ञानादित्यं जिनं नत्वा श्रीदं सर्वप्रकाशकम्।

भक्त्या शान्तिसुधर्मौं च ज्ञानवैराग्यवर्द्धकौ।।1।।

भावत्रायाणां हि फलप्रदर्शी, ग्रन्थो मयायं कलात्मिशुद्ध्यै।

विरच्चते स्वत्मरतेन शुद्धया, श्रीकुंथुनाम्ना वरसूरिणेति।।2।।

महावीर जिनराज के चरण नमूँ चित लाय।

भावत्रयफलदर्शकी टीका लिखूँ बनाया।।

अर्थ- जो जिनेन्द्रदेव आत्मज्ञान को प्रकाशित करने के लिये सूर्य के समान है, अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी को देने वाले हैं और जो समस्त तत्तवों को प्रकाशित करने वाले हैं ऐसे भगवान् जिनेन्द्र देवको मैं सबसे पहले नमस्कार करता हूँ। तदनंतर मैं वैराग्य बढ़ाने वाले और जैनेश्वरी दीक्षा देने वाले आचार्यवर्य दीक्षागुरु श्री शांतिसागर आचार्यको नमस्कार करता हूँ और अंत में ज्ञान की वृद्धि करने वाले विद्यागुरु आचार्य सुधर्मसागर को नमस्कार करता हूँ। इन इसको भक्तिपूर्वक नमस्कार करने के अनंतर अपने आत्मा में लीन रहने वाला और श्रेष्ठ आचार्य ऐसा मैं श्रीकुंथुसागर स्वामी अपने मन, वचन, कायकी शुद्धतापूर्वक समस्त भव्य-जीवों की आत्माओं को शुद्ध करने के लिये तीनों भावों के फलको दिखलाने वाले इस ग्रंथ का निरूपण करता हूँ।

भावार्थ- जिस प्रकार इस संसार में समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाला सूर्य है उसी प्रकार शुद्ध आत्मा के स्वरूप को वा शुद्ध आत्मा के शुद्ध बोध को प्रकाशित करने वाले भगवान् जिनेन्द्र ही है। इसका हभ

कारण यह है कि भगवान् जिनेन्द्रदेव अपने अगाध तपश्चरण के द्वारा उसी आत्मज्ञान को प्राप्त होकर सर्वदर्शी सर्वज्ञ बन गये हैं साथ ही वे निरुपम परमवीतराग भी हैं। यही कारण है कि वे भगवान् जिनेन्द्रदेव आत्मज्ञान के स्वरूप का पूर्ण उपदेश देते हैं तथा वीतरांग होने के कारण यथार्थ स्वरूप का उपदेश देते है। इसलिए वे भगवान् ज्ञानभानु कहलताते हैं। इसके सिवाय वे भगवान् अनंतज्ञान, अनंतदर्श, अनंतसुख और अनंतवीर्यरूप अनंतचतुष्टयरूप अंतरंग लक्ष्मी को स्वयं धारण करेते हैं और उनकी सेवा करने वाले भव्यजीवों को प्रदान करते हैं। यहाँ पर प्रदान करने का अर्थ देना नहीं है, किन्तु जो भव्य जीव भगवान् जिनेन्द्र देव की सेवा भक्ति करते हैं, उनके गुणों को स्मरण कर उनका ध्यान करते हैं वे भव्यजीव अपने कर्मों को नष्टकर स्वयं जिनेन्द्र बन जाते हैं। यहद वे भव्यजीव भगवान् जिनेन्द्र देव के गुणों का ध्यान नहीं करते तो उनके कर्मों का नाश कभी नहीं होता। तथा बिना कर्मों को नाश किये वे कभी जिनेन्द्र पद को प्राप्त नहीं हो सकते। इस प्रकार वे भव्य जीव जो जिनेन्द्रपद को प्राप्त हुए हैं उसमें भगवान् जिनेन्द्र देव के गुणों का ध्यान करना ही कारण पड़ता है और इसीलिए उस अनंतचतुष्टय रूप लक्ष्मी को वा जिनेन्द्र पदको देने वाले भगवान् जिनेन्द्रदेव हैं ऐसा कहा जाता है। भगवान् जिनेन्द्रदेव के जिस प्रकार अंतरंग लक्ष्मी को देने वाले हैं उसी प्रकार समवसरण आदि बाह्म लक्ष्मी को देने वाले हैं। तथा सर्वज्ञ औश्र सर्वदर्शी होने के कारण जीव, अजीव, रूपी, अरूपी आदि समस्त तत्त्वों को प्रकाशित करने वाले है। ऐसे भगवान् जिनेन्द्र में नमस्कार करता हूँ। तदनंतर मैं दीक्षागुरु और विद्यागुरु दोनों आचार्यों को नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार विघ्नशांति के लिए देव और और गुरु को नमस्कार कर मैं इस ग्रथं का निर्माण करता हूँ।

इस संसार में जितने संसारी जीव है उन सबके परिणाम तीन प्रकार के होते हैं। कितने ही जीवों के परिणाम अशुभ होते है, कितने ही जीवों के परिणाम शुभ होते हैं और कितने ही योगी व महायोगियों के परिणाम शुद्ध होते हैं। मुक्तजीवों के परिणाम सदा शुद्ध ही होते है। इस

ग्रंथ में तीनों प्रकार के परिणामों का फल दिखलाया है और इसलिए इस ग्रंथ का नाम **'भावत्रयफलप्रदर्शी'** रक्खा है। इन तीनों प्रकार के परिणामों के फल को जानकर भव्यजीव अशुभ परिणामों का त्याग कर दें, शुभ परिणामों को धारण करें और फिर शुद्ध परिणामों का अभ्यास करते हुए शुभपरिणामों का भी त्याग कर शुद्धपरिणामों का अभ्यास करते हुए शुभपरिणामों का भी त्याग कर शुद्धपरिणामों को धारण करें यही इस ग्रंथ की रचना का प्रयोजन है। यहाँ पर इतना समझ लेना चाहिये कि अशुभपरिणामें से पाप कर्मों का आस्त्रव होता है शुभ परिणामों से पुण्यकर्मों का आस्त्रव होता है। पाप कर्मों से नरकादिक की प्राप्ति होती है और पुण्य कर्म से स्वर्गादिक की प्राप्ति होती है, परंतु स्वर्ग व नरक दोनों में परिभ्रमण करना संसार है, इस संसार का त्याग शुद्ध परिणामों से होता है। इसीलिए शुभपरिणामों का भी त्याग कर शुद्ध परिणाम धारण करने का उपदेश दिया जाता है मोक्षकी प्राप्ति शुद्ध परिणामों से ही होती है इसलिए शुद्ध परिणाम ही आत्म का वास्तविक हित करने वाले परिणाम हैं। उन शुद्ध परिणामों को धारण कर भव्यजीव अपने आत्मा का कल्याण करों व अपनी आत्मा को शुद्ध करें यही इस ग्रंथ के पठन-पठन करने का **फल है।**

इस पहले अध्याय में अशुभोपयोग का फल दिखलाते हैं, और वह भी प्रश्नोत्तर रूप से दिखलाते हैं-

सबसे पहले शोक का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव। कसमात्।

प्राप्नोति शोकं सततं व्यथादम्।।

अर्थ- हे देव! अब कृपाकर मुझे यह बतलाइये कि यह संसारी जीव किस पाप कर्म के उदय से सदाकाल दुःख देने वाले शोक को प्राप्त होता रहता है?

उत्तर- शोकेन दग्धान् मनुजान् विलोक्य,

वा द्वेषबुया परिपीडयित्वा।

उत्पाद्य बैरं हृदि यश्च तुच्येत्,

प्रापनोति शोकं मनुजः स पश्चात्।।3।।

अर्थ- जो मनुष्य शोक से दग्ध हुए मनुष्यों को देखकर संतुष्ट होता है, अथवा जो मनुष्य किसी द्वेषबुद्धि से अन्य जीवों को दुःख देता है, अथवा जो मनुष्य अपने हृदय में किसी के साथ वैर विरोध कर संतुष्ट होता है वह मुनष्य इन कार्यों के करने के अनंतर अथवा मरने के अनंतर शोक को प्राप्त होता है।

भावार्थ- मनुष्यों को जो शोक वा संताप होता है वह असाता वेदनीय कर्म के उदय से होता है तथा असाता वेदनीयकर्म का आस्त्रव स्वयं शोक संताप करने से होता है अथवा दूसरों को शोक संताप उत्पन्न करने से होता है अथवा स्वयं शोक संताप करने और दूसरों को भी शाक संताप उत्पन्न करने से होता है। जब यह जीव किसी जीव को शोक से व अन्य किसी प्रकार के दुःख देकर व मारकर अथवा अन्य जीवों की किसी भी प्रकार की हानि करके प्रसन्न होता है अाि किसी के साथ वैर-विरोध करके प्रसन्न होता है तब उस जीव के असाता वेदनीय कर्म का आस्त्रव होता है। उस आस्त्रव के अनंतर समय में उन आए हुए असाता वेदनीय कर्मों का बंध हो जाताहै और वह बंध को प्रापत हुआ कर्म जब उदय में उत्पन्न होता है। यही समझकर प्रत्येक जीव को किसी जीव को सताना नहीं चाहिये, किसी जीव को किसी प्रकार का दुःख नहीं देना चाहिए और किसी के साथ किसी भी प्रकार का वैर विरोध नहीं करना चाहिए। आत्मा के सुख का यही सर्वोत्तम उपाय है।

निर्धनता का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कर्मोदयाद्देव धनेन हीनः।

कस्मात्प्रभोऽयं भवतीह जीवः।।

अर्थ- हे देव! हे प्रभो! यह संसारी जीव किस कर्म के उदय से व कैसे काम करने से धनहीन होता है?

उत्तर- व्ययं सुपात्रे न धनस्य कृत्वा,

हठाद्धनं यश्च परस्य हत्वा।

तुष्येत्परं वा कृपणं च दृष्ट्वा,

हीनो धनैश्चान्यभवे भवेत्साः।।4।।

अर्थ- जो पुरुष सुपात्रों कें लिए अपना धन खर्च नहीं करते, अथवा जो पुरुष बलपूर्वक दूसरों के धनको हरण कर लेते हैं, अथवा जो पुरुष अन्य कृपणों को देखकर संतुष्ट होते हैं, ऐसे पुरुष दूसरे भवमें जाकर धनहीन होते हैं।

भावार्थ- धनकी प्राप्ति दान से होती है। जो पुरुष पात्रदान किया करते हैं उनको भोगभूमि की प्राप्ति होती है। भोग-भूमि में धनकी चिन्ता ही नहीं करनी पड़ती। वहाँ पर कल्पवृक्षों से इच्छानुसार पदार्थों की प्राप्ति होती रहती है अथवा पात्रदान देने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। स्वर्ग में भी धनकी चिंता नहीं करनी पड़ती, वहाँ पर भी कल्पवृक्ष हैं अनेक प्रकार की विभूतियाँ हैं और मानसिक आहार है। देवों को जब भूख लगती है तभी उनके कंठ से अमृत झर पड़ता है। इस प्रकार वे देव भी सर्वथा निश्चित रहते हैं। मनुष्यों में जो धनी देखे जाते हैं उनको भ धनकी प्राप्ति पूर्वजन्म में दिये हुए दान के फल से ही होती है। अतएव यदि पुरुषों काक आगे के जन्म में भी धन प्राप्त करना हो तो उनको भी सदाकाल पात्रदान में ही अपना धनखर्च करना चाहिये। दान देने में भी पात्र-अपात्र व कृपात्र का विचार अवश्य करना चाहिये। कुपात्र व अपात्रों को दिया हुआ धन श्रेष्ठ दान नहीं कहलाता, उस दान का फल दुःखरूप ही होता है। इसलिए पात्रों को दिया हुआ दान ही श्रेष्ठ दान कहलाता है। जो पुरुष रत्नत्रयसे पवित्र हैं उनको पात्र कहते है। उनमें रत्नत्रयसे सुभोभित मुनि उत्तमपात्र कहलाते हैं, व्रती श्रावक मध्यमपात्र कहलाते हैं और सम्यग्दृष्टि अव्रती श्रावक

जघन्यपात्र कहलाते हैं। ये सब पात्र धर्मपात्र कहलाते हैं। इनको आवश्यकतानुसार दान दिये देना चाहिये। मुनियों का आहारदान, शास्त्रदान, पिछी, कमंडलु, औषध आदि देना चाहिए। ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिका, क्षुल्लिका, ब्रह्मचारी आदि को आवश्यकतानुसार आहारदिक व वस्त्रादिक देना चाहिये। श्रावकों को आहारदान आदि समानदान देना चाहिए अथवा उनकी आवश्यकताको समझना देना चाहिए। किसी किसी श्रावक को धर्म की दृढता के लिए, धन, वर्तन, वस्त्र आदि भी दिए जाते हैं। इस प्रकार धर्म पर श्रद्धा रखकर दान देने से धनकी प्राप्ति होती है। जो पुरुष धन पाकर भी पात्रदान नहीं करते उनका धन व्यर्थ ही समझना चाहिये। ऐसा धन जले हुए बीज के समान है। जैसे जले हुए बीज से दूसरा अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता उसी प्रकारबिना पात्रदान दिए दूसरे जन्म में जन्म में धनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। तथा बिना धनके वह फिर पात्रदान आदि पुण्यकार्य नहीं कर सकता। इस प्रकार वह पुरुष जन्म-जन्मांतर तक निर्धन बना रहता है।

इसी प्रकार जो पुरष बलपूर्वक दूसरों का धन छीन लेता है। वह भी अगले जन्म में निर्धन ही होता है। क्योंकि धन छीनने वाला तो पात्रदानादिक कर ही नहीं सकता तथा धन छीन लेने के साथ-साथ उस धनी के पात्रदान आदि पुण्यकार्यों को भी दीन लेता है। क्योंकि धन छिन जाने के कारण वह धनी भी पात्रदानादिक नहीं कर सकता। इस प्रकर धन छीननेवाला पुरुष आने पुण्यकर्म को भी रोकता है। और दूसरों के पुण्य कर्म को भी रोकता है। फिर भला ऐसा पुरुष निर्धनी क्यों नहीं हो सकता? अवश्य होता है। इसी प्रकार जो पुरुष कृपण को देखकर संतुष्ट होता है। वह भी निर्धनी ही होता है क्योंकि दान धर्म में खर्च न करने वाला मनुष्य ही कृपण कहलाता है। ऐसे कृपण मनुष्य को देखकर दानी पुरुष तो कभी प्रसन्न नहीं हो सकता उसको देखकर तो दान धर्म में खर्च न करने वाला कृपण मनुष्य ही प्रसन्न हो सकता है और इसीलिए ऐसा मनुष्य परलोक में अवश्य निर्धनी होता है।

यहाँ पर इतना और समझ लेना चाहिये कि धनकी गति ही तीन होती है। पहली गति दान, दूसरी गति भोग और तीसरी गति नाश। इनमें से दान देना सर्वोत्तम गति है। धनको भोगोपभोग में खर्च करना मध्यम गति है। तथा जो पुरुष न दान देते हैं और भोगोपभोग में खर्च करते हैं उनके धनकी तीसरी नाशरूप गति होती है, अर्थात् उनका धन अवश्य नष्ट होता है। अतएव धनको पाकर दान अवश्य देना चाहिये जिससे कि निर्धनता की प्राप्ति कभी न हो।

अनादर का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव! कस्मा-

दनादरः कौ भवतीह जन्तोः।।

अर्थ- हे देव! अब यह बतलाइये कि पाप कर्म के उदय से इस जीवका का पृथ्वी पर अनादर होता है?

उत्तर- पुरा भवे देव गुरुस्मृतीनां,

कृत्वाऽपमानं हृदि यो ह्यातुष्यत्।

तस्यापमानोऽपि पदे पदे स्या-

त्रिंदा सदा चान्यभवेऽपकीर्तिः।।5।।

अर्थ- जो पुरुष पहले भव में देव, गुरु और शास्त्रों को अपमान कर अपने हृदय में संतुष्ट होता है वह पुरुष स्थान-स्थान पर अपमानित होता हे, सदाकाल उसकी निंदा होती रहती है और अगले जन्म में उसकी अपकीर्ति होती है।

भावार्थ- अनंतचतुष्टय और समवरण आदि विभूति के साथ विराजमान भगवान् तीर्थंकरपरमदेव को देव कहते हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु गुरु कहलाते हैं तथा वीतराग सर्वज्ञ परम अरहंतदेव की वाणी को तथा तदनुसार गुरुओं की वाणी को शास्त्र कहते हैं। ये तीनों ही मोझ

के करण हैं। इसीलिए इनकी निंदा करना मोक्ष की निंदा करना है। यही कारण है कि इनकी निंदा करने से स्थान-स्थान पर इस जीव की निंदा होती है तथा परलोक में नरकादिक की दुर्गति प्राप्त होती है।

''भगवान् अरहंत देव समवसरण में भी आहार लेते हैं व मल, मूत्र करते हैं, उनके परीषह भी होती है'' आदि कहना अरहंतदेव की निंदा करना है। वीतराग परमगुरु समस्त परिग्रहों के त्योगी होते हैं। इसलिए वे सदा दिगंबर अवस्था धारण करते हैं। ''उन परम ।दिगंबरमुनियों को नग्न कहकर, उनकी हँसी करना, उनमें अरुचि करना, उनके दर्शन नहीं करना, उनसे द्वेष करना, उनके लिए बुरे शब्द कहना, उनके लिए वैयावृत्त्य करने का निषेध करना, उनकी चर्या व विहार आदि की निंदा करना'' उनसे द्वेष करना, उनके लिए बुरे शब्द कहना, उनके लिए वैयावृत्त्य करने का निषेध करना, उनकी चर्या व विहार आदि की निंदा करना'' गुरुओ की निंदा कहलाती है। ''शास्त्रों में जो कुछ लिखा है वह सब ठीक नहीं है, उसमें अध्यात्मवाद वा तत्त्ववाद भले ही ठीक हो परंतु क्रियाकांड व व्यवहारचारित्र का निरूपण व तयाग मर्यादा का कथन अथवा दान पूजन का प्रकार सब ज्यों का त्यों ठीक नहीं है। पूजनां पंचामृताभिषेक किसी का मिलाया हुआ है, यज्ञोपवीत विधि मिलाई हुई है, पुष्प फलों से पूजा करना इस काल में ठीक नहीं है'' इत्यादि वचनों का कहना शास्त्रों की निंदा करना है। अथवा ''विजातीयविवाह शास्त्रसम्मत है, इस काल में विधवाविवाह कर लेना शास्त्रसम्मत है, दस्साओं को शुद्ध मान लेना और उनके साथ रोटी बेटी व्यवहार करना शास्त्रसम्मत है, अछूतों को मंदिर में जाने देना व उनके साथ खाने पीने का व्यवहार रखना शास्त्र-सम्मत है'' इत्यादि वचन कहना शास्त्रों का अपमान है। शास्त्रों के विरुद्ध वचन कहना भी शास्त्रों की निंदा व अपमान है। शास्त्रों के विरुद्ध वचन कहना भी शास्त्रों का अपमान है। इस प्रकार देव-शास्त्र-गुरु का अपमान करने से इस लोक और परलोक दोनों लोकों में इस जीव का अपमान होता है तथा नरकादिक दुर्गति प्राप्त होती है। इसलिए ऐसे पापों से बचने के लिए देव-

शास्त्र-गुरुओं का अपमान कभी नहीं करना चाहिए।

दुष्ट स्त्री प्राप्त होने का कारण बतलाते है-

प्रश्न- कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्।

नरः कुभार्यां लभतेऽन्यलोके।।

अर्थ- हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस कर्म के उदय से इस जीव को परमभव में दुष्ट स्त्री प्राप्त होती है? है।

उत्तर- पत्न्या समं यः कलहं च कृत्वा,

निंदां सुनार्याश्च विधाय रोषात्।

दृष्ट्वा ह्यतुष्यत्कलिकारिणीं स्त्रीं,

स दुष्टभार्यां लभतेऽन्यलोके।।6।।

अर्थ- जो मनुष्य अपनी स्त्री के साथ रात-दिन लड़ता रहता है, अथवा किसी द्वेष के कारण सदाचारिणी स्त्रियों की निंदा करता रहता है, अथवा कलह करनेवाली स्त्रियों को देखकर अत्यंत संतुष्ट होता है, ऐसा मनुष्य परलोक में जाकर अत्यंत दुष्ट स्त्री को पाता है।

भावार्थ- धर्मपत्नी धर्मकार्यों में सहायता देने वाली होती है। बिना धर्मपत्नी के पात्रदान की उत्तम व्यवस्था नहीं हो सकती, न प्रति दिन हो सकती है, तथा जिनपूजन में भी बिना धर्मपत्नी के, नैवेद्य आदि की व्यवस्था नहीं हो सकती। धर्मपत्नी के साथ कलह करने से दान पूजन दोनों की ही व्यवस्था नष्ट होती है। इसलिए धर्मपत्नी के साथ कभी भी कलह नहीं करना चाहिये। इसी कारण सदाचारिणी स्त्रियों की निन्दा करना व उनमें किसी प्रकार का कलंक लगाना महापाप का कारण है। जो पुरुष सदाचारिणी स्त्री मे कलंक लगाता है उसको उसके फल से कलंकित स्त्री मिलनी ही चाहिये। अथवा जो पुरुष कलह करने वाली स्त्री को देखकर संतुष्ट होता है अथवा जिसकी भावना सदाकाल कलह करने

वाली स्त्रियों से ही प्रसन्न रहती है ऐसे पुरुषों को उस भावना के फल से परलोक में कलह करने वाली स्त्री ही प्राप्त होती है। कलह करना व किसी प्रकार की कलह से प्रसन्न होना अशुभपरिणामों का कारण है और ऐसे असुभ परिणाम के फल से ऐसे ही स्त्री, पुत्र आदि प्राप्त होते हैं जो सदाकाल कलह करते रहते हैं और इस प्रकार परंपरा तक पापकर्मों के कारण होते हैं। यही समझकर न तो स्वयं कभी कलह करना चाहिये और न कभी कलह के समीप ठहरना चाहिये। यह आत्मा के हितका एक साधन है।

दुष्ट पति प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।

दुष्टं पति स्त्री लभतेऽन्यलोके।।

अर्थ- 'हे देव! अब कृपाकर मुझे यह बतलाइये कि किस पाप-कर्म के उदय से इस स्त्री को परलोक में दुष्ट पति प्राप्त होता है?

उत्तर- पत्या समं या कलहं च कृत्वाऽ-

तुष्यत्कुशीलं पुरुषं हि दृष्ट्वा।

द्वेष्टि प्रियं सच्चरितं विनीतं,

दुष्टं पति सा लभतेऽन्यलोके।।8।।

अर्थ- जो स्त्री अपने पति के साथ कलह करती हुई बस्त्री होती है अथवा असदाचारी मनुष्यों को देखकर प्रसन्न होती है अथवा सदाचारी और विनय करने वाले पति से द्वेष करती है ऐसी स्त्री को परमभव में दुष्ट पति ही प्राप्त होता है।

भावार्थ- स्त्रियों के लिए पति पूज्य माना जाता है। सब प्रकार से पतिकी सेवा करना स्त्रियों का धर्म माना जाता है। सब प्रकार से पति की सेवा भक्ति करने वाली स्त्रियाँ ही पतिव्रता कहलाती हैं। ऐसी पतिव्रता

स्त्रियाँ अपने पति के साथ कभी कलह नहीं करती हैं। जो स्त्रियाँ अपने पति के साथ कलह करती हैं वे पतिव्रता कभी नहीं कहला सकतीं, और इसीलिए ऐसी स्त्रियाँ को परभव में कलह करने वाला ही दुष्टपति प्राप्त होता है। इसी प्रकार जो स्त्री कुशील पुरुष को देखकर प्रसन्न होती है वह भी पतिव्रता कभी नहीं हो सकती। कुशील पुरुषों को देखकर कुशील स्त्रियाँ ही प्रसन्न होती है। पतिव्रता स्त्री कभी प्रसन्न नहीं हो सकती। इसलिए कुशील पुरुष को देखकर प्रसन्न होना अपने शील में दोष लगाना है। तथा ऐसी सदोष स्त्रियों को परभव में दुष्टपति ही प्राप्त होता है।

इसी प्रकार अपने सदाचारी और विनय करनेवाले पति से द्वेष करना भी भी पतिव्रता स्त्रियों का काम नहीं है। अपने पति से तो कभी द्वेष करना ही नहीं चाहिए। जो स्त्रियाँ अपने पति से द्वेष करती हैं वे श्रेष्ठ स्त्रियाँ नहीं कहलातीं, और इसीलिए परभव में भी ऐसी स्त्रियों को दुष्ट पति ही प्राप्त होता है। इसलिए पति की सेवा-भक्ति करना ही स्त्रियों का धर्म है, पति की सेवा-भक्ति करने से पति के द्वारा होने वाले धर्मकार्य उन स्त्रियों की सहायता से सरल रीति से संपन्न हो जाते है और फिर उन धर्मकार्यों का उन स्त्रियों को भी अवश्य प्राप्त होता है।

मल, मूत्रादिक में कैसे जीवों का जन्म होता है यही दिखलाते हैं-

प्रश्न- कस्माच्च कार्याद् वद देव! निन्द्ये।

मले जनानां भवतीह जन्म।।

अर्थ- हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किन-किन कार्यों के करने से इन जीवों का मल, मूत्रादिक निंद्य पदार्थों में जन्म होता है?

उत्तर- दुर्गन्धयुक्तं मलिनान्नपानं,

मांसादिकं भक्षितमेव येन।

पीतं तथा मद्यरसं नियान्तं

स्यात्तस्य जन्मापि मले पशूनाम्।।8।।

अर्थ- जो पशुरूप मनुष्य दुर्गंध और अत्यंत मलिन ऐसे अन्न पान को भक्षण करते रहते हैं, अथवा मलिन दुर्गंधरूप पांसादिक का भक्षण करते रहते हैं अथवा सदाकाल मद्यपान करते रहते हैं ऐसे पुरुष मरकर पशुओं के मलमूत्र में कीड़े होते हैं।

भावार्थ- मद्य, मांस व दुर्गंधमय अन्न-पान आदि समस्त पदार्थ अत्यंत घृणित और अनंत जीवमय हैं। इन पदार्थों का स्पर्श करने मात्र से अनंत जीवों का घात होता है। फिर भला खाने-पीने की तो बात ही क्या है? जो पुरुष मद्य, मांस का सेवन करते हैं वे अनंतानंत जीवों का घात करने के कारण नरकादिक दुर्गतियों के दुःख भोगते हैं, फिर वहाँ से निकलकर मलमूत्र के कीड़े होते हैं। और फिर नरकादिक के दुःख भोगते हैं। इस प्रकार उनके दुःखों की परंपरा सदाकाल चलती रहती हैं इससे यह सिद्ध होता है कि मद्य-मांसादिके सेवन करने में महापाप होता है। शहद भी मद्य-मांस के समान है इसलिये इसका सेवन कभी नहीं करना चाहिये।

यह जीव घर कुटुंबका त्याग क्यों नहीं करता यही दिखलाते हैं-

प्रश्न- कर्मोदयान्मे त्रद देव! कस्मात्।

त्यक्तुत न शक्नोति नरो गृहादिम्।।

अर्थ- हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस कर्म के उदय से यह जीव घर कुटुंबका त्योग नहीं कर सकता?

उत्तर- पुरा भवे यो विषये निमग्नो,

बभूव भवत्था हि कुलिंगगिभक्तः।

पूर्वोक्तसंसकारवशात्र शक्तों,

भवेत्स मोक्तुं गृहबन्धुभार्याम् ।।9।।

अर्थ- जो पुरुष पहले अनेक भावों में इंद्रियों के विषयों में निमग्न

हो रहा था, अथवा भक्तिपूर्वक जो कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओं का भक्त बन रहा था वह पुरुष अपने पहले भवों के संस्कार के निमित्त से अपने घर, भाई, बंधु, मित्र, स्त्री आदि का त्योग कभी नहीं कर सकता।

भावार्थ- यह मोह इस संसारी जीव के साथ अनादिकाल से लग रहा है। मोहके ही कारण यह जीव परपदार्थी कां अपना मान लेता है। देखो संतानरहित कोई धनी पुरुष किसी अन्य किसी निर्धन पुरुष के पुत्र का गोद लेकर अपना पुत्र बना लेता है। गोद लेने के पहले उस पुत्र के साथ उस धनी का कोई किसी प्रकार को मोह नहीं था। उसके दुःख सुख में उसकी सहानुभूति नहीं थी। परंतु जिस दिन से वह धनी उस पुत्र को अपना मान लेता है उसी दिन से वह उसके पुत्र के लिए अपना सब कुछ समर्पण कर देता है। उसी दिन से सेठ-सेठानी दोनों ही उसकी सेवा करते हैं, उसके थोड़े से दुःख में अत्यंत दुःखी होते हैं और उसके थोड़े से रोग में हजारों रुपये खर्चकर देते हैं। यह सब उस अन्य के पुत्र का अपना मान लेने का व उसके साथ मोह करने का फल है। इस मोहके कारण य जीव अनेक प्रकार के पाप करता है परंतु उसके त्याग करने का साहस नहीं करता। किसी धनी पुरुष ने जिस पुत्र को गोद लिया है यदि वही पुत्र वर्ष दो वर्ष रहकर वापिस जाना चाहता है तो केवल वर्ष दो वर्ष के मोहसे ही उसको वापिस नहीं जाने देता। तथा उसके जाने पर रोता है दुःखी होता है। जब वर्ष दो वर्ष के मोहसे इस जीवकी यह अवस्था होती है तो फिर अनादिकाल से लगे हुए इन इन्द्रियों के विषयों के मोहकी तो बात ही क्या है उनको तो वह कभी छोड़ ही नहीं सकता। इसी प्रकार इस मोहके ही कारण यह जीव कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरु का भक्त बन जाता है। और इस प्रकार मिथ्यात्व को वृद्धिकर अपने आत्मा का स्वरूप भूल जाता है। जब यह जीव काललब्धि और अपने शुभ परिणामों के द्वारा उस मिथ्यात्व की का उपशम कर सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तब यह जीव उस सम्यग्दर्शनरूपी प्राकश के द्वारा अपने आत्मा के स्वरूप को पहचानने लगता है तथा जब जीव अपने आत्मा के स्वरूप को पहचानने लगता है

तब उस अपने आत्मा के स्वरूप को ग्रहण करने योग्य अपना समझने लगता है और पुत्र, पौत्र, मित्र, स्त्री आदि सबको पर और हेय समझने लगता है। इस प्रकार अपने आत्मा के स्वरूप को पहचान लेने पर यह जीव मोहका त्याग का घर कुटुंबादिकका त्याग करे देता है और फिर अपने आत्मकल्याण में लग जाता है। इसलिये भव्य जीवों को सबसे पहले मोहका त्योग कर देना चाहिये। आत्मा के कल्याण का सर्वोत्म उपया यही है।

अंधे होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्?

जीवः किलान्धो भवतीह विश्वे।

अर्थ- हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव इस संसार में किस कर्म के उदय से व कौन से कार्य करने से अंधा होता है?

उत्तर- बलत्परेषां नयनानि छित्वा,

यः सुनदराङ्गीं हृतवान धानदिम्।

अन्धापमानं कृतवान् कुगर्वाद्,

मृत्वा स चान्धो हि भवेदमुत्रे।।10।।

अर्थ- जो पुरुष बलपूर्वक दूसरे के नेत्रों को फोड़ देता है अथवा जो दूसरें की सुंदर स्त्रियों का हरण कर लेता है व धनादिक का हरण कर लेता है अथवा जो अपने मिथ्या-अभिमान से अंधो का अपमान करता है वह पुरुष मरकर परलोक में अंधा होता है।

भावार्थ- इसमें किसी प्रकाश का संदेह नहीं है कि यह जीव पाप कर्म के उदय से ही अंधा होता है तथा वह पाप कर्म किसी दूसरे के नेत्र फोड़ देने से भी होता है, सुंदर स्त्रियों को हरण करने से भी होता है, धनका हरण कर लेने से भी होता है और अंधों का अपमान करने से भी

होता है। इस शरीर में मुख व मस्तक उत्तम अंग कहलाता है, उस मुख में भी दोनों नेत्र ही सर्वोत्तम कहलाते हैं। बिना नेत्रों के न तो यह जीव मुनिव्रत धारण कर सकता है न श्रावक व्रत को अच्छी तरह पालन कर सकता है, न जीवों की रक्षा का सकता है न भगवान् जिनेन्द्र देव के दर्शन कर सकता है न गुरु के दर्शन कर सकता है और न शास्त्र, स्वाध्याय, अभिषेक, पूजन आदि उत्तम कार्यों को कर सकता है ऐसे उत्तम कार्यों का करने वाले इन नेत्रों का फोड़ देना महापाप है। ऐसे ही पाप कार्य के उदय से यह जीव अंधा होता है। इसी प्रकार किसी की सुंदर स्त्री को हरण कर लेना, किसी के धन को हरण कर लेना व दुःखी अंधों का अपमान करना भी महापाप है, और इन्ही पाप कर्मों के उदय से यह जीव अंधा होता है। इसलिए ऐसे पाप कर्म इस जीव को कभी नहीं करने चाहिए।

लूले, लंगडे व अपंग होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव! कस्मा-

त्राश्छित्रदेही भवतीह लोके।।

अर्थ- हे देव! अब कृपाकर यह बतालाइये कि किस पाप कर्म के उदय से यह जीव लोक में लूला, लंगड़ा, अपंग होता है?

उत्तर- हस्तौ परेषां चरणौ च छित्त्वाऽ-

तुष्यत्नृणां स्वार्थवशात्पशूनाम्।

दृष्ट्वा ह्यनन्दत्खलु छित्रदेहं,

स स्यादमुत्रेऽखिलछित्रदेही।।11।।

अर्थ- जो पुरुष अपने किसी स्वार्थ में मनुष्य व पशुओं के हाथ पैरों को काट डालता है, अथवा लूले, लंगड़े, अपंग जीवों को देखकर प्रसन्न होता है वह जीव मरकर परलोक में छिन्न-भिन्न शरीर को धारण करने वाला व लूला, अपंग होता है।

भावार्थ- लूला, लंगडा होना व अपंग होना व शरीर का छिन्न-भिन्न होना महापापकर्म के उदयसे होता है। तथा वह पापकर्म जीवों को अत्यंत दुःख देने से बंधको प्राप्त होता है। तीर्थयात्रा, जिनपूजन, अभिषेक, स्वाध्याय, पात्रदान, तपश्चरण आदि जितने आत्मकल्याण के कार्य हैं वे सब कार्य शरीर के हाथ, पैर आदि शरीर के अंग-उपांगों से ही होते हैं। इसलिए अंग-उपांगों का काट डालना उन आत्मकल्याण करने वाले तपश्चरण आदि कार्यों में घोर विघ्न डालना है। अथवा जिस जीव के अंग-उपांग काटे जाते हैं उसको महादुःख होता है। तथा वह दुःख महापाप कर्मों का कारण बन जाता है। और उन पाप कर्मों के उदय से वह जीव लूला, लंगड़ा व अपंग उत्पन्न होता है। इसके सिवाय अपंग जीवों को देख देखकर प्रसन्न होना भी पाप का कारण है। उनको देखकर तो करुणा उत्पन्न होनी चाहिए, परंतु जिन जीवों को करुणा के स्थान में हर्ष होता है उनको महापाप लगना ही चाहिये और उन पाप-कर्मों के उदय से उनके अंग-उपांग-छिन्न-भिन्न होने ही चाहिए तथा होते ही है। इसलिए आत्मकल्याण चाहने वाले जीवों को कभी भी अन्य जीवों के अंग-उपांग छिन्न-भिन्न नहीं करने चाहिए। सब जीवों को अपने आत्मा के समान समझकर सब को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए। आत्मकल्याण का यह सबसे सरलमार्ग है।

पशुहिंसक व्याध होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्।

व्याधो भवेत्कौ खलु मन्दभागी।।

अर्थ- हे भगवान्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव पशुओं को मारने वाला व्याध किस पापकर्म के उदय से होता है।

उत्तर- मांसादिभक्षी ह्यसुहिंसको यो,

धर्मस्य द्वेषी कलहप्रियश्च।

व्याधश्च पापान्मनुजः स मृत्वा,

भवत्यवश्यं हतधर्मकर्मा।।12।।

अर्थ- जो मनुष्य मांस भक्षण कता है, मद्यपान करता है अनेक जीवों के प्राणों का घात करता है, धर्म से द्वेष करता है और सर्वत्र लड़ाई झगड़ा व कलह करता रहता है, ऐसा मनुष्य उस पाप कर्म के निमित्त से मरकर अवश्य ही धर्मकर्म से सर्वथा रहित व्याध होता है।

भावार्थ- व्याध के शरीर में जन्म लेना महापाप का कारण है। अनेक जीवों को मारना, अनेक पक्षियों को मारना व जीवित पकड़कर उनको अनेक प्रकार के दुःख देना व्याध लोगों का प्रतिदिन का काम है। इन महापापरूप कामों को करने से ही व्याध लोग प्रायः मरकर नरक ही जाते है। इसीलिए व्याध लोग महापापी गिने जाते है। इस महापाप के कारण ही कोई भी सज्जाति वाला मनुष्य उनका स्पर्श नहीं करता है। इस श्रेष्ठ मनुष्यजन्म को पाकर भी जो लोग मांस भक्षण करते है, मद्यपान करते है, कंदमूल, बड़, पीपर, ऊमर, कठूमर, पाकर आदि अनेक जीवों से भरे हुए फलों को खाते है, आचार, द्विदल आदि अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करते हैं, आसव, अरिष्ट, सिरका का मद्य, मांसादिक से बनी हुई औषधियों का सेवन करते हैं अथवा थोड़े से जिह्वाके स्वाद के लिए जो अनेक जीवों को मारते हैं, अपने विनोद के लिए अनेक जीवों को मारते हैं, व बिना कारण ही साँप, बिच्छू आदि जीवों को मार देते हैं। जो लोग धर्म से द्वेष रखते हैं, धार्मिक कार्यों को न तो स्वयं करते हैं और न किसी दूसरों को करने देते हैं, जो धर्मकार्यों में सदा विघ्न करते हैं, अथवा जो मनुष्य कलह कराने में चतुर होते हैं व कलह को देखकर प्रसन्न होते है, जो लोग पशुओं को व मनुष्यों को परस्पर लड़ाया करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर अवश्य ही व्याध होते हैं। उस व्याध योनि में आकर वे किसी प्रकार का धर्म कर्म नहीं कर सकते, तथा निरंतर हिंसा के ही कार्य करते हैं। जिनके कारण वे मरकर नरक ही जाते हैं। इसलिए मनुष्यजन्म पाकर के कभी भी पापकार्य नहीं करना चाहिए। आत्मा को सुख पहुँचाने का यह

सबसे सुगममार्ग हैं।

कुपुत्री प्राप्त करने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्।

पिता कुपुत्रीं लभतेऽन्यलोके।।

अर्थ- हे भगवान्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस कर्म के उदय से परलोक में जाकर पिता को कुपुत्री प्राप्त होती है?

उत्तर- कस्यापि बन्धोरपमानहेतोः,

प्रदर्श्य चान्यां खलु तत्कुपुत्रीम्।

योऽप्रीणयत्रिन्द्यसुतामभागी,

सचान्य लोके लभते कुपुत्रीम्।।13।।

अर्थ- जो मनुष्य अपने किसी भाई का अपमान करने के लिए किसी अन्य सुंदर कन्या को दिखाकर उसके साथ अपनी निदनीय कुपुत्री का पाणिग्रहण कर देता है उस अभागे पुरुष को परलोक में जाकर कुपुत्री प्राप्त होती है।

भावार्थ- यहाँ पर निद्य कुपुत्री अर्थरूप रहित व अंग, उपांग रहित लूली, लंगडी, अंधी, बहिरी व अन्य अनेक दोषों से दूषित कन्या है। यदि कोई पुरुष ऐसी रूपरहित व अंधी, लूली, लंगड़ी कन्या के साथ अपनी प्रसन्नता पूर्वक विवाह करता है उसकी तो कोई बात ही नहीं है, परंतु जो पुरुष ऐसी कन्या के साथ विवाह नहीं करना चाहता और ऐसी कन्या का पिता उसी पुरुष को किसी अन्य दूसरे की पुत्री को दिखाकर उसे विवाह के लिए प्रसन्न कर लेता है, और विवाह करते समय अपनी सदोष वा लूली, लंगडी वा अंधी बहिरी कन्या के साथ उसका विवाह कर देता है, पुरुष भी महापापी गिना जाता है। इसका कारण यह है कि वह ऐसी कन्या का पिता प्रथम तो उसको ठगता है तथा ऐसी कन्या के साथ विवाह

करने से उसका अपमान होता है। इस प्रकार मायाचारी करके अपनी कुरूष व सदोष कन्या को देकर उस कन्या का पिता उस जामाताको ठगने वाला और अपमान करने वाला कहलाता है। तथा इसी पाप के कारण परलोक में फिर भी उसके ऐसी कुरूपाएँ व सदोष कन्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसलिए सद्गृहस्थों को ऐसी मायाचारी कभी नहीं करनी चाहिए।

ठग उत्पन्न होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयानमे वद देव! कस्मा-

न्मृत्वा मनुष्यः खलु वञ्चकः स्यात्।।

अर्थ- हे देव! अब कृपाकर यह बतालाइये कि यह मनुष्य मरकर किस पापकर्म के उदय से ठग होता है?

उत्तर- चित्तेऽन्यचिन्ता वचनेऽन्यवार्ता,

कायेऽन्यकृत्यं भवदं च यस्य।

स एव मृत्वा भुवि वञ्चकःस्यात्,

पूर्वोक्तसंस्कारवशादभागी।।14।।

अर्थ- जो पुरुष अपने मन में कुछ और ही चिंतवन करता है, वचन से कुछ और ही बात कहता है और शरीर से कुछ और हीकाम करता है इस प्रकार जन्ममरणरूप संसार को बढ़ाने वाली ठगाई करता रहता है वह पुरुष मरकर अपने पहले संस्कारों के निमित्त से भाग्यहीन ठग होता है।

भावार्थ- दूसरों को ठगना भी महापाप है तथा इस महापाप को प्रत्येक मनुष्य नहीं कर सकता। अनेक मनुष्य सरल स्वभाव के होते है, उनसे विश्वासघात व ठगई का काम नहीं हो सकता। जो जीव जन्मजन्मातर से मन, वचन व काय में कुटिलता रखते चले आते है सोचते कुछ हैं, कहते और कुछ हैं और करते और कुछ है तथा जिन्हे ऐसा

करने का अभ्यास अनेक जन्मों से होता चला आ रहा है ऐसे नीच ही मरकर भाग्यहीन ठग होते है। यहाँ पर इतना और समझ लेना चाहिये कि मनुष्य पर्याय में तो ऐसे ठग होते ही हैं, परंतु पशुओं में भी कौआ, बिल्ली, शृगाल इत्यादि कितने ही पशु ऐसे मायाचारी होते हैं। इसलिए आत्मा कल्याण करने वाले पुरुषों को ऐसी मायाचारी कभी नहीं करनी चाहिये।

बहिरा होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।

भवत्यवश्यं बधिरो हि जीवः।।

अर्थ- हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मक उदय से व किस पाप से अवश्य ही बहिरा होता है?

उत्तर- आकर्ण्य नृणां कुकथां पुरा योऽ-

तुष्यद्धि कृत्वा बधिरापमानम्।

श्रुत्वापि वाचोऽश्रुत एव तिष्ठेद्,

मृत्वा स मूढो बधिरो भवेत्कौ।।15।।

अर्थ- जो मनुष्य पहले जन्म में मनुष्यों की कुकथाएँ सुनकर प्रसन्न होता है अथवा बहरे लोगों का अपमान कर प्रसन्न होता है अथवा वचनों को सुनकर भी न सुनने के समान बैठा रहता है वह मूर्ख मनुष्य मरकर इस पृथ्वी पर बहरा ही होता है।

भावार्थ- कर्णेन्द्रिय प्राप्त करने का फल धर्मकथाओं का सुनना है। धर्मकथाओ के सुनने से व आत्मा आदि तत्वों के यथार्थ स्वरूप को सुनने से मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा यही मनुष्य जन्म प्राप्त करने का फल है। विकथाओं के सुनने से पाप कर्मों को बंध होता है, क्योंकि भोजन की कथा कहना, चोरों की कथा कहना, किसी राष्ट्र व युद्ध की कथा कहना आदि सब विकथाएँ या कुकथाएँ कहलाती है। इनके सुनने से पापरूप

परिणाम होते हैं और उन परिणामों से पापकर्मों बंध होता है उनके उदय होने पर यह जीव प्रायः बहिरा हो जाता है। इसी प्रकार जो मनुष्य अपने पाप कर्मों के उदय से बहिरा हुआ है उसका अपमान करना भी पाप है उस पाप के उदय से बहिरा हुआ है उसका अपमान करना भी पाप है पाप के उदय से भी यह जीव बहिरा होता है। इसी प्रकार जो मनुष्य धार्मिक कथाओं को सुनकर भी बिना सुने हुए के समान आचरण करता है, धर्मशास्त्रों को सुनकर भी उनकी आज्ञानुसार आचारण नहीं करता वह मनुष्य भी मरकर बहिरा होता है। इसलिए धर्मात्मा पुरुषों को कुकथाओं का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये, किसी का अपमान नहीं करना चाहिये और धर्मशास्त्रों का सुनकर उनकी आज्ञानुसार आचरण करते रहना चाहिये। यही आत्मकल्याण का सरल मार्ग है।

गूँगा होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न - कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्।

जीवोऽन्यलोके भवतीह मूकः।।

अर्थ- हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप कर्म के उदय से यह जीव मरकर परलोक में गूँगा होता है?

उत्तर- वस्तु ह्यभक्ष्यं रसनाप्रलोभा-

द्योऽभक्षयन्मांसकलेवरादिम्।

निर्ग्रन्थसाधोरकरपोत्प्रणिन्दां,

मृत्वा स मूको भवति ह्यमुत्र।।16।।

अर्थ- जो मनुष्य अपनी जिह्वाकी लोलुपताके कारण जीवों के मांस व कलेवर आदि अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करता है अथवा जो मनुष्य निर्ग्रंथ मुनियों की निंदा करता है वह मनुष्य मरकर परलोक में अवश्य गूँगा होता है।

भावार्थ- बोलना, बातचीत करना, स्वाध्याय करना, धर्मोपदेश देना, पढना-पढाना आदि सब जिह्वा इनिद्रय का काम है। यद्यपि भोजन का स्वाद भी जिह्वा इन्द्रिय से लिया जाता है, परंतु स्वाद लेना मोक्षमार्ग में सहायक न होने से वह जिह्वा इन्द्रिय का फल नहीं समझा जाता। इसलिये जो लोग जिह्वा इन्द्रिय की लोलुपताके कारण मांसादिक अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करते हैं उन्हें जिह्वा इन्द्रिय का फल कभी नहीं मिल सकता तथा गूँगा होने से ही उस जिह्वा इन्द्रिय के फलका अभाव हो सकता है। इसलिए ऐसे मनुष्य परलोक में गूँगे ही होते हैं। इसी प्रकार साधुओं की स्तुति करना, उनकी पूजा बोलना आदि जिह्वा इन्द्रिय फल है, परंतु जो मनुष्य निर्ग्रंथ मुनियों की निंदा करते हैं उनको उस जिह्वा इन्द्रिय का फल कभी नहीं मिल सकता। इसलिए मुनियों की निंदा करने वाले मनुष्य मरकर गूँगे ही होते हैं। अतएव धर्मात्मा श्रावको को मुनियों की निंदा कभी नहीं करनी चाहिए और न कभी अभक्ष्य पदार्थों भक्षण करना चाहिए। और न कभी अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करना चाहिए।

धूर्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मा-

न्मृत्वा स जीवो भवतीह धूर्तः।।

अर्थ- हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप कर्म के उदय से यह जीव मरकर धूर्त होता है?

उत्तर- मिथ्याप्रलोभी व्यसने निमग्नो,

नास्तिक्यवादी परलोकलोपी।

इत्यादि पापस्य वशात्प्रमूढो,

मृत्वा स जीवो भवतीह धूर्तः।।17।।

अर्थ- जो पुरुष, मिथ्यालोभ करता है, व्यसनों में सदा लीन रहता है, नास्तिकवाद को मानता है और परलोक को मानता नहीं ऐसा मूर्ख

मनुष्य ऊपर लिखे पाप कार्यों के वश होकर इस संसार में अत्यंत धूर्त होता है।

भावार्थ- मायाचार करने वाले या ठगई करने वाले को धूर्त कहते हैं। धूर्त होना एक महापाप का फल है, क्योंकि धूर्त मनुष्य दूसरों को ठग-ठगकर महापाप उत्पन्न किया करता है।

जो लोग झूठा लोभ किया करते हैं अर्थात् जहाँ लोभ नहीं करना चाहिए। वहाँ लोभ करते हैं और जहाँ लोभ करना चाहिए, वहाँ नहीं करते। धनी मनुष्यों को धर्म कार्यों में ही अपना रुपया लगाना चाहिए, व्यसनों में व चरित्र को नष्ट करने वाले सिनेमा, थिएटर आदि पाप कार्यों में अपना रुपया कभी खर्च नहीं करना चाहिए, परंतु लो लोग धर्मकार्यों में तो खर्च करते नहीं और व्यसनों में व खेल-तमाशों में हजारो रुपये खर्च कर देते हैं ऐसे लोग धर्मकार्यों में लोभ करने के कारण मिथ्यालोभी कहलाते हे। ऐसे मिथ्यालोभी मरकर धूर्त ही होते हैं इसी प्रकार जो लोग जुआ खेलना, चोरी करना, शिकार खेलना परस्त्रीहरण करना, वेश्यासेवर करना, मद्य-मांस का सेवन करना आदि व्यसनों में लगे रहते हैं वे भी मरकर धूर्त ही होते है। इसी प्रकार जो लोग नास्तिकवादी है वा परलोक को नहीं मानते हैं वे भी अपने आत्मा को ठगते हैं। क्योंकि नास्तिकवादी होने से व परलोक न मानने से पुण्य-पाप भी नहीं माना जा सकता तथा जो लोग पुण्य-पाप नहीं मानते हैं वे पापकार्यों में ही अपनी निरर्गल प्रवृत्ति करते हैं। इसलिए ऐसे पापी लोग मरकर धूर्त ही होते हैं।

रोगी होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मा-

ज्जीवः स रोगी भवतीह मृत्वा।।

अर्थ- हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पाप कर्म के उदय से मरकर रोगी होता है?

उत्तर- दत्तं न दानं भुवि चौषधस्य,

कृतापि सेवा न च रोगिणोऽस्य,

मृत्वा स रोगी भवति ह्यभाग्यः।।18।।

अर्थ- जो पुरुष न तो कभी किसी रोगी को औषधि का दान देता है, न कभी किसी रोगी की सेवा करता है तथा जो अपने अभिमान से रोगी की निंदा करता है ऐसा अभागा पुरुष मरकर रोगी ही होता है।

भावार्थ- इस शरीर में अनेक रोग भरे हुए हैं और वे सब पाप कर्म के उदय से प्रगट होते है। दान देना पुण्य कार्य है तथा जो पुरुष समर्थ होकर भी दान नहीं देता वह भी पाप ही करता है। जिस प्रकार भोजनदान देने से यह मनुष्य सुखी होता है उसी प्रकार औषधदान देने से भी जीव सदाकाल नीरोग रहता है और रोगी पुरुष की सेवा करना भी नोरोगता का कारण है, क्योंकि जो पुरुष रोगी होता हे वह बहुत ही दुःखी होता है उस दुःखी पुरुष के दुःख को दूर करना व उस दुःख को दूर करने के लिए औषधि देना व उसको सुखी करने के लिए उसकी सेवा करना नीरोगता का कारण है। जो पुरुष समर्थ होकर भी इन दोनों कार्यों को नहीं करता, वह कभी नीरोग नहीं रह सकता। परलोक में जाकर तो वह रोगी होता ही है इसी प्रकार जो पुरुष किस रोगी की निंदा करता है वह भी पाप ही करता है, इसलिए वह भी परलोक में रोगी ही होता है। अतएव समर्थ धनिकों को और समर्थ वैद्यों को रोगी पुरुषों के लिए औषधियों का दान अवश्य करते रहना चाहिए, तथा अपने से जितना बन सके उतनी सेवा उन रोगियों की करना चाहिए और रोगी पुरुषों को सदाकाल आश्वासन देते रहना चाहिए। रोगियों की निंदा कभी नहीं करनी चाहिए।

किन-किन कारणों से दुःख देने वाला कुटुंब प्राप्त होता है यही दिखलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।

दुःखप्रदं वा लभते कुटुम्बम्।।

अर्थ- हे भगवन्। अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप कर्म के उदय से इस जीव को दुःख देने वलाला कुटुंब प्राप्त होता है।

उत्तर- कस्यापि जन्तो कलहं मिथो यः,

उत्पाद्य कृत्वेति ततः कुवार्ताम्।

कृत्वापवादं विषमं ह्यतुष्यत्,

स च व्यथादं लभते कुटुम्बम् ।।19।।

अर्थ- जो मनुष्य किसी भी मनुष्य के साथ परस्पर कलह कराकर प्रसन्न होता है अथवा न कहने योग्य दुष्ट वचनों को कहकर प्रसन्न होता है व किसी को भारी कलंक लगाकर प्रसन्न होता है इसे पुरुष को परलोक में जाकर दुःख देने वाला कुटुंब प्राप्त होता है।

भावार्थ- कुटुंब के लोग सुख देने के लिए होते हैं माता-पिता सुख देते ही है, भाई सुख देते ही है तथा स्त्री-पुत्र भी सुख पहुँचाते ही है, परंतु जो कुटुंबी लोग प्रत्येक समय में दुःख देते रहे, बुरु शब्द कहते रहें ऐसे कुटुंबी लोग पाप कर्म के उदय से ही प्राप्त होते हैं। ऐसे कुटुंबियों को एक प्रकार से शत्रु ही समझना चाहिए। जो पुरुष अनेक मनुष्यों से परस्पर कलह कराते रहते हैं, एक दूसरे को लड़ाते रहते है व एक के द्वारा दूसरे को दुःख पहुँचाते रहते हैं, सदाकाल अशिष्ट वचन कहते रहते हैं व दूसरों से कहलवाते रहते हैं अथवा जो दूसरों की झूठी निंदा करते रहते है व कराते रहते है रहते है, जो दूसरों को मिथ्या कलंक लगाते रहते हैं व अन्य ऐसे ही ऐसे काम करते रहते हैं ऐसे मनुष्य मरकर दुःख देने वाले कुटुबियों में जाकर उत्पन्न होते हैं तथा वहाँ पर आने उस पाप कर्म के उदय से उन कुटुबियों के द्वारा दिए हुए महादुःख भोगते रहते हैं। यही समझकर कभी किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए, कभी किसी के लिए अशिष्ट वचन नहीं कहने चाहिए और कभी किसी को कलंक नहीं लगाना

चाहिए।

दुष्ट स्वभाव होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्।

दुष्टस्वभावो भवतीह जीवः।।

अर्थ- हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से दुष्ट स्वभाववाला होता है?

उत्तर- यश्चागतः श्वभ्रगतेः कुबुद्धि-

र्बध्वा नरायुः प्रथमं हि पश्चात्!

भवेत्कुमार्गी खलसङ्गकारी,

मृत्वा स जीवः खलु दुष्टभावः।।20।।

अर्थ- जो पुरुष नरकगति से आया हो, व कुबुद्धि को धारण करने वाला हो, अथवा जिसने पहले मनुष्य आयु का बंध कर लिया हो और फिर वह कुमार्ग गामी हो गया हो अथवा जो पुरुष दुष्टों की संगति में रहता हो ऐसा पुरुष मरकर दुष्ट स्वभाव को धारण करने वाला होता है।

भावार्थ- जो जीव अत्यंत पाप करता है वह नरक में जाता है तथा उन पापों के फल की परंपरा नरक में ही समाप्त नहीं होती किंतु नरक से निकलकर प्राप्त होने वाली पर्याय में भी आती है। यही कारण है कि जो जीव अत्यंत घोरपापों के कारण सातवे नरक में जाता है वह जीव सातवें नरक से निकलकर सिंह, सर्प आदि घातक योनि में ही उत्पन्न होता है और वहाँ पर भी अनेक महापाप उत्पन्न कर फिर नरक ही जाता है। इसी प्रकार जो जीव नरक से आता है। उसके परिणाम दुष्ट ही होते हैं। यहाँ पर इतना और विशेष समझ लेना चाहिए कि जो जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं वे ही जीव नरक से निकलकर दुष्ट स्वभाव वाले होते हैं क्योंकि ऐसे मिथ्यादुष्टि जीवों के परिणाम नरक में भी दुष्ट ही रहते हैं। परंतु जिन्हें

नरक में सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है अथवा जिन्होंने नरक जाने से पहले भव में नरकायुका बंध कर सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है, ऐसे सम्यग्दृष्टियों के परिणाम नरक में भी दुष्ट नहीं होते, फिर भला वहाँ से निकले तो वे दुष्ट परिणामी कैसे हो सकते हैं? अर्थात् कभी नहीं हो सकते। इसलिए जो मिथ्यादृष्टि जीव परक से निकलकर उत्पन्न होते हैं वे दुष्ट स्वभाव वाले ही होते हैं। अथवा पुण्यकर्म के क्षय होने से जिनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है तथा बुद्धिभ्रष्ट होने से जो धर्मकार्यों को लोपकर पापरूप कार्या करने लग जाते हैं ऐसे लोग भी मरकर परलोक में दुष्ट स्वभाव वाले ही होते हैं। अथवा जिन जीवों ने पहले तो मनुष्य आयु का बंध कर लया है और उसके अनंतर कुमार्ग में व अनेक प्रकार केपाप करने में प्रवृत्त हो गये हैं ऐसे जीव भी मरकर दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य ही होते हैं। इसका भी कारण यह है कि आयुबंध कभी छूटता नहीं है। यदि मनुष्य-आयु का बंध हो जाता है फिर वह छूटता नहीं तो वह मरकर मनुष्य ही होता है। परंतु मनुष्य-आयु का बंध कर लेने के अनंतर जो कुमार्गगामी हो जाता है वह मनुष्य तो होता है किंतु दुष्ट-स्वभाववाला ही होता है तथा उस दुष्ट-स्वभाव के कारण अनेक प्रकार के पाप किया करता है। इसी प्रकार जो पुरुष दुष्ट पुरुषों की संगति में रहता है वह भी इन इन दुष्टों की संगति से अनेक प्रकार के पाप किया करता है। और मरकर दुष्ट स्वभाव वाला होता है। यही समझकर श्रावाकों को कुमार्ग से, दुष्टों की संगति से और सब प्रकार के पापों से सदाकाल बचते रहना चाहिए।

भवभीत होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयानमें वद देव! कस्मा-

जीवो भवेत्कौ भयवान् सदा हि।।

अर्थ- हे भगवन् अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पाप कर्म के उदय से भयभीत होता है?

उत्तर- राज्ञस्तथा भूतपिशाचकानां,

ह्रत्वा धनादिं व भयं प्रदर्श्च।

निष्कास्य गेहान्मनुजं च हत्वा,

मृत्वा स जीवों हि भयान्वितः स्यात् ।।21।।

अर्थ - जो मनुष्य किसी भी प्रकार का भय दिखलाकर किसी राजा व भूत पिशाचों का धन हरण कर लेता है व किसी मनुष्य को घर से निकाल देता है अथवा घर से निकालकर मार देता है ऐसा जीव मरकर सदाकाल भयभीत रहता है!

भावार्थ- जो पुरुष किसी प्रकार का भी पाप करता है वह पुरुष सदाकाल उस पाप के भय से भयभीत होता रहता है। फिर भला जो राजा को भी भय दिखलाकर उसका धर हरण कर लेता है उसे तो सदाकाल भयभीत बना रहना ही चाहिये। इसी प्रकार भूत पिशाचों का धन हरण कर लेना भी भयका ही कारण है। यद्यपि भूत पिशाचों का निजका कोई धन नहीं होता है न उन्हें कभी भी धन की आवश्यकता पड़ती है वे तो व्यंतरदेव हैं, जो भूख की इच्छा होने पर अपने ही कंठ से झरे अमृत को पीकर तृप्त हो जाते हैं। परन्तु जो काई कृपण मनुष्य अपने धनको धर्मकार्यों में व खाने पीने में खर्च नहीं करता है वह मनुष्य किसी भी पुण्य कार्य के निमित्त से व पुण्य कर्म के निमित्त से व्यतरदेव होता है। तथा वह देव अपने पूर्वभव में संचित किये गये धनकी रक्षा करता रहता है। वह धन उस व्यंतरदेव का कहलाता है। जो कोई मनुष्य उस धनको भी हरण लेता है वह मनुष्य भी इस लोक में सदाकाल भयभीत रहता है और मरकर परलोक में भयभीत ही बना रहात है। इसी प्रकार जो मनुष्य किसी भी अन्य मनुष्य को घर से निकालकर मार देता है वह भी मरकर सदाकाल भयभीत ही रहता है। इस संसार में अनेक ऐसे पक्षी हैं वा अनेक ऐसे पशु हैं जो सदाकाल भयभीत ही बने रहते हैं।हिरण, कबूतर आदि पशु पक्षी सदाकाल भयभीत ही बने रहते हैं। यही समझकर किसी का भय नहीं दिखलाना चाहिए व किसी का धनादिक हरण नहीं करना

चाहिए।

अशक्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मा-

ज्जीवो भवेद्बाल्यभवे ह्यशक्तः।।

अर्थ- हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पाप कर्म के उदय से बालकपन से ही अशक्त होता है?

उत्तर- निर्दोषजन्तोर्वसनान्नपानं,

रुंध्वा तथा हिंसनमेव कृत्वा।

बध्वा ह्यतुष्यद् भुवि हीनजन्तून्,

मृत्वा व दुष्टश्च भवेदशक्तः।।22।।

अर्थ- जो पुरुष निर्दोष जीवों के वस्त्रों को व उनके अन्न-पान को हरण कर लेता है, अथवा जो निर्दोष जीवों को मारकर संतुष्ट होता है अथवा जो छोटे-छोटे जीवों को बाँधकर, पकड़कर व मारकर संतुष्ट होता है वह जीव मरकर परलोक में भी दुष्ट और अशक्त होता है।

भावार्थ- अशक्त और निर्दोष जीवों का अन्नपान रोक देना महापाप है। यद्यपि असमर्थ जीव कुछ कर नहीं रुकते तथापि वे असमर्थ होने के कारण नितान्त दुःखी होते हैं। इसलिए असमर्थ जीवों को सताना या दुःख देना महापाप कहलाता है। इसी प्रकार ऐसे असमर्थ जीवों को मारना वा पकड़कर पिंजरों में रख लेना व रस्सी सांकल से बांधकर रखना भी महापाप है। स्वतंत्र उड़ने वाले जीवों को जो बाहर आनंद आता है वह आनंद पिजरों में बद होकर आराम से रहने पर भी कभी नही आ सकता। सोने के पिजरों में बंद हुए पक्षी कारागार में पड़े हुए मनुष्य के समान महादुखी होते हैं। इसीलिए असमर्थ जीवों को पकड़ना, बांधना व मारना महापाप कहलाता है। तथा उस पाप कर्म के उदय से ऐसे जीव

मरकर असमर्थ ही होते है। तथा पहले भवमें जिन जीवों को पकड़ा था जिनको बांधा था व जिनको मारा था वे ही जीव उस असमर्थ जी व को पकड़ते हैं, बांधते हैं व मारते हैं यही समझकर कभी भी असमर्थ जीव को नहीं सताना चाहिये और न रस्सी से ही आंधना चाहिये और न उन्हें पिंजड़े में बन्द करना चाहिये।

कृपण होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव ! कस्मा-

न्मृत्वेति जीवः कृपणोीावेत्कौ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप कर्म के उदय से यह जीव मरकर कृपण होता है।

उत्तर- विघ्नानि दाने करणान्निरोधाद्,

धर्मे धनादिव्ययकर्तृरेव ।

धनार्जने ह्येव विशेषलोभा-

न्मृत्वा स मर्त्यः कृपणो भवेत्कौ ।।23।।

अर्थ- जो कोई पुरूष दान देने में अनेक विघन करता है, व धर्म मं धन खर्च करने वाले के रोकता है, अथवा धन के उपार्जन करने में विशेष लोभ करता है वह मनुष्य मरकर इस पृथ्वीपर कृपण ही होता है।

भावार्थ- अपने आत्मा का उपकार व कल्याण करने के लिये तथा अन्य तपस्वी आदि का कल्याण करने के लिये जो दान दिया जाता है उसको दान कहते है। ऐसा दान पत्रदान ही होता है। निर्ग्रंथगुरू उत्तमपात्र कहलाते हैं उनको आहारादिकका दान देना उत्तमदान कहलाता है। सम्यग्दृष्टि श्राावक मध्यमपात्र कहलाते हैं। तथा अविरत-सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र कहलाते हैं इनको दान देना भी मध्यम दान है। इसके सिवाय दुःखी जीवों को भोजनादिकका देना करूणा दान है श्राावक लोग जो

परस्पर लेतेदेते ह। उसको समान दान कहते हैं। ये सब दान श्रेष्ठदान कहलाते हैं इनके सिवाय जिनालय, जिनप्रतिमा, तीर्थक्षेत्र धार्मिक शिक्षा आदि के लिए देना भी श्रेष्ठदान है। जिन कार्यो से सम्यग्दर्शनका घात होता हो ऐसे हाई सकूल, कॉलेज आदि में देना कुदान कहलाता है। इसका भी कारण यह है कि वर्तमान में इन कॉलेज व हाईसकूलों में जो शिक्षा दी जाती है वह शिक्षा धार्मि श्रद्धाका नाश करती है, धार्मिक संस्कारों को नष्ट करती है और भारतवर्ष की सभ्यता का नाश करती है। अतएव ऐसा दान देना श्रेष्ठदान हीं कहला सकता। जो पुरूष श्रेष्ठदान में व पात्रदान में विघ्न करता है वह भी मरकर परलोक में कृपण होता है अथवा जो कोई धनी पुरूष जिनालय वा जिनप्रतिमा बनवाने के लिए धन खर्च करना चाहता हो और उसको जो कोई पुरूष रोक देता है वह भी मरकर कृपण ही होता है अथवा जो पुरूष धन उपार्ज न करने में अत्यंत लोभ करता है वह भी मरकर कृपण ही होता है। यही समझकर श्रेष्ठदान में कभी विघ्न नहीं करना चाहिएण् धर्मकार्य को कभी रोकना नहीं चाहिए और मात्रा से अधिक लोभ कभी नहीं करना चाहिए। इसके सिवाय सदा श्रेष्ठदान देते रहना चाहिए धर्मकायी को करते कराते रहना चाहए और अहिंसा के साधनों से धन का उपार्जन करना चाहिए।

मूर्ख होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कर्मोदयान्मे वद देव ! कस्मात् ।

जीवोन्यलोके भवतीह मूर्खः ।।

अर्थ- हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से परलोक में जाकर मूर्ख होता है।

उत्तर- शास्त्रस्य निंदा विदुषां कृता वा,

चित्तं सुविद्यापठने न दत्तम।

येनापमानः सुगूरोः कृतः कौ,

मृत्वा स मूखी भवति ह्याभागयः ।।24।।

अर्थ- जो पुरूष भगवान जिनेन्द्रदेव के कहे हुए शास्त्रों की निंदा करता रहता है अथवा जैनशास्त्रों के जानकर विद्वानों की निंदा किया करता है अथवा जो पुरूष जैनशास्त्रों के पठन-पाठन में अपना चित्त नहीं लगाता अथवा जो मुर्ख श्रेष्ठ निर्ग्रंथ गुरूओं का अपमान करता रहता है वह पुरूष मरकर भाग्यहीन मूर्ख होता है।

भावार्थ- इस संसार में मोक्ष की प्राप्ति आत्मज्ञान से होती है तथा आत्मा के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान भगवान् जिनेन्द्रदेव के कहे हुए शास्त्रों से होता है। अथवा उन शास्त्रों के अनुसार आत्मा के यथार्थ स्वरूप को बतलाने वाले विद्वानों के धर्मोपदेश से भी आत्मा के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है। अथवा चित्त लगाकर अध्यात्म शास्त्रों के पठन-पाठन करने से भी आत्मा के स्वरूप का श्रान होता है। अथवा वीतराग निर्ग्रंथगुरू अपनी शांतमुद्रा से ही मोक्षमार्ग का यथार्थस्वरूप बतलाते रहते हैं। इस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार जिनशास्त्र, विद्वान, अध्यात्मशास्त्रों का पठन-पाठन और वीतराग निर्ग्रंथगुरू ये सब मोक्ष के कारण हैं। जो पुरूष इनकी निंदा करता है व इनका अपमान करता है अथवा शास्त्रों के पठन-पाठन में आलस्य करता है अथवा इनकी विनय नहीं करता वह पुरूष मरकर अवश्य ही भाग्यहीन मूर्ख होता है। यही समझकर शास्त्रों की निंदा, विद्वानों की निंदा और गुरूओं की निंदा कभी भी नहीं करनी चाहिये।

पराधीन होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्मिन् कुकार्ये च कृते सदायं ।

जीवो भवेदेव पराश्रयः कौ ।।

अर्थ- हे भगवन अब कृपाकर यह बतलाइये कौन-कौन से कुकर्म करने से जीव सदाकाल पराधीन रहता है।

उत्तर- धृत्वातिदीनानापराधमुक्तान्,

स्वस्थान बलाद्बन्दिगृहे निपात्य ।

रूध्वान्नपानं च ततो ह्यतुष्यत,

पराश्रयः स्यान्मनुजः स मृत्वा ।।25।।

अर्थ- जो मनुष्य स्वस्थ होकर भी अत्यंत दीन हैं और अपराध रहित हैं ऐसे लोगों को बलपुर्वक पकड़कर जो बंदीगृह में डाल देते हैं और फिर उन बंदीगृह में डाले हुये मनुष्यों को अनन बंद कर संतुष्ट होते है। ऐसे मनुष्य मरकर परलोक में पराधीन होते हैं।

भावार्थ- निरपराध जीवों को पकड़कर बंदीगृह में डालना उनकी स्वतंत्रता का हरण कर महादुख देना है। बहुत से लोग अच्छे-अच्छे पक्षियों को पककड़कर पिजड़ों में बंद कर देते हैं। अनेक पशुओं को पकड़कर बड़े-बड़े जालियों के बने हुये पिंजड़ों में बंद कर देते हैं। अपने आमोद-प्रमोद के लिये अनेक पशु पक्षियों को पकड़कर बंदीगृह में डाल देते हैं तथी कभी-कभी समय पर उनका अनन–पान भी रूक जाता है, अथवा बहुत कम मिलता है जिससे वे पशु पद्वाी बहुत दुखी होते हैं इसी प्रकार कभी-कभी राज कर्मचारी निरपराध मनुष्यों को बंदीगृह में डाल देते हैं। तथा उनको नियमानुसार भोजन भी नहीं देते । अथवा उस भोजन में निकृष्ट पदार्थ मिलाकर उसको अखाद्य और अरूचिकर बना देते हैं। और वह भोजन उन बंदियों को देते हैं। इस प्रकार वे लोग थोड़ी सी सत्त मिल जाने पर महापा उत्पनन करते हैं और उस पाप के फल से परलोक में जाकर सदाकाल पराधीन रहते हैं। और जिस प्राकर उन्होंने सबको दुखी किया था उसी प्रकार महादुख पाते हैं।

भोगोपभोग की सामग्री प्राप्त होने पर भी ाोगोपभोग क्यों नहीं कर सकते यही बतलाते हैं-

प्रश्न- लब्धे सुयोग्ये सकले पदार्थे ।

न भुज्यते किं वद में कृपाब्धे ।।

अर्थ- हे भगवन् ! कृपानिधान ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि समस्त सुयोग्य पदार्थों के प्राप्त होने पर भी यह जीव उसका भोगोपभोग क्यों नहीं कर सकता

उत्तर- कृतः कुविघ्नः शयनासनादौ,

यैर्द्वेषबुद्धया वरभोजनादौ ।

क्षुधातुराणां हि कृतोऽपमानो,

लब्धे पदार्थेऽपि न भुज्यते तैः ।।26।।

अर्थ- जो पुरूष अपनी द्वेषबुद्धि से किसी के शयन, आसान आदि उपीाोगों के पदार्थों में विघन करते हैं अथवा किसी के भोजन आदि भोगों के पदार्थों में विघन करते हैं अथवा जो पुरूष अत्यंत भूखे मनुष्यों को देखकर उनका अपमान करते हैं वे मनुष्य भोगोपभोग की सामग्री प्राप्त होने पर भी उसका उपभोग नहीं कर सकते।

भावार्थ- किसी के भोगोपभोगों में विघन करने से अंतराय कर्मका आस्त्रव होता है तथा वह अंतरायकर्म उदय में आता है तब वह कर्म का उदय उसके भोगोपभोग में विघन कर देते है। इसी प्रकार भूखे, प्यासे, वस्त्रहीन नंगे आदि निर्धनों का व दुःखी जीवों का अपमान करने से भी निर्धन व दुःखी होना पड़ता है। ऐसे जीव मरकर धनियों के कुल में तो उत्पनन होते है। ताा उनके हाथी, क्षोड़े, रथ, पियादे, उत्तम-उत्म ाोजन, पान, शयन, आसन आदि की समस्त सामगियां भी विद्यमान रहती है।, सुंदर स्त्रियां भी रहती हैं, परंतु वे लोग अपने कर्म के उदय से उन पदाथी में से किसी भी पदार्थ का उपभोग नहीं कर सकते। वे या तो सदाकाल रोगी रहते हैं अथवा उनके लिए कोई ऐसा बलवान् प्रतिबंधक मिल जाता है जिससे वे किसी का भोग व उपभोग नहीं कर सकते। यही समझ कर किसी के किसी भाी काम में विघन नहीं करना चाहिये। हाँ! यदि कोई किसी जीव की हिंसा करता हे व अन्य कोई चोरी, व्यभिचार आदि पापकार्य करता हो तो उमें विघन करना व उसको रोक देना अंतराय का

कारण नहीं हो सकता, क्योंकि पाप कार्यों में विघ्न करने में मलिन परिणाम व अशुभ परिणाम नहीं होते। शुभ परिणामों से तो पापकार्यों की रूकावट होती है।

कुरूप होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कर्मोदयान्मे वद देव ! कस्माद् ।

मृत्वा कुरूपो भवतीह जीवः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से कुरूप होता है।

उत्तर- कुरूपजीवस्य कृतापमाना-

दारोपणाद् दिव्यतनौ मलादेः ,

तद्रुपहान्यै च कृतप्रयासात्,

मृत्वा कुरूपः स भवेदभाग्यः ।।27।।

अर्थ- जो पुरूष किसी कुरूपी जीवका अपमान करता है अथवा किसी के सुंदर शरीर में किसी पदार्थ को लगाकर उसे बिगाड़ना चाहता है अथवा किसी के सुंदर शरीर की सुंदरता बिगाड़ने के लिए किसी भी प्रकार का कुत्सित प्रयत्न करता है, वह पुरूष मरकर भाग्यहीन कुरूपी होता है।, वह पुरूष मरकर भाग्यहीन कुरूपी होता है।

भावार्थ- इस संसार में ऐसे भी जीव है। जो दूसरों की सुंदरता को नष्ट करने के लिए भारी प्रयत्न करते हैं। यदि किसी सुंदर पुरूषका अंग व उपांग बिगड़ जाता है तो बड़े प्रसन्न होते है। और वह जबकुरूप हो जाता है तब उसका अपमान करते हैं। किसी दूसरे के सुंदर पुत्र के शरीर में कालोंछ लगाकर व विढंगे वस्त्र पहनाकर उसका रूप ढकना चाहते हैं व बिगाड़ना चाहते हैं अथवा अपनी हानि उठाकर भी दूसरे के सुंदर शरीर के अंग व उपांग बिगाड़ कर उसे कुरूप बनाना चाहते हैं, ऐसे लोग मरकर

अपने दुष्ट स्वभाव के कारण कुबड़े, कोने, लूले, लंगड़े, कंजे, काले व कुरूपी ही होते हैं अतएव श्रावकों को अपने लंगड़े, कंजे, काले व कुरूपी ही होते हैं। अतएव श्रावकों को ऐसे रखने चाहिये।

जो पुरूष श्रेष्ठ पदार्थों कि होते हुए भी उनका उपभोग नहीं कर सकता उसका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- सद्वस्तुभार्यादिकविद्यमाने ।

किं भुज्यते नैव गुरो ! वदाद्य ।।

अर्थ- हे गुरो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि सुंदर भार्या श्रेष्ठ पदार्थों के विद्यमान होते हुए भी यह जीव उनका उपभोग क्यों नहीं कर सकता ?

उत्तर- दृष्ट्वा परेषां प्रियवस्तु भार्यां ,

चित्त्रंऽपि तोषो हृदि यस्य नास्ति।

तत्सेवनेच्छा खलु वेति तेन,

न भुज्यते सत्यपि सत्पदार्थे ।।28।।

अर्थ- जो पुरूष दूसरों की सुंदर स्त्रियों को देखकर अथवा किसी के श्रेष्ठ पदार्थ देखकर अपने हृहय में संतोष धारण नहीं करते अथवा उनके सेवन करने की इच्छा करते हैं वे पुरूष परलोक में जाकर अपने घर उत्तम उत्तम पदार्थ रहने पर भी अथवा सुंदर से सुंदर स्त्री रहने पर भी किसी का उपभोग नहीं कर सकते।

भावार्थ- संसार में जो जो पदार्थ प्राप्त होते हैं वे सब अपने अपने कर्म के उदय से प्राप्त होते है।। पुण्यकर्म के उदय से श्रेष्ठ पदार्थ प्राप्त होते हैं और पापकर्म के उदय से अनिष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं। ऐसी अवस्था में किसी के श्रेष्ठ पदार्थों को देखकर संतुष्ट न होना व असंतोष धारण करना हृदय की अज्ञानता है। इसी अज्ञानता से महापाप उत्पनन होतेत हैं

तथा इसी अज्ञानता के कारण कितने ही लोग दूसरे के श्रेष्ठ पदार्थों को व दूसरों की सुंदर स्त्रियों को सेवन करने की इच्छा करते हैं अतः अपने पापकर्म के उदय से वे ऐसे पदार्थों का उपभोग तो क्या कर सकते है।, किनतु उन पापकर्म से ये ऐसे पापकर्मीं का इसी कारण से वे न तो अपनी ही सुंदर स्त्रियों का उपभोग कर सकते और न अपने घर में रहने वाले अन्य पदार्थी का ही उपभोग कर सकते है। अतएव दूसरे के पदार्थों को देखकर कभी असंतोष धारण नहीं करना चाहिये। क्रोधी होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कर्मोदयान्यो वद देव ! कस्मा-

दत्यन्तक्रोधी भवतीह जीवः ।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से अत्यंत क्रोधी होता है?

उत्तर- क्रोधी स्वयं कुप्यति वा ह्यतुष्यत-

क्रद्धयन्मेवापि मिथो विलोक्य ।

पूर्वोक्तसंस्कारवशात् स कोपि ,

भवत्यवश्यं भवदुःखीोगी ।।29।।

अर्थ- जो पुरूष अत्यंत क्रोधी होते हैं। अथवा जो दो-चार मनुष्यों को परस्पर क्रोध करते हुये देखकर व लड़ते हुये देखकर संतुष्ट होते हैं ऐसे पुरूष अपने पहले के संस्कार के निमित्त अत्यंत क्रोधी होते है। और फिर संस्कार के वश महादुख भोगा करते हैं।

भावार्थ- क्रोध का होना समस्त पापों का कारण है। क्रोधी मनुष्य अन्य अनेक जीवों की हिंसा करता है, यहाँ तक कि कभी-कभी वह क्रोध के आवेश में आकर अपनी आत्म हत्या भी कर लेता है। इस संसार में आत्महत्या महापाप मानी जाती है और इसीलिये यह नरक का कारण कही जाती है। इससे सिद्ध होता है कि क्रोध करना महापाप का कारण

है। जो लोग पहले भवमें अत्यंत क्रोध करते है। व दूसरों को लड़ते-झगड़ते देखकर और दूसरों को क्रोध करते देखकर प्रसनन होते है। अथवा जो तीतर बटेंरों को व अन्य पशुओं को लड़ाकर प्रसनन होते हैं ऐसे मनुष्य उस पाप के कारण अत्यंत क्रोधी मनुष्य होते हैं। अतएव भव्य जीवों को क्रोध कभी नहीं करना चाहिए, क्रोध से सदा बचते रहना चाहिये।

निंदनीय होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात् ।

निन्द्यो भवेच्चान्यभवे हि जीवः ।।

अर्थ- हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव परलोक में जाकर किस पापकर्म के उदस ासे अत्यंत निंदनीय होता है ?

उत्तर- तपःप्रदोषं च हठात्प्रसार्य,

यः कीतन्ये वापि धनं ससर्ज।

पाषण्डिसाधोरकरोत्प्रशंसां ,

निंद्यो भवेच्चान्यभवे स मृत्वा ।।30।।

अर्थ- जो पुरूष हठपूर्वक तपश्चरण में दोष लगाता है व केवल अपनी कीर्ति के लिए अपना धन खर्च करता है। अथवा जो पाखंडी साधुओं की प्रशंसा करता है वह पुरूष मरकर अन्य भव में जाकर अत्यंत निंदनीय होता है।

भावार्थ- यह नियम है कि जो पुरूष्ा दूसरों की झूठी निंदा करता है वह स्वयं निंदनीय होता है फिर भला जो पुरूष मोक्ष के साक्षत् कारण ऐसे यथार्थ तपश्चरण में दोष लगाता है व उस तपश्चरण को धारण करने वाले तपस्वियों में दोष लगाता है वह अवश्य ही अत्यंत निंदनीय होता है। श्रेष्ठ तपश्चरण व श्रेष्ठ तपस्वियों में दोष लगाना मोक्ष से घृणा करना है। इसलिए ये दोनों ही कार्य अत्यंत तीव्र-मिथ्यात्वकर्म के उदय से ही होते हैं

तथा इनसे भी फिर और अधिक तीव्र मिथ्यात्वकर्मका बंध होता है। उसव तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय से वह जीव मरकर अत्यंत निंदनीय योनि में उत्पनन होता है अथवा स्वयं अत्यंत निंदनीय होता है। अथवा जो पुरूष अपने धन को धर्मकायी में खर्च न कर केवल अपनी कीर्ति के लिए खर्च करता है, अथवा मिथ्यातपश्ररण करने वाले पाखंडी साधुओं की जो प्रशंसा करता है वह भी मरकर निंदनीय होता हैं इसका भी कारण यह है कि धन की प्राप्ति धर्म से होती हैं धर्म में प्राप्त हुए धन को धर्म में ही खर्च करना चाहिए। जो पुरूष अपने धन को धर्म में खर्च करते हैं उनको विशेष पुण्यकर्म की प्राप्ति भी होती हैंअ और कीर्ति भी होती है। परंतु जो पुरूष केवल कीर्ति के लिए अपना धन खर्च करते हैं उस धन को धर्म कार्य में नीं लगाते ऐसे पुरूषें का धन भी नष्ट हो जाता है, कीर्ति के बदले उनकी अपकीर्ति होती है और मरकर अत्यंत निंदनीय होते हैं। इसी प्रकार पाखंडी साधु मियिादृष्टि होते हैं, मिथ्यात्व के उदयस से ही वे मोक्षमार्ग के विरीत तपश्ररण करते हैं उन मिथ्यादृष्टि तपस्वियों की प्रशंसा मिथ्यादृष्टि ही करते हैं और उसकी मिथ्यात्व के कारण वे निंदनीय होते हैं यही समझकर श्रेष्ठ तपश्ररण में कभी दोष नहीं लगाना चाहिए, मिथ्यादृष्टि तपस्वियों की प्रशंसा कभी नहीं करनी चाहिए। और अपना धन केवल धर्मकार्यों में ही लगाना चाहिये।

आदर सत्कार प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- सुयाचमाने लभते न मानं ।

किं कारण तत्र वद प्रभो ! मे ।।

अर्थ- हे प्रीाो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि बहुत से लोग अपने आदर सत्कार की याचना भी करते रहते हैं तथापि उनको आदर सत्कार प्रापत नहीं होता इसका क्या कारण है ? उत्तर- विद्याभिमानानन नुतिः स्तुतियैंः ,

कृता न साधोर्विनयोपचारः ।

धर्माद्विरूद्धापि कृता प्रवृत्तिः ,

सुयाचमाने लभते न मानम् ।।31।।

अर्थ- जो पुरूष अपनी विद्याके अभिमान से न निर्ग्रंथ वीतराग साधुओं को नमस्कार करते हैं, न उनकी स्तुति करते हैं, न उसका विनय करते हैं और न उनकी सेवा करते , तथा जो पुरूष सदाकाल धर्म के विरूऋ प्रवृत्ति करते रहते हैं ऐसे पुरूष्ज्ञ याचना करने पर भी आदर सत्कार को प्राप्त नहीं होते ।

भावार्थ- मोक्षमार्ग में विद्या का कुछ मूल्य नहीं है। मोक्ष मार्ग में तो सम्यक्चारित्र का मूल्य है। पहले स्वर्ग का इन्द्र अंग पूर्व का पाठी होता है तथापित वह हालके दीक्षित हुयेु मुनि को नमस्कार करता है। इससे सिऋ होता है इस संसार में सम्यक्चारित्र ही पूज्य है। ऐसे सम्यक्चारित्र को धारण करने वाले साधुओं की जो पुरूष अपनी विद्या के अभिमान से व धनादि के अभिमान से नमस्कार नहीं करता है व उनकी स्तुति नहीं करता है अथवा उनका विनय नहीं करता है व उनकी सेवा नहीं करता ऐसे पुरूष मरकर दूसरे जन्म में जाकर इतना निमन श्रेणी का होता है कि आद सत्कार की अत्यंत लालसा होने से व आदर सत्कार की याचना करने पर भी कोई उसका आदर सत्कार नहहीं करता। इसी प्रकार जो पुरूष धर्म के विरूऋ प्रवृत्ति करता है, देव-शास्त्र-गुरू का विनय नहीं करता व व्यर्थ का अभिमान करता रहताहै वह पुरूष भी मरकर नीच मनुष्य होता ळै, और फिर कोई भी जीव उसका आदर सत्कार नहीं करता। इसीलिय भव्यपुरूषों को कभी अभिमान नहीं करना चाहिये तथा देव, शास्त्र, गुरू की कभी अविनय नहीं करना चाहिये।

शस्त्रादिक से मरने कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात् ।

शस्त्रास्त्रयोगाद् म्रियते हि जीवः ।।

अर्थ- हे भगवन! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापकर्म के उदय से यह जीव शस्त्र- अस्त्र से मारा जाता है ?

उत्तर- वधस्य शंसाप्यनुमोदनादिः

कृतोपदिष्टश्र वधाद्युपायः ।

दुष्टं चरित्रं चरितं च येन ,

स चान्यशस्त्रैम्रिच्यते मनुष्यः ।।32।।

अर्थ- जो मनुष्य जीव हिंसा की प्रशंसा करते हैं, उसकी अनुमोदना करते हैं, अथवा जो हिंसा के अनेक उपाय बतलाते हैं, व अनेक प्राकर के दुष्ट चरित्र करते रहते हैं ऐसे जीव प्रायः दूसरों के अस्त्र शस्त्रों से मारे जाते हैं।

भावार्थ- जीवों की हिंसा करना महापाप है और साक्षात नरक का कारण है। जिस प्राकर जीवों की हिंसा करना महापाप है उसी प्रकार जीवों की हिंसा की प्रशंसा करना व हिंसा की अनुमोदना करना अथवा उस हिंसा के उपाय बतलना आदि सब महापाप माने जाते हैं। जो पुरूष इन महापापों को करता है वह अवश्य ही अस्त्र शस्त्रों से मारा जाता है इसका भी कारण यह है कि अस्त्र शस्त्र से मारा जाना भी महापाप कर्म के उदय से होता है और उस महापाप का बेध हिंसा करने से ही होता है। अथवा ऐसा महापाप दुष्टचरित्र को धारण करने से भी होता है। सातों व्यसनों का सेवन करना दुष्टचारित्र है, देव-शास्त्र-गुरू में मिथ्यादोष लगाना, व उनकी आज्ञा के विरीत चलना महापाप है। शास्त्रों के विरीत अर्थ लगाकर विषयों को पुष्ट करना भी महापाप है। इन सब पापों के उदय से यह जीव अस्त्र शस्त्रों से मारा जाता है यही समझकर भवयजीवों को हिंसादिक दुष्कर्म कभी नहीं करने चाहिए।

चोर होने का कारण बतलाते है-

प्रश्न- कमीदयान्मे वद देव ! कस्मा-

ज्जीवः परत्रापि भवेद्धि चैरः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अि कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापकर्म के उदय से यह जीव परलोक में भी जाकर चोर होता है?

उत्तर- चैरस्य शंसाप्यनुमोदनादि

चैरप्रयोगोऽपि कृतश्र येन ।

इच्छा परेषां बहुरत्नराज्ये ,

मृत्वा स चैरो भवति ह्याभाग्यः ।।33।।

अर्थ- जो पुरूष चोरों की प्रशंसा करता है व उनकी और उनके द्वारा की हुई चोरी की अनुमोदना करता है अथवा चोरी का प्रयोग बतलाता है व दूसरों के अनेक रतनें की या किसी राज्य की इच्छा करता है वह मनुष्य मरकर अवश्य ही भाग्यहीन चोर होता है।

भावार्थ- जो पुरूष अधिक लोभी होता है, सदाकाल दूसरे के धन, धान्य, रतन, राज्य आदि को हड़पने की इच्छा करता रहता है, अथवा उनका चुराकर अपना करना चाहता है, अथवा उनको चुराकर लाने का उपाय बतलाता है व प्रसिद्ध चोरों की प्रशंसा करताहै, व उनकी अनुमोदना करता है अथवा चोरी के पदार्थों को अपने घर में रखता है अथवा और भी चोरी से प्रेम रखने वाले कार्यों को करता है। वह मनुष्य मरकर अगले भवमें भी चोर ही होता है। यहाँ पर इतना और समझ लेना चाहिये कि चोरी जैसे कार्य अभयाससाध्य होते है। इन कामों में पूर्व जन्म का संस्कार भी काम देता है। अभ्यास साध्य जिते कार्य है। उनमें पूर्व संस्कार अवश्य काम देता है। ऐसे कार्य पूर्व संस्कार से बहुत शीघ्र आ जाते हैं। इसीलिये भव्य जीवों को बुरे कामों का अभयस कभी नहीं करना चाहिये और न उसकी कभी अनुमोदना करनी चाहिये।

क्रियाहीन होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव! कसमात।

क्रियाविहीनो हि भवेनमनुष्यः ।।

अर्थ- हे भगवान! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापकर्म के उदय से यह मनुष्य क्रियाहीन होता है।

उत्तर- येन क्रियाहीननरप्रशंसा ,

कृता क्रताक्रियायुक्तनरप्रणिन्दा।

विचारशून्या विषमा प्रवृत्तिः ,

क्रियाविहीनः स भवेदधर्मी।।34।।

अर्थ- जो मनुष्य इस जन्म में क्रियाहीन मनुष्यों की प्रशंसा करता रहता है, क्रियाओं का पालन करने वाले मनुष्यों की निंदा किया करता है और जो स्वयं विचारहित शास्त्र प्रतिकूल प्रवृत्ति करता रहता है वह अधर्मी मनुष्य परलोक में जाकर अवश्य ही क्रियाहीन होता है।

भावार्थ- यहाँ पर क्रिया शब्द का अर्थ क्रियाकांड है। भगवान जिनेन्द्रदेव की पूजन करना, साधुओं की सेवा सुश्रूषा करना, सामायिक प्रतिक्रमण व स्वाध्याय करना, यथासाध्य व्रत उपवास करना, दोनों समय भगवान् जिनेद्रदेव के दर्शन करना, सूतक, पाताक मानना यज्ञोपवतीत धारण करना, तिलक लगाना, तथा अन्य समस्त शास्त्रोक्त क्रियाओं का करना क्रियाकांड कहलाता है। इन क्रियाओं के करने से धर्म की वृद्धि होती है, आत्मा की पवित्रता होती है और सम्यग्दर्श की स्थिरताहोती है। जो पुरूष इन क्रियाओं की निंदा करते है इनको ढोंग बतलाते है। और इन क्रियाओं के पालन करने वालों की निंदा करते है। इसी प्रकार जो पुरूष उनके ही समान नास्तिकवादी मिथ्यादृषि् हैं जो क्रियाकांड को सर्वथा नहीं मानते उनकी प्रशंसा करते हैं ऐसे ही मिथ्यादृष्टि पुरूष विधवा विवाह, विजातीय विावाह, स्पृश्यास्पृश्य लोप आदि शास्त्र विरूद्ध क्रियाएं करते रहते हैं अथवा दान, पूजन आदि धार्मिक क्रियाओं का निषेध करते रहते हे। ऐसे पुरूष मरकर अवश्य महा अधर्मी और

क्रियासंस्कारां रहित म्लेच्छ होते हैं अथवा नरक व तिर्यच योनि में उत्पनन होते हैं जहाँ किसी प्राकर के क्रिया संस्कार नहीं करने पडत्रते। यही समझकर भव्य जीवों को इन क्रियाकांडों का पालन अवश्य करते रहना चाहिये।

पुत्र वियोग का दुःख किस कारण से होता है यही दिखलाते हैं-

प्रश्न- कस्मिन् कुकृत्ये च कृते भवेत्कौ।

मातुः पितुः पुत्रवियोगदुःखम् ।।

अर्थ- हे भगवन! अब कृपाकर यह बतलाइये कि ऐसे कौन से कुकर्म हैं जिनके करने से माता-पिता को पुत्र वियोग होने का दुःख प्राप्त होता है ?

उत्तर- मातुः पितुः स्नेहकरीं प्रवृत्ति ,

द्रष्ट्वेत्यकुप्यद्धि सधर्मिणां वा ।

द्रोहं व्यथादं प्रविलोक्य तुष्ये-

दित्यादि पापाद्विषमो वियोगः ।।35।।

अर्थ- जो पुरूष माता-पिता की सन्ह करने वाली प्रवृत्ति को देखकर क्रोधित होता है अथवा धर्मात्मा भाइयों के परस्पर अनुराग को देखकर क्रोधित हो है और जो अत्यंत दुःख देने वाले परस्पर के ईर्ष्या-द्वेष को देखकर संतुष्ट होता है ऐसे पुरूष ऊपर लिखे पापों के फल से पुत्र पौत्रादि के वियोग के दुःख को प्राप्त होता हौ।

भावार्थ- जीवों को माहकर्म अनादिकाल से लगा हुआहै। इसी मोह के कारण माता, पिता, भाई, बंधु, पुत्र, पौत्र आदि कुटुंबी लोगों मे परस्पर प्रेम हुआ करता है उस प्रेम के कारण ही किसी का भी वियोग होने पर यह जीव दुःखी होता है। इन सब में भी पुत्र का वियोग विशेष रीति से दुःख देने वाला होता है। परंतु धर्मात्मा पुरूषों में जो परस्पर प्रम होता है

वह मोह से नहीं होता है, धर्म के अनुराग से होता है। ऐसे धर्मानुराग को देखकर क्रोध करना व उनमें द्वेष फैलाने का प्रयतन् करना महापाप का कारण है। ऐसे पापों से ही पुत्रपौत्रों का वियोग देखना पड़ता है। इसी प्रकार जो पुरूष महादुःख हदेने वाले परस्पर के विरोध को देखकर सेतुष्ट होता है वह भी परलोक में जाकर ऐसे ही विषम वियोगों का सहना करता रहता है। अतएव माता-पिता के प्रेम में वाधर्मात्माओं के अनुराग में कभी विघन् नहीं डालना चाहिए।

भाई-भाई में विरोध का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- नान्यत्प्रियं बंधुसमं हि वस्तु ।

कथं पुनश्चास्ति मिथो विरोधः ।।

अर्थ- हे भगवन् अब कृपाकर यह बतलाइये कि इस संसार में भाई के समान अन्य कोई प्रिय पदार्थ नहीं है, ऐसा होने पर भी फिर भाईभाइयों में परस्पर विरोध क्यों होता है ?

उत्तर- मिथः स्वबन्धोः पशुपक्षिकाणां,

यः कारयित्वा कलहं विषादम् ।

कृत्वेत्यतुष्यत् स्वजनापमानं,

तस्यान्यजीवस्य भवेद्विरोधः ।।36।।

अर्थ- जो पुरूष भाई-भाइयों में व पशु-पक्षियों में परस्पर कलह व विषाद उत्पनन् कर प्रसनन् होता है। अथवा जो अपने भाई बंधुओं का अपमान करते हैं वे जीव परलोक में भी जाकर अपने भाई बंधुओं से विरोध करते रहते है।

भावार्थ- वैर विरोध का संस्कार जन्म-जन्मांतर तक जाता है। इसका भी कारण वह है कि क्रोध करने से व परस्पर वैर विरोध रखने से चारित्रमोहनीयकर्म का बंध होता है तथा चारित्रमोहनीय कर्म की

उत्कृष्टथिति चालीस कोड़ा-कोड़ी सागगर है। अर्थात् आबाधाकालकों छोड़कर इतने दिन तक वह कर्म अपना फल देता रहता है। इतने दिन तक यह जीव जितने जनम धारण करता है उन समस्त जन्मों से उस एकबार बंध किये कर्म का फल इस जीव को प्राप्त होता रहात है।। देखो, कमठने अपने भाई से विरोध किया ाि वह विरोध कमठ के जीव की ओर सेही कितने ही भव तक चलता रहा। तथा अंत में भगवान पार्श्वनाथ के मोक्ष होने पर छूटा। यही समझकर भव्य जीवों को परस्पर कभी वैर विरोध नहीं करना चाहिये।

माता और पुत्र का विरोध क्यों होता है। सो दिखलाते हैं-

प्रश्न- कमीदयात्स्याद् वद देव ! कस्मात,

मातुः सुपुत्रस्या मिथो विरोधः ।।

अर्थ- हे भगवन अब कृपाकर यह बतलाइये कि श्रेष्ठ पुत्र और माता का परस्पर विरोध क्यों होता है ?

उत्तर- मातुः सुपुत्रस्य मिथो विरोधं,

यः कारयित्वा विषमापमानात।

मातुश्र तुष्येद् विदुषोऽपि सूनो

र्मात्रा समं तस्य मिथो विरोधः ।।37।।

अर्थ- जो पुरूष माता और सुपुत्र का विरोध करा देता है, अथवा जो माता के घोर अपमान से संतुष्ट होता है अथवा विद्वान पुत्र के घारे अपमान से संतुष्ट होता है ऐसा पुरूष परलोक में जाकर माता के साथ विरोध करता रहता है।

भावार्थ- जो पुरूष जैसा कार्य करता है उसको वैसा ही फल मिला करता है। इस संसार में माता-पिता दोनों ही पूज्य माने जाते है। दोनों ही गुरू है। पुत्र को सदाकाल उनका आदर सत्कार करते रहना चाहिये,

उनकी सेवा सुश्रुषा करनी चाहिय। परंतु जो पुरूष अपने माता-पिता से लड़त झगड़ते रहते है।, उनको दुःख देते हैं, उनके अपमाने से व उनके दुःख से प्रसनन होते है। अथवा जो अपने विद्वान पुत्र पर भी प्रम नहीं करते उसक साथ भी वैर विरोध करते हैं ऐस जीव परलोक में भी जाकर लड़ने झगड़ने वाले होते हैं तााि उनके साथ सबि कोई वैर विरोध व लड़ाई झगड़ा करता रहता है। यहां तक कि यदि ऐसा जीव मरकर किसी की माता होती है तो वह अपने श्रेष्ठ सुपुत्र से भी लड़ती रहती है। यही समझकर किसी के साथ वैर विरोध नहीं करना चाहिये।

यदि किसी स्त्री के गर्भ में भाग्यहीन पुत्र आता है तो वह कैसे जाना जा सकता है। यही बतलाते हैं-

प्रश्न- सुभाग्यहीनो ह्युदरेऽसि पुत्रः ,

कथं प्रभो ! ज्ञायत एव नाया ।।

अर्थ- हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यदि किसी स्त्री के गभ्र में कोई भाग्यहीन पुत्र आया हो तो वह कैसे मालूम हो सकता है ?

उत्तर- मातुश्र यस्या गमनात्सुर्गी,

ह्यापन्मिथः स्यात्कुमतिःपितुश्र ।

अभक्ष्य भक्षे च भवेद्भिभावो,

हीत्यादि चिह्नैस्तनयो ह्यभाग्यः ।।37।।

अर्थ- जब कोई पुत्र किसी माता के गर्भ में आवे और उसके आते ही माता पर अनेक आपत्तिया आ जायं अथवा पिता की बुद्धि विरीत हो जाये व माता-पिता दोनों की बुद्धि अभक्ष्य भक्षण मं लग जाय अथवा उन दोनों की बुद्धि ऐसे ही निकृष्ट कायी में लग जाय तो इन चिह्नों से समझ लेना चाहिए कि इसके गर्भ में भाग्यहीन पुत्र है।

भावार्थ- गर्भ में जैसा पुत्र आता है माता-पिता केभाव भी वैसे ही

हो जाते हैं तथा विशेषकर माता क भाव तो वेसे ही हो जाते है। यदि गर्भ में धर्मात्मा पुत्र होता है तो तीथर्यात्रा, जिनपूजन, मुनिदर्शन, पात्रदान आदि के भाव होते हैं यदि गर्भ में वीरपुत्र हो जाता है तो शत्रुओं को विजय करने के भाव होते हैं यदि गर्भ मं दरिद्रपुत्र आता है तो उसकी माता के परिणाम दरिद्र रूप हो जाते हैं, अभक्ष्य पदार्थों को भक्षण करने के परिणाम हो जाते हैं अथवा फटे-पुराने वस्त्र पहनने के परिणाम हो जाते है। गर्भ के समय में माता जैसे परिणाम होते हैं उनसे ही गर्भ में आये हुए पुत्र का भाग्य जाना जा सकता है।

पिता-पुत्र के विरोध का कारण बतलाते है।-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव! कस्मात् ।

पितुः सुपुत्रस्य मिथश्र वैरम् ।।

अर्थ- हे भगवन् अब कुपाकर यह बतलाइये कि पिता-पुत्र का विरोध किस पापकर्म के उदय से होता है?

उत्तर- यः कारयित्वा विषमं विवादं,

पित्रा समं पुत्रकलिं च दृष्टवा ।

तृष्येन्न कुर्याद्विनयं गुरोश्र ,

पापादमुष्माच्च मिथो विरोधी ।।39।।

अर्थ- जो पुरूष एक दूसरे के साथ भारी विवाद कराता रहता है, जो पिता के साथ होने वाली पुत्र की कलह को देखकर अत्यंत प्रसनन होता है व जो गुरूजनों की विनय नहीं करता वह पुरूष इन पापकर्मो के उदय से परस्पर विरोध करने वाला उत्पनन होता है।

भावार्थ- जो पुरूष इस भव में माता-पिता के साथ व विशेषकर गुरू के साथ विरोध करता है, उनका विनय नहीं करता, उनके साथ वाद-विवाद करता है, किसी पिता-पुत्र के लड़ाई-झगड़े को देखकर प्रसनन होता

है अथवा और भी ऐसे ही काम करता है वह पुरूष परलोक परलोक में भी अपने पिता व गुरूजनों के साथ अथवा पुत्र व शिष्य के साथ सदाकाल विरोध करता रहता है। अथवा सबसे लड़ता रहता है। यही समझ कर किसी के साथ भी लड़ाई- झगड़ा नहीं करना चाहिये।

लंगड़ा होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कमीदयान्मे वद देव ! कस्मात् ,

पादेन खंजो भवतीह जीवः ।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से लंगड़ा होता है ?

उत्तर- छिन्नौ परेषां चरणौ च हस्तौ,

येनास्त्रशस्त्रैः करणेऽपि नेत्रे ।

मानादपांङ्गं च तिरस्करोति,

पादेन खज्जो भवतीह जीवः ।।40।।

अर्थ- जो पुरूष अपने अस्त्र शस्त्रों से दूसरों के हाथ पैरों को काट डालता है, अथवा कान-नाक काट लेता है व नेत्र फोड़ देता है अथवा जो अपने अभिमान से लूले-लंगडत्रे आदि अपंग पुरूषों का तिरस्कार करता है वह पुरूष मरकर लूला-लंगड़ा व अपंग होता है।

भावार्थ- जिस पुरूष के हाथ पैर कट जाते हैं वह पुरूष बहु दुःखी हो जाता है। वह पुरूष आने जाने से भी लाचार हो जाता है खाने-पीने से भी लाचार हो जाता है, द्रव्य कमाने से भी लाचार हो जाता है तथा प्रायः सब कामों से लाचार हो जाता है ऐसे पुरूष को प्रत्येक कार्य के करने में महादुःख होता है। जो पुरूष ऐसे दुखी पुरूषों का तिरस्कार करता है अथवा अन्य पुरूषों के हाथ पैर काटकर इस प्रकार दुःखी बना देता है, वह पुरूष भी मरकर परलोक में लूला-लंगड़ा होकर दुःखी होता है। यही

समझकर कभी किसी जीव को किसी प्रकार का दुःख नहीं देना चाहिए। सबको अपने समान सुखी बनाने का प्रयतन् करते रहना चाहिए।

नरक जाने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात,

स्याच्छ्वभ्रगम मनुजश्र मृत्वा ।।

अर्थ- हे भगवन् अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से मरकर नरकगामी बना जाता है अर्थात् किस किस पाप के करने से नरक जाता है ?

उत्तर- अत्यन्तकोपादसुहिंसनाद्वा,

देवस्य धर्मस्य गुरूर्विरोधात् ।

बेधोः समं वैरविरोधयोगात,

स्यात्पापमूर्तिर्नरकस्य गामी ।।41।।

अर्थ- जो पुरूष अत्यंत क्रोध करता है व प्राणों का घात करता है अथवा जो पुरूष देव, धर्म, गुरूका विरोध करता रहता है। अपने भाइयों के साथ वैर विरोध करता रहता है वह पापमूर्ति मनुष्य अवश्य ही नरकगामी होता है।

भावार्थ- क्रोध करना महापाप का कारण है, क्रोध करने से इस लोक में अनेक अनर्थ होते हैं, क्रोध के करने से ही यह जीव अनेक प्राणियों के प्राणों का घात कर देता है, क्रोध के कारण ही माता,पिता,पु,, स्त्री आदि का घात कर देता है और क्रोध के करने से ही अपने भाई का व किसी अन्य धर्मात्मा भाई का घात कर देता है, ऐसा घातक मनुष्य मरकर अवश्य ही नरक जाता है। इसी प्राकर देव, धर्म व गुरू का विरोध करना सबसे बड़ा पाप है, देव, धर्म, गुरू तीनों ही समस्त जीवों का कल्याण करने वाले हैं, समस्त जीवों को मोद्वा का मार्ग बतलाने वाले हैं तथा स्वयं

परम वीतराग हैं और वीतरागता का ही उपदेश देते है। ऐसे परम कल्याणमय देव, धर्म, गुरू के साथ विरोध करना व उनका अपमान करना व उनकी आज्ञा को न मानना महापाप माना जाता है। ऐसे पापों का फल नरक ही है। इसी प्रकार अपने भाइयों के साथ विरोध करना व धर्मात्मा भाइयों के साथ विरोध करना भी पाप का कारण है। धर्म को न मानने वाला पुरूष ही धर्मात्मा का विरोध कर सकता है। और इसीलिये ऐसा पुरूष अवश्य नरक जाता है यही समझकर देव, धर्म, गुरूका व धर्मात्मा पुरूषों का विरोध कभी नहीं करना चाहिये, नकभी किसी प्राणी का घात करना चाहिये और न कभी क्रोध करना चाहिये। छोटा वामन (बौना) शरीर प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कमीदयान्मे वद देव ! कस्मा-

ज्जीवो भवेद् वामनदेहध्याारी ।।

अर्थ- हे भगवन् अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव कि पापकर्म के उदय से वामनरूप छोटे शरीर को धारण करता है।

उत्तर- गर्वीण यो वामनदेहनिन्दा,

तस्यापमानं ननु तद्विघातम्।

दुःखं प्रदातुं च करोति काङ्क्षां,

स स्यान्नरो वामनदेहधारी ।।42।।

अर्थ- जो पुरूष अपने शरीर के अभिमान से छोटे वामन शरीर को धारण करने वालों की निंदा करता है, उनका अपमान करता है, व उनका घात करता है अथवा अनको दुःख देने की इच्छा करता है ऐसेा पुरूष मरकर ऐसे ही छोटे वामन शरीर को धारण करता है।

भावार्थ- शरीर के छह संस्थान है। उनमें वामन भी एक संस्थान है। वह निकृष्ट संस्थान है, क्योंकि वामन शरीर को धारण करने वाला कमनुष्य कभी भी विशेा व उत्तम कार्य नहीं कर सकता। इसीलिए वह

निंद्य शरीर वाला कहलाता हैं जो मनुष्य इसपर्याय में वामन व छोटे शरीर धारण करने वालों की निंदा करते हैं वउनकी हँसी उड़ाते है।, उनका अपमान करते हैं अथवा उनको मारते हैं, पीटते हैं, उनका घात करते है। व अन्य अनेक प्रकार के दुःख देने की इच्छा करते है। ऐसे मनुष्य मरकर वामन ही होते हैं तिा वे भी अनेक अन्य जीवों के द्वारा मारे जाते हैं, पीटे जाते हैं, अपमानित किये जाते हैं, निंदनीये कहे जाते हैं और अनेक प्रार से दुःखी किये जाते हैं यही समझकर कभी किसी की निंदा व अपमान नहीं करना चाहिए और न कभी किसी को दुःख देना चाहिए।

पशुयोनि प्रापत करने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात,

योन्यां पशोर्जायत एव जीवः ।।

अर्थ- हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव कि पापकर्म के उदय से पशुयोनि में उत्पनन होता है ?

उत्तर- स्वाचारहीनस्य करोति शंसां ,

वर्ज्याशनं वा गुरूदेवनिन्दाम् ।

भाराधिकं जीव जलान्नरोधं,

योन्यां पशोर्जायत एव कौ सः ।।43।।

अर्थ- जो पुरूष श्रेष्ठआचरणों से रहित मनुष्यों की प्रशंसा करता है, अभक्ष्य भक्षण करता है, व देव, धर्म, गुरू की निंदा करता है, या पशुओं पर अधिक बोझ लादता है अथवा जी के अनन्पान को रोक देता है ऐसा मनुष्य मरकर इसी पृथ्वी पर पशुयोनि में उत्पनन होता है।

भावार्थ- जो पुरूष श्रेष्ठ आचरणें के सूप को नहीं जाता व श्रेष्ठ आचरणों को धारण नहीं करता ऐसा मिथ्यादृष्टि पुरूष ही आचरणहीन मनुष्यों की प्रशंसा किया करता है, ऐसा ही मिथ्यादृष्टि मनुष्य कभी न

भक्षण करने योग्य कंद-मूल आदि अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करता है। पशुओं पर उनकी शक्ति से अधिक बोझा लादता है व उनकी शक्ति से अधिक उनको चलाता है अथवा समयानुसार उनको भोजन-पान नहीं देता बहुत कम देता है, अथवा गर्मी-सर्दी से उनकी रक्षा नहीं करता तथा जो देव-धर्म-गुरू की व शास्त्रों की निंदा किया करता है। अथवा अपने तीव्रमिथ्यात्व कर्म के उदय से उनकी आज्ञाओं का उल्लंघन किया करता है ऐसा मनुष्य मरकर पशुओं की योनि में ही उत्पनन होता है।

कुभोगभेमि में उत्पन्न होने के कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कमीदयान्मे वद देव ! कस्मात,

कुभोगभूम्यां च भवेत्कुजनम ।

अर्थ- हे देव ! अब कृपाकर यह बतलाइये यह जीव किस पापकर्म के उदय से कुभोगभूमि मे कुजनम धारण करता है ?

उत्तर- मिथ्यात्वभाजे मुनयेऽन्नदानं,

येन प्रदत्तं च जलौषधादि ।

सद्दृष्टिसाधोश्र कृतोऽपमान ,

उत्पद्यते न स कुभोगभूस्याम् ।।44।।

अर्थ- जो पुरूष मिथ्यादृष्टि साधुओं को अनन, जल व औषधि आदि का दान देता है और जो सम्यग्दृष्टि श्रेष्ठ साधुओं का अपमान करता है ऐसा पुरूष मरकर कुभोगभूमि में उत्पनन होता है

भावार्थ- बीज बोने के लिये जैसी भूमि होती है वेसा ही उसका फल प्रापत होता है। अच्छी भूमि में बीजबोने से अच्छा फल मिलता है, बुरी भूमि में बीज बोने से बुरा फल मिलता है और ऊसर में बोने से कुछ फल नहीं मिलता। इसी प्रकार जो पुरूष सम्यग्दृष्टि वीतराग निर्ग्रंथ साधुओं को आहारदान देता है व शास्त्र, औषधि आदि का दान देते है

उनको उस दान के फल से उत्तम भोगभूमि प्राप्त होती है। सम्यग्दृष्टि व्रती श्रावकों को दान देने से जघन्यभोगभूमि प्राप्त होती है इसका भी कारण यह है कि सम्यग्दृष्टि वीतराग र्न्रिथ साधु उत्तमपात्र कहलाते हैं। सम्यग्दृष्ि व्रती श्राावक मध्यमपात्र कहलाते हैं और सम्यग्दृष्टि अव्रती श्राावक जघन्यपात्र कहलाते हैं इसी प्राकर मिथ्यादृष्टि व्रती साधु कुपात्र कहलाते हैं। उनको दान देने से कुभोगभूमि प्राप्त होती है मिथ्यादृष्टि अव्रती साधु अपात्र कहलाते है। उनको दान देने से कोई किसी प्रकार का फल नहीं मिलता है। अव्रती मिथ्यादृष्टि को दान देना व्यर्थ है। इसी प्राकर जो पुरूष सम्यग्दृष्टि निग्र।थ वीतराग गुरूओं की निंदा करता है वह भी मिथ्यादृष्टि ही कहलाता है और ऐसा मिथ्यादृष्टि ही वीतराग निर्ग्रंथ साधुओं की निंदा कर सकता है, इसीलिये वह कुभोगभूमि में उत्पनन होता है। कुभोगभूमि में मनुष्य ही होते हैं, परंतु वे तिर्यंचों के समान ही होते हैं। यही समझकर सम्यग्दृष्टि वीतराग निर्ग्रंथ ुरूओं को ही दान देना चाहिये अथवा सम्यग्दृष्टि श्राावकों को दान देना चाहिए। इनके सिवाय अन्य किसी को देना हो ताक करूणापूर्वक भूखे प्यासे को भोजन देना चाहए जो वह अन्यत्र ले जाकर खा लें। ऐसे दान को करूणादान कहते हैं।

कुग्रामवासी होने का कारण बतलाते है-

प्रश्न- कमीदयान्मे वद देव ! कस्मात् ।

कुग्रामवासी भवतीह जीवः ।।

अर्थ- हे भगवन् अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापर्क के उदय से कुग्राम रहने वाला होता है ?

उत्तर- आरोप्य दोषं हि हठादसत्यं,

निष्कासिता येन जना वनादौ।

कुक्षेत्रजन्तोश्र कृता प्रशंसा,

कुग्रामवासी स भवेत्कुभावात् ।।45।।

अर्थ- जो पुरूष अन्य लोगों को झूठा दोष लगाकर हठपूर्वक गाँव से निकाल कर वन में भेज देता है अथवा जो नीच क्षेत्र में रहने वाले जीवों की प्रशंसा करता रहता है ऐसा पुरूष मरकर अपने दृष्ट परिणामों से नीच व छोटे आँव में रहने वाला कुग्रामवासी होता है।

भावार्थ- किसी पुरूष का घर छूड़ाना व उसे निकाल देना एक प्रकार का पाप है और वह हिंसानाम के पाप मे अंतभूर्त होता है, क्योंकि जिस पुरूष को निकाल दिया जाता है वह पुरूष घरबार से रहित होकर महादुःखी होता है। इसीलिए इस पाप का रने वाला पुरूष कुक्राम ें उत्पनन होकर महादुःख प्रापत कया करता है। इसी प्रकार जो पुरूष अपने पापरूप व नीच परिणामों के कारण म्लेच्छ आदि कुक्षेत्र में उत्पनन होने वाले मनुष्यों की प्रशंसा किया करता है वह भी मरकर अपने नीच परिणामों के फल से कुग्रामवासी ही होता है। यही समझकर कभी किसी को अपने घर से नहीं किालना चाहिए। पशु पक्षियों के घोंसले व घर भी नहीं बिगाड़ने चाहिये और न उनका स्थान छुड़ाना चाहिए। कयोंकि घर व घोंसला छूड़ाने से पशु पक्षियों को भी महादुःख होता है। कभी-कभी बिना घर घोंसले के उन पशु पक्षियों को मर जाना भी पड़ता है। इसीलिए किसी को भी किसी प्रकार दुःख नही देना चाहिए और किसी का घर घोंसला बिगाड़ना चाहिए।

व्यवहारशून्य होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात् ।

स्यादेव जीवो व्यवहारशून्यः ।।

स्यादेव जीवो व्यवहारशून्यः ।।

अर्थ- हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से व्यवहार शून्य होता है।

उत्तर- दुष्टवाप्यकुप्यद् व्यवहारदक्षान् ,

वृथाभिमानं च विधाय तुष्येत् ।

वा धीमतोऽज्ञानत एव निदां,

स्यात्तीव्रपापाद् व्यवहारशून्यः ।।46।।

अर्थ- जो मनुष्य किसी व्यवहार चतुर मनुष्यों को देखकर व्यर्थ ही क्रोधित होता है अथवा जो व्यर्थ का अभिमान कर संतुष्ट होता है। अथवा जो पुरूष अपनी अज्ञानता के कारण बुद्धिमान पुरूषों की निंदा किया करता है। ऐसा पुरूष मरकर व्यवहारशून्य होता है।

भावार्थ- शास्त्रज्ञान में चतुर होना और बात है तथा व्यवहार में चतुर होना और बात हैं ऐसे अनेक विद्वान हैं जो शास्त्रज्ञान में बहुत ही चतुर हैं अथवा अनेक शास्त्रों के जानकार हैं तथापि वे व्यवहार में चतुर नहीं होते हैं तथा ऐसे भी मनुष्य हैं जिन्हें शास्त्रज्ञान कुछ भी नहीं है अथवा जो पढ़े लिखे भी नहीं हैं परंतु व्यवाहर ज्ञान में अत्यंत चुर होते हैं। इसका भी कारण यह है कि शास्त्रज्ञान कुछ भी नहीं है अथवा जो पढ़े लिखे भी नहीं हैं परंतु व्यवहार ज्ञान में अत्यंत चतुर होते हैं। इसका भी कारण यह है कि शास्त्रज्ञान के लिये सरलबुद्धि की आवश्यक्ता है। जिनकी बुद्धि सरल होती उनको शास्त्रों का ज्ञान शीघ्र होता है परंतु वे ही सरल बुद्धिवाले शास्त्रज्ञानी पुरूष व्यवहारज्ञान में चतुर नहीं होते, क्योंकि व्यवहार ज्ञान के लिये कुछ तीक्ष्ण वा कुटिल बुद्धि की भी आवश्यक्ता होती है। यद्यपि कुटिल बुद्धि का होना निंदनीय है तथापि कभी-कभी वह व्यवहार में लाई जाती है। व्यवहार ज्ञान के लिये तीद्वण और तत्काल स्फुरायमान होनेवाली बुद्धि की आवश्यक्ता है।

जो मनुष्य व्यर्थ का अभिमान करते हैं व चतुर पुरूषों की निंदा करते हैं अथवा चतुर पुरूषों को देखकर क्रोधित होते हैं ऐसे पुरूष मरकर व्यवहारशून्य होते हैं। अधिक अनन खाने वाला किस कारण से होता है यही दिखलाते हैं-

प्रश्न- कमीदयान्मे वद देव ! कस्मात,

बह्वन्नभुक्तऽपि भवेन्न तृप्तः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से अधिक अनन्त खा लेने पर भी तृप्त नहीं होता ?

उत्तर- दत्तन्नदानं पशुपक्षिकेभ्यो,

बलात्स्वयं सेवितवान् नरो यः ।

यो भोजनादौ च रतो न दाने,

मूर्ख स मृत्वा विपुलान्नभोजी ।।47।।

अर्थ- जो पुरूष पशु-पक्षियों के लिये दिये हुए अनन्त को बलपूर्वक स्वयं सेवन का लेता है। अथवा जो पुरूष सदा काल खाने पीने में ही लगा रहता है, दान देने के लिये जिसक मन कभी नहीं चलता ऐसा मुर्ख पुरूष मरकर अधिक अनन्त खाने वाला होता है।

भावार्थ- जो पुरूष अपने दिये हुए दान को अथवा अपने पूर्वजों के दिये हुए दान को अथवा अन्य किसी दूसरे के द्वारा दिय हुए दान को स्वयं ले लेता है वह पुरूष पापियों में भी महापापी होता है। एक तो वे पुरूष है जो किसी जिनालय व जिनप्रतिमा बनवाने के लिये अथवा किसी स्वाध्यायशाला के दिये दान देते है। या भूखे मरते पशु पक्षियों ो व भिक्षुकों के दान दान देते हैं अथवा अन्य किसी ऐसे ही काम के लिए दान देते हैं ऐस पुरूष वास्तव में पुण्यवान हैं और वे परलोक के लिये भी अपना पुण्यकर्म के साथ ले जाते हैं। परंतु एक वे मनुष्य हैं जो जिनालय व जिनप्रतिमा के लिये व अन्य किसी धर्मकार्य के लिये दिये हुए धन को भी बलपूर्वक स्वयं खा जाते हैं अथवा लूले, लंगड़े, पशुओं कोव कबूतर आदि पक्षियों को डाले हुए दोन भी बटोकर स्वयं खा जाते हैं ऐसे मनुष्यों को महापापी समझना चाहिये। धर्मशास्त्र की ऐसीआज्ञा है कि कमाये हुए धन में से कुछ न कुछ दान में अवश्य देना चाहिये और वह जिनपूजन, पात्रदान ऐसे उत्तम कायी में ही देना चाहिये परंतु अच्छी कमाई करते हुए भी जिनालय में दिये हुए दान को हड़प लेते हैं अथवा अन्य किसी कार्य में दिये हुए दान को स्वयं काम में ले लेते हैं यहां तक कि लूले, लंगड़े पशु

पक्षियों के लिये दिये हुए दान को भी स्वयं खा जाते हैं उनका पाप का क्या ठिकाना है ? परलोक में जाकर ऐसे पुरूषों को भस्मकव्याधि होती है। जिससे कि चाहे जितना अनन खा लेने पर भी वे कभी तृप्त नहीं होते। यही समझ कर बुद्धमान मनुष्यों को दिये हुए दान में से कभी एक पैसा नहीं लेना चाहिए। तथा अपने कमाये हुए धन में से सदाकाल कुछ न कुछ दान अवश्य देते रहना चाहिए।

निर्धनता का अन्य कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात् ,

धनेन हीनो भवतीह जीवः ।

अर्थ- हे प्रीाो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस पापकर्म के उदय से धनहीन दरिद्री होता है ?

उत्तर- धनं परेषामहहृत्य तुष्येद्,

दृष्ट्वा हरान्तं गृहरत्नराज्यम् ।

कृत्वापमानं धनहीनजन्तोः,

स द्रव्यहीनो भवति ह्यभागय ।।48।।

अर्थ- जो पुरूष दूसरे के धन को हरणकर संतुष्ट होता है अथवा जो दूसरे के घर, रतन, राज्य आदि को हरण करने वाले को देखकर प्रसनन होता है अथवा जो धनहीन मनुष्यों का अपमान कर संतुष्ट होता है वह मनुष्य मरकर भाग्यहीन दरिद्री होता है।

भावार्थ- दूसरे का धन हरण करना व हरण करने वाले को देखकर प्रसनन होना चोरी है। जो पुरूष इस प्रकार की चोरी करता है, दूसरे का धन छीनकर उसको निर्धन बनाता है अथवा किसी दुखी निर्धन का अपमान करता है वह मनुष्य मरकर अवश्य ही धनही दरिद्री होता है। इसका भी कारण यह है कि यह धन मनुष्यों का बाह्याप्रणण है। धन का

स्वामी मनुष्य जब धन की रखवाली करने लगता है तब यह यही कहता है कि "प्राण रहने तक तो मुझसे कोई धन ले नहीं सकता। मुझे मारकर भले ही कोई ले जाय। इससे सिद्ध होता है कि धन प्राणों से भी अधिक प्रिय होता है। ऐसे धन को जो कोई हरण कर लेता है वह उसक ेप्राणों को ही हरण कर लेता है। इसीलिए दूध्सरे के धन को हरण कर लेना माहपाप कहा जाता है। इसमें हिंसा और चोरी दोनों का ही पाप लगता है इसीलिऐ ऐसे काम को करने वाला मनुष्य परलोक में जाकर अवश्य ही निर्धन और महादुःखी होता है। यही समझकर कभी किसी का धन हरण नहीं करना चाहिये।

कुत्सित काव्य करने वाले का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात् ।

दक्षः कुकाव्ये भवतीह जीवः ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापकर्म के उदय से यह जीव कुत्सित काव्य करने में निपुण होता है ?

उत्तर- कुकाव्यशास्त्रेऽप्यकरोद् रूचिं यः,

श्रुत्वा तााि दन्तकथामसाराम् ।

कुशास्त्रदानं प्रविधाय तुष्येत,

कुकाव्यशास्त्रे निपुणो भवेत्सः ।।49।।

अर्थ- जो पुरूष कुत्सित काव्यशास्त्रों मे रूचि रखता है, व साररहित दंतकथाओं को सुनकर संतुष्ट होता है अथवा कुत्सित काव्यशास्त्रों का दान देकर संतुष्ट होता है ऐसा मनुष्य मरकर कुत्सित काव्य शास्त्रों की रचना करने मे व उनके जानने में निपुण होता है।

भावार्थ- कामशास्त्र की कथा कहने वाले व कामदेव की वृद्धि करने वाले या काम को उत्तेजित करने वाले काव्यों की कुत्सित काव्य कहते हैं।

ऐसे कुत्सित काव्यों की रचना करने से महापाप होता है क्योंकि ऐसा काव्य जब तक विद्यमान रहता है तब तक अनेक मनुष्य उसे पढ़कर व सुनकर पाप उत्पनन करते रहते है।। इसीलिऐ ऐसे काव्यों को कुत्सितकाव्य कहते है। और उनका पढ़ना-पए़ाना महापाप माना जाता है इसी प्रकार अनेक दंत कथाएँ ऐसी हैं जिनके ुछि सार नहीं हैं अथवा निके सुननेसे काम उत्तेजित होता है अथवा क्रोध बढ़ता है अथवा मायाचारी की शिक्षा मिलती है व अन्य अनेक नीच कामों की शिक्षा मिलती है, ऐसी दंतकथाओं का सुनना भी पाप ही कहलाता है, क्योंकि ऐसी कथाओं के सुनने से भी परिणामों मे दुष्टता आती जाती है। इस प्रकार ऐसे कुत्सित शास्त्रों का दान देना भी पाप का कारण है। क्योंकि ऐसा कुत्सित शास्त्र जिसको दिया जाता है वही पुरूष उसे पढ़कर व सुनकर पाप उत्पनन करता रहता है। तथा यह पापें की परंपरा सैकड़ों वर्ष तक चलती रहती है। इसीलिये ऐसे पाप शास्त्रों में जो रूचि करता है व उनको सुनता है व दान देता है वह मनुष्य परलोक में जाकर महापाप उत्पनन करने के लिए कुत्सित काव्य करने में ही चतुर होता है। जिससे कि महापाप उत्पनन करता हुआ नरकादिक के दुःख प्रापत करता है। अतएव भव्य जीवों को ऐसे कुत्सित काव्य कभी नहीं करने चाहिये और न कभी सुनने चाहिये।

यह जीव अधिक भार ढोने वाला कयों होता है यही दिखलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात् ।

भवेद्धि जीवो बहुभारवाही ।।

अर्थ- हे देव! अब कृपाकर बतलाइये कि कि पापकर्म के उदय से यह जीव अधिक बोझाा ढोने वाला उत्पनन होता है ?

उत्तर- अरोपणाद्वाधिकभारवस्त

छलेन हीनाधिकवाहनाद्वा ।

दीनान् पशून् वाऽधिकताडनाद्वा,

तुष्येत् स ना स्याद्वहुभारवाही ।।50।।

अर्थ- जो पुरूष दीन पशुओं पर अधिक बोझाा लादकर प्रसनन होता है व छल सेदीन पशु व मनुष्यों को अधिक काम में लेकर व उनसे शक्ति से अधिक काम कराकर प्रसनन होता है अथवा दीन पशुओं को अधिक ताड़न कर प्रसनन होता है ऐसा मनुष्य परलो में जाकर अधिकर बोझाा ढोनेवाला होता है।

भावार्थ- दीन-हीन मनुष्यों पर व पशुओं पर अधिक बोझाा लादना,वउनसे उनकी शक्ति अधिक काम लेना व उनको अनुचितरीति से ताड़ना करना महापाप है। पशु वचनहीन होते हैं वे कुछ कही नही सकते, परंतु शक्ति से अधिक बोझाा लादने पर वे दुःखी होते हैं जिस प्राकर अधिक बोझाा लादेन से पशु दुःखी होते है। उसी प्राकर दीन अनाथ दरिदी मनुष्यों पर यदि अधिक बोझाा लाद दिया जाय तो वे भी बहुत दुःखी होते हैं यह बात दूसरी है कि ऐसे मनुष्य अपने पेट के लिये अधि दुःख सहन कर लेते हैं परंतु है तो यह अन्याय। इसी प्रकार उनसे बलपूर्वक अधिक काम लेना व उनको अधिक दंडित करना भी अन्याय है। जो पशु लूले, लंगड़े हैं व रोगी हैं अथवा जिनके शरीर पर घाव हो रहे हैं ऐस पशुओं से कभी काम नहीं लेना चाहए। ऐसे पशुओं से काम लेना महा अन्याय है। तथा इसीलिऐ ऐसे अन्याय करने वाले मनुष्य मरकर ऐसे ही दीन-दरिद्री मनुष्य व पशु होते हैं जिन पर उनकी शक्ति से अधिक बोझाा लादा जाता है। अतएव किसी जीव को किसी प्रकार से भी नहीं सताना चाहिए।

दीर्घ आयु पाकर भी महादुःखी किस कारण से होता है वही दिखलाते हैं-

प्रश्न- पापेदयान्मे वद देव ! कस्मात् ।

दीर्घायुरेवं भवतीह दुःखी ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव लंबी आयु पाकर भी महादुःखी क्यों होता है ?

उत्तर- द्वच्छेदनं वा खननं च ग्रह्याः ,

निष्कारणं येन कृतं कुपापम्

हठात् त्रसस्थावरजीवबाधा,

दीर्घायुरेवापि भवेद्धि दुःखी ।।51।।

अर्थ- जो पुरूष बिनाा करण के वृक्षों को काटताहै, छोटे-छोटे पौधों को काटता है व बिना कारण के पृथ्वी को खोदता है, अथवा जो बिना ही कारण के हठपूर्वक त्रस स्थावर जीवों को दुःख पहुँचाता है ऐसा मनुष्य मरकर दीर्घ आयु पाकर के भी महादुःखी होता है।

भावार्थ- यद्यपि इस संसार में दीर्घ आयु का प्रापत होनाअच्छा समझाा जाता है, परंतु शारीरिक व मानसिक दुःख होने परव दरिद्रता होने पर अधिक आयु वाले काक महादुःख होता है। आयू के अधिक होने पर दन्द्रियां सब शिथिल हो जाती हैं, शरीर निर्ब ल हो जाता है, उठने बैठने की शक्ति नहीं रहती, कुछ काम होता नहीं तााि सब प्रकार से बेकार हो जाता है। ऐसी अवस्था में यदि दद्रिता हो, व पुत्र-पौत्र दुर्वचन कहने वाले हों, व शरीर में अनेक रोग उत्पनन् हो गयों, खानं-पीने को मिलता न हो व और भी किसी प्रकार दुःख हो तो फिर उस बड़ी आयु का कटना अत्यंत कठिन हो जाता है। उस बड़ी आयु से वह स्वयं दुःखी होता है तथा अन्य देखने वाले भी दुःखी होते हैं। ऐसे मनुष्य को देखकर देखनेवाले भी यही कहते हैं कि '' अब तो यह शीघ्र ही मार जाय तो अच्छा'' परंतु महादुःखी होता हुआ भी वह मनुष्य बिना आयु पूरी किये मर नहीं सकता। सिससे सिद्ध होता है कि दुःखी होने पर दीर्घायु का पाना और अधिक दुःखी बनाने के लिए होता है। तथा जो मनुष्य व्यर्थ के पाप किया करते है। बिना कारण व्यर्थ ही वृक्षों के पौधों को काट डालते हैं, पृथ्वी खोद डालते हैं, अगिन् लगा देते हैं, व्यर्थ पानी फैलाते रहते हैं व त्रस स्थावर जीवों को

अनेक प्रकार से दुखी किया करते हैं ऐस जीव मरकर दीर्घायु पाकर भी दुःखी होते हैं।

नपुसंक होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात् ।

नपुंसकः स्याद्भुवि सर्वनिन्द्य ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से समसत लोगों के द्वारा निंदनीय ऐसा नपुंसक होता है ?

उत्तर- क्रीह्यनङ्गे च रूचिः कुहास्ये ,

क्लीबस्य निन्दा भुवि तीव्रकामी ।

कुशीलहेताश्र कृतः प्रयत्नः,

इत्यादिपापात्स नपुंसकः स्यात् ।।52।।

अर्थ- जो पुरूष अनंगक्रीडा किया करता है, निंदनीय हँसी करन में प्रेम **रख है, जो** नपुंसक हिंजऊों की निंदा किया करता है, जो संसार में अत्यंत **तीव्रकामी** होता है और कुशील सेवन करने के लिए अनेक प्रयतन्न किया करता है वह पुरूष मरकर इन पापों के कारण नपुंसक होता है।

भावार्थ- जो न तो स्त्री होते हैं और न पुरूष होते हैं उनका नपुंसक कहते हैं। जिनकी इच्छा पुरूषों के साथ रमण करने की होती है। उनको स्त्रीलिंग माना जाता है तथा जिनकी इच्छा स्त्री के साथ रमण करने की होती है उनके पुल्लिंग माना जाता है, परंतु नपुंसकलिंग बालों की इच्छा नोनों के साथ रमण करने की होती है। यद्यपि नपुंसक नपुंसक ही होते हैं तथापि उनके ह्रदय में कामसेवन की लालसा अत्यंत तीव्र होती है। नपुंसक जीवों की कामवासना पजावे की (कंड़े की) अगिन्के समान होती

है। जो बहुत कालतक जलती रहती है। इसीलिये यह नपुंसक पर्याय अत्यंत निंद्य मानी जाती है। जो पुरूष काम सेन के अंगों को छोड़कर अन्यत्र क्रीडा किया करते हैं अथवा कामोत्तेतिज करने वाली निंदनीय हँसी करने में प्रेम रखते है। अथवा जिनके काम सेवन की लालसा अत्यंत तीव्र होती है अथवा जो लोगी कुशील सेवन करने के लिऐ परस्त्रियों को वश करने के लिए व परपुरूषों को वश करने के लिए अनेक प्रककार के निंदनीय प्रयतन किया करते हैं अथवा और भी ऐसे ही ऐसे काम किया करते हैं ऐस पुरूष व स्त्री मरकर अवश्य ही नपुंसक होते हैं। इसीलिये भव्यजीवों को इस निंदनीय पर्याय से बचने केक लिये सदाकाल अपने हृदय को शांत रखना चाहिये। काम सेवनप की तीव्रलालसा कभी नहीं रखनी चाहिये।

विकलत्रय होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव! कस्मात।

मृत्वेति जीवो विकलत्रयः स्यात् ।।

अर्थ- हे भगवन् अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से व कैसे पाप करने से मरकर विकलत्रय जीव होता है?

उत्तर- दुःखं प्रदत्तं विकलत्रयाणां,

सुनिदच्याताडनमरणादिः ।

बन्दीकृता वा त्रसजीववृन्दाः,

स तीव्रपापाद्विकलत्रये स्यात् ।।53।।

अर्थ- जो पुरूष्ज्ञ इस भव में अत्यंत निदच्यता के साथ विकलत्रय जीवों को दुःख देता है, अथवा उनको ताड़न करता है व मार है अथवा जो अनेक त्रसजीवों को घेर बटोरकर बंद कर देता है ऐसा मनुष्य अपने तीव्र पाप के उदय से मरकर विकलत्रय जीवों मे पैदा होता है।

भावार्थ- दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चैइन्द्रिय जीवों को विकलत्रय कहते हैं, लट, पई, गिंडोये, जोंक आदि दो इन्द्रिय जीव कहलाते हे। चींटी, खटमल आदि जीव तेइन्द्रिय कहलाते हे। मक्खी, भोंरा, बर्र, ततैया, पतंगा आदि चैइन्द्रिय जीव कहलाते हे।। दो इन्द्रिय के स्पर्श, रसना ये दो इन्द्रिय्याँ होती है। तेइन्द्रिय के स्पर्श, रसना, घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ होती है। तथा चैइन्द्रिय के स्पर्श, रसना, घ्राण और चखु ये चार इन्द्रियाँ होती है। ये तीनों ही प्रकार के जीव त्रस होते है। और पूर्ण इन्द्रियाँ न होने के कारण विकलत्रय कहलाते हैं। विकलत्रय महादुखी होते हैं और उन्हें प्रत्येक समय में मरने का डर लगा रहता है। जो पुरूष इस भमें विकलत्रय जीवों को दुःख देते हैं, उन्हें मारते हैं, बाँधकर उड़ाते है। उनके ऊपर धूल फेंककर दुखी करते हैं व त्रस जीवों को बाँधकर रखते हैं, घेरकर रखते हैं, भूखे प्यासे रखते हैं, सर्दी गर्मी में बँधे रखते हैं व अन्य किसी प्रकार से दुःख देते हैं वे जीव इस तीव्र पाप करने के कारण विकलत्रय पयार्य में उत्पनन होते हैं

दास होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात् ।

दासः परेषां भवतीह जीवः ।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से इस संसार में दूसरों का दास हो जाता है ?

उत्तर- यः कारयित्वा स्वगृहादियकार्य,

ददाति दीनाय धनादिवित्तम् ।

स्वप्नेपि धैर्य ह्यदधान्न लोभाद्,

दासः परेषां स भवेदभाग्यः ।।54।।

अर्थ- जो पुरूष किसी दीन मनुष्य को अपने घर का काम कराकर धन देते है और लोभ के कारण स्वपन में भी कभी उनका धैर्य नहीं देता है

ऐसा पुरूष मरकर परलोक में दूसरे का दास होता है।

भावार्थ- दीन-हीन पुरूषों को व भूखे प्यासे पुरूषों को करूणापूर्वक धनादिक का दान देना चाहिये। धन पाकर दान देना प्रतयेक गृहस्थ का कर्तव्य हो जाता है। परंतु जो पुरूष लोभ के कारण दान के नाम से थोडा सा धन तो देते है।, परंतु उससे घर का सब काम कराकर व उतने की मजूरी कराकर थोड़ा सा धन देते हे। ऐसे पुरूष मरकर दूसरे के दास होते है। और मजदूरी कर अपना पेट भरते हैं फिर भी मजदूरी मिलती है व नहीं भी मिलती है। इस प्राकर वे जीव महादुखी होते हैं। यही समझकर दान देकर कभी उससे बदला नहीं चुकाना चाहिये। दीनोंाक`करूणापूर्वक ही दान देना चाहिये।

स्त्रीपर्याय प्रापत होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव! कसमात् ।

प्राप्नोति जीवो ललनाशरीरम् ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से स्त्रीपयार्य को प्राप्त होता है ?

उत्तर- स्त्रीवेषिजीवं प्रविलोक्य तुष्येत,

करोति नित्यं ललनाभिलाषाम् ।

हासयं गतिं दारसमं च वार्तां,

मृत्वा नरोऽयं ललना भवेद्धि ।।55।।

अर्थ- जो पुरूष स्त्री का वेष धारण करने वाले मनुष्यों को देखकर संतुष्ट **होता है**, तथा जो सदाकाल स्त्रियों की अभिलाषा करता रहता है और जो स्त्रियों ही समान हँसता है, स्त्रियों के ही समान चला है और स्त्रियों ही समान बातचीत करता है ऐसा मनुष्रू मरकर अवश्य ही स्त्रीपर्याय को प्राप्त होता है।

भावार्थ- इस संसार में ऐसे अनेक मनुष्य हैं जो सदा काल स्त्रियों के साथ ही बैठते-उठते हैं, उनहीं के साथ बातचीत करते हैं, मनुष्य पर्याय से स्त्रीपर्याय को उत्तम समझते हे। और इसीलिये जो हँसना, गाना, चलना, बातचीत करना, मटकना, वस्त्र पहनना, आभूषण पहनना आदि समस्त कार्य स्त्रियों के समान करते है। ऐसे पुरूष मरकर हपने उनहीं पापरूप परिणामों के कारण स्त्रीपर्याय को प्रापत होते हैं वास्तव में देखा जोय तो स्त्रीपर्याय अत्यंत निंद्यपर्याय हैं प्रसूति के समय उसे अनेक प्राकर के महादुःख उइाने पड़ते हैं तथा वह सदाकाल पराधीन रहती हे। इसीलिये ऐसी स्त्रिपर्याया में जन्म लेना पाप का ही कारण माना जाता है।

स्थावर शरीर धारण करने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव! कस्मा।

ज्जीवो भवेत्स्थावरदेहधारी ।।

उत्तर- धर्मस्य देवस्य गुरोः प्रणिन्दा,

कुदेवधर्मादिगुरोः प्रशंसा ।

स्वचारनिछाऽपि कृतैव येन,

स स्यान्नरः स्थावरदेहधारी ।।56।।

अर्थ- जो पुरूष भगवान अरहंत देवकी निंदा करता है अहिंसामय धर्म और वीतराग निर्ग्र।थ गुरूओं की निंदा करता है, जो कुदेव, कुधर्म और कुगुरू की निंदा प्रशंसा करता है और श्रेष्ठ आचरणों की भी निंदा करता है, ऐसा पुरूष मरकर अवश्य स्थावशरीर धारण करता है।

भावार्थ- एकेन्द्रिय जीवों को स्थावर कहते हैं, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक, अगिन्कायकि और वनस्पतिकायिक के भेद से स्थावर जीवों के पाँच भेद हैं निगोदिया जीव भी स्थावर कहे जाते हैं ये निगोदिया जीव एक श्वासमें अठारह बार जन्म लेते हैं और अठारह बार ही मरण करते है। इस संसार में जनम मरण के समान अन्य कोई दुख

नहीं है तथा वह महादुख निगोदिया जीवोकं के एक श्वास में अठारह बार प्रापत होता है। ऐसा अत्यंत पापमय तथा निंदनी स्थावर शरीर देवशास्त्र-गुरू की निंदा करने से, कुदेव, कुधर्म, कुगुरूकी प्रशंसा करने से और आचरणों की निंदा करने से प्राप्त होता है। इसीलिये भव्य जीवों को देव-शास्त्र-गुरू की निंदा नहीं करनी चाहिये।

अंगहीन होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव ! कस्मा-

दङ्गैरूपाङ्गैर्भवतीह हीनः ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से अंग उपांग से हीन होता है ?

उत्तर- अङ्ग ह्युपाङ्गं च परस्य, येन,

विच्छेदितं वा भवनं प्रणष्टम् ।

दृष्ट्वाङ्गहीनं स्वयमेव तुष्येत,

भवेत्स दुष्टश्र किलाङ्.गहीनः।।57।।

अर्थ- जो पुरूष दूसरे के अंग उपांगों को काट डालता है व दूसरों का घर नष्ट कर देता है। अथवा जो अंक-उपांगहीन मनुष्यों को देखकर संतुष्ट होता है ऐसा मनुष्य मरकर अंगहीन होता है।

भावार्थ- दूसरों के अंग-उपांग काटना महापाप है। जिसके अंग-उपांग काट दिये जाते है। वह मनुष्य बेकार हो जाता है और फिर वह जन्मभर दुखी रहता है। इसी प्रकार जिसका घर नष्ट हो जाता है वह भी जन्मभर दुखी रहता है। ऐसा महादुख देना महापाप का कारण है। यही कारण है कि ऐसे काम करने वाल वह महापापी पुरूष मरकर अगले जन्म में अंग-उपंग हीन हो जाता है। और वह भी जन्म भर तक महादुखी बना रहता है। इसी प्रकार अंग-उपांगहीन मनुष्यों को देखकर जो संतुष्ट होता

है जिसके ह्रदय में उनको देखकर करूणा नहीं आती ऐसे मनुष्य भी मरकर अंग-उपांग हीन होते है। यही समझकर किसी दुखी जीव को देख्कर कभी संतुष्ट नहीं होना चाहिये और न किसी के अंग-उपांग काटने चाहिये।

नीचकुल में उत्पन्न होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात् ।

स्याज्जन्म जनमोश्र कुले हि नीचे।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पाप**कार्य के कर**ने से व किस पापकर्म के उदय से नीचकुल में उत्पनन होता है ?

उत्तर- निजप्रशंसा स्वमुखात्परेषां,

निन्दा कृता श्रेष्ठकुलस्य येन ।

गर्वादबोधात् गुणिनां कुलस्य,

तज्जन्म कौ नीचकुलं भवेद्धि ।।57।।

अर्थ- जो पुरूष अपने मुख से अपनी ही प्रशंसा करते हैं तथा दूसरों की निंदा करते हैं अथवा जो अपने अभिमान से व गुणियों के उच्चकुल के अज्ञान से श्रेष्ठकुल की निंदा किया करते हैं वे पुरूष मरकर नीचकुल में जन्म लेते हैं।

भावार्थ- श्रेष्ठकुल की व श्रेष्ठकुल वालों की निंदा करना श्रेष्ठ कुल से व श्रेष्ठ कुल में उत्पनन होने वाले पुण्यवान मनुष्यों से अरूचि उत्पनन करता है जो मनुष्य पुण्यवान मनुष्यों से अरूचि करता है वह पुण्यकार्यों से भी अरूचि करता है तथा पुण्यकायी से अरूचि करने के रिण व सदाकाला नीचकार्य ही करता रहता है। नीचकार्ये के करने से वह पाकर्मे का बंध करता है। और उन पाप कर्मों का उदय होने पर वह नीचकुल में

उत्पनन्‍ होता है। नीच कुल में उत्पनन्‍ होने वाले मनुष्य अपने पापकम के उदय से सर्वत्र तिरस्कृत होते हैं जिनपूजा, पात्रदापन आदि उत्तम कार्यों से वंचित रहते हैं और प्रायः जन्मभर दुःखी रहते है।

उच्चकुल में उत्पन्न होकर भी धनहीन किस कारण से होते हे। यह बतलाते हैं-

प्रश्न- पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात् ।

हीनो धनैरूच्चकुलेऽपि जीवः ।।

अर्थ- हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदय से उच्चकुल में उत्पनन्‍ होकर भी धनहीन होता है ?

उत्तर- पुरोच्चगोत्रं च शुभेन बद्ध,

पश्चात्सगर्वात्परनिन्दनादि ।

कृतो गुरोर्येन सदापमानः,

स स्याद्धनैरूच्चकुलेऽपि हीनः ।।51।।

अर्थ- जि जीवों ने पहले शुभ परिणामों क निमित्त से ऊँच गोत्रका बंध कर लिया है और फिर अपने अभिमान से दूसरों की निंदा की है अथवा अपने अभिमान से जिन्होंने गुरूजनों का सदा अपमान किया है ऐसे पुरूष उच्चकुल में तो उत्पनन्‍ होते हैं, परंतु धनहीन होते हैं।

भावार्थ- उच्चकुल में उत्पनन्‍ होकर धनहीन होने से बहत दुःख होता है। इसका भीा कारण यह है कि उच्च्कुल की प्राप्ति पुण्यकर्म के उदय से होती है। धनादिककी प्राप्ति भी पुण्यकर्म के उदय से होती है। विनय करते हैं और न उनकी सेवा करते , तथा जो पुरूष सदाकाल धर्म के उच्चकुल में उत्प' होने वालो को अपने समान उच्चकुलवालों के साथ व्यवहार करना पड़ता है, परंतु वह व्यवहार बिना धन के नहीं होता। बराबर का व्यवहार न करने से उन सबके साथ लज्जित होना पड़ता है।

अतः वह मानसिक पीड़ा सदा दुःख देती रहती है। इसीलिये भव्य जीवों को पुण्यकर्म करते ही रहना चाहियेपुण्यकर्मों के साथ अभिमान कभी नहीं करना चाहिये। विनय करते हैं और न उनकी सेवा करते , तथा जो पुरूष सदाकाल धर्म के उच्चकुल में उत्प' होने वालो को अपने समान उच्चकुलवालों के साथ व्यवहार करना पड़ता है, परंतु वह व्यवहार बिना धन के नहीं होता। बराबर का व्यवहार न करने से उन सबके साथ लज्जित होना पड़ता है। अतः वह मानसिक पीड़ा सदा दुःख देती रहती है। इसीलिये भव्य जीवों को पुण्यकर्म करते ही रहना चाहिये पुण्यकर्मों के साथ अभिमान कभी नहीं करना चाहिये।

जीविका के लिये परिभ्रमण करने का कारण बतलाते है-

प्रश्न- देशे विदेशे कुतक्ष पापा-

दाजीविकाये मनुजा भ्रमन्ति ।।

अर्थ- हे भगवन् अब कृपाकर बतलाइये कि यह जीव अपने किस पापकर्म के उदय से आजीविका के लिये देश-विदेश में परिभ्रमण करते हैं?

उत्तर- योऽनेकवारं परिभ्रामयित्वा,

गृहादिकार्यं खलु कारयित्वा ।

आशां प्रदर्श्यापि धनं न यच्छेत,

भ्रमेत्सदा की स च वृत्तिहेतोः ।।60।।

अर्थ- जो पुरूष अपने सेवकों को अनेक बार इधर-उधर दोड़ाकर घर के काम कराता है। और फिर आशा दिखलोकर भी धन नहीं देता वह पुरूष अपनी जीविका के लिये इस पृथ्वी पर सदाकाल परिभ्रमण किया करता है।

भावार्थ- सेवकों से घर का काम लेकर भी तथा उसके बदले उसको धन देने की आशा दिलाकर भी धन न देना एक प्रकार का महापाप

है क्योंकि जब घर में धन नहीं होता है तभी मनुष्य दूसरों के घर जाकर सेवा करता है। दिनभर स`वा करने पर व घर के सब काम करने पर भी यदि उसको धन नहीं मिलता है तो उस दिन वह भी भूख रहा है और उसके बाल बच्चे भी भूख रहते है। अब जिस मनुष्य को पहले दिन भोजन नहीं मिला है वह मनुष्य दूसरे दिन भी काम नहीं कर सकता और इस प्रकार वह तथा उसके बाल बच्चे बहुत दुखी हो जाते है।, उनके परिणामों मे विकलता हो जाती है और व क्षण-क्षण में काम कराकर घन न देने वाले के लिए अशुभ आशीर्वाद देते रहते है। इसलिये जो जीव काम कराकर भ्ज्ञी धन नहीं देते वे जीव मरकर अपनी आजीविका के लिये देश-विदेश में घूमते फिरते है। फिर भी उनको जीविका प्राप्त नहीं होती है। इसलिये काम कराकर किसी का भी धन नहीं रोकना चाहिये।

छलपूर्वक जीविका प्राप्त होने का कारण बतलाते है-

प्रश्न- कर्मोदयान्मे वद देव ! कस्मा-

च्छलैः समं सचलतीह वृत्तिः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापकर्म के उदय से इन जीवों की जीविका छलपूर्वक चलती है ?

उत्तर- छलेन दत्तं मुनयेऽन्नदानं,

तथा कृता देवगुराश्र सेवा ।

येन प्रशंसा खलवचकानां,

स्यात्तीव्रपापाच्छलयुक्तवृत्ति ।।61।।

अर्थ- जो पुरूष यवीतराग निर्ग्रंथ मुनियों के लिये छलपूर्वक आहारदान देते है। व छलपूर्वक देव-शास्त्र-गुरूकी सेवा करते है। अथवा जो दुष्ट ठगों की प्रशंसा किया करते है। ऐसे पुरूष मरकर उस तीव्र पापकर्म के उदय से छलपूर्वक होने वाली जीविका प्राप्त करते है।

भावार्थ- वीतराग निर्ग्रंथ मुनियों को आहरदान देना पुण्य का काम है, परंतु वही आहारदान यदि छलपूर्वक दिया जाता है तो वह कार्य पापकार्य हो जाता है। सम्यग्दृष्टि सदाचारी पुरूष तो कभी छलहपुर्वक आहार दे ही नहीं सकता। परंतु जो पुरूष अंतरंग में मिथ्यात्वकों धारण करता है वह छलपूर्वक आहार दे सकता है अथवा जो पुरूष्ज्ञ बाह्याप्रवृत्ति समाज का अपराधी होता है जातिच्युत व पतिि होता है वह भी छलपूर्वक मुनियों को आहारदान दे सकता है। इसी प्रकार देव-धर्म-ग रूकी सेवा, जिन पूजन, प्रतिष्ठा, पात्रदान आदि भी छलपूर्वक हो सकते हैं। जो मनुष्य दुष्ट मायाचारी जीवों की प्रशंसा करता है और अपने मिथ्यात्व के उदय से उनको श्रेष्ठ मानता है वही भी उसी के समान पाप करता है। अथवा कितने ही मनुष्य धन व पुत्र प्राप्त होने की तीव्र लालसा से देव व गुरूजी सेवा किया करते हैं व गुरूओं को आहारदानादिक दिया करते है। इस प्रकार छलपूर्वक धर्मकार्य करने वालों को परलोक में जाकर छलपूर्वक होने वाली जीविका प्राप्त होती है।

यह जीव पशु होकर घर-घर बिकता रहता है ऐसा पशु किस कारण से होता है-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च पशुर्भवेन्ना ।

विक्रीयते येन गृहे गृहे कौ ।।

अर्थ- हे प्रभ्ज्ञो ! अब यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म से पशु होता है तथा घर-घर बिकता रहता है?

उत्तर- छलात्परेषां वनितां च पुत्रीं,

क्रीाति गां वा शयनान्नवस्त्रम्।

छलिप्रशंसां नितरां करोति,

भूत्वा पशुर्चिक्रियते गृहादौ।।62।

अर्थ- जो मनुष्य छलपूर्वक किसी दूसरे की स्त्री को व पुत्री को

मूल्य देकर लेता है, छलपूर्वक किसी गाय को व अन्य पशु को लेता है सोने बैठने के सामान व अनन वस्त्र छलपूर्वक लेता है अथवा जो मायाचारी लोगों की प्रशंसा किया करता है वह मनुष्य मरकर ऐसा ही पशु होता है जो घर-घर बिकता रहता है।

भावार्थ- मायाचारी करना तिर्यंचयोनिका कारण है। जिस प्रकार तिर्यचयोनि में उत्पनन होने वाले पशु अनेक प्रकार के है। उसी प्रकार मायाचारी भी अनेक प्रकार की है। उस अनेक प्रकार की मायाचारी से जो पुरूष अनेक प्रकार के छल-कपाट बनाकर किसी की पुत्री को मोल ले लेता है व किसी स्त्री को मोल ले लेता है वह मनुष्य उस छल कपट रूप पाप के कारण ऐसा पशु होता है जो घर-घर बिकता फिरता है। इसी प्रकार जो मनुष्य मायाचारी करने वालों की प्रशंसा करता है। अथवा छल-कपट से अनन वस्त्र आदि अन्य पदार्थों को मोल लेता है वह मनपुष्य भी मरकर ऐसा ही घर-घर बिकने वाला पशु होता है। इस प्रकार के मायाचारी मनुष्य उन स्त्रियों को पालन पोषण करने के व अन्य अनेक प्रकार के लोभ दिखलाते है। और फिर उनको मोल ले लेते हैं तथा अपने वश में कर लेते हे। ऐसे नीच मनुष्य भेड़, बकरी आदि नीच पशु होते है। जहां अनंत काल तक दुःख भोगा करते है।। एक साथ अनेक जीवों की मृत्यु का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वदैककाले ।

भूयिष्ठजन्तोर्भवतीह मृत्युः ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब यह बतीाइये कि एक ही समय में अनेक जीवों की मृत्यु किस पापकार्य के करने से होती है ?

उत्तर- अनेकजीवो हि मिथो मिलित्वा,

साधोः प्रणिन्दामकरोत्कुकृत्यम् ।

तुष्येत् पशोर्वीक्ष्य कलिं ह्यबोधात,

कुर्यात्कुबन्ध समुदायमृत्योः ।।63।।

अर्थ- जब कभी अनेक जीव मिलकर किसी साधुकी, वीतराग निर्ग्रंथ गुरू की निंदा करते हैं अथवा अनेक जीव मिलकर अन्य कोई कुकर्म करते है। अथवा अनेक जीव मिलकर अपनी अज्ञानता के कारण पशुओं की लड़ाई देखकर प्रसनन होते है। ऐसे जीव मिलकर एक साथ मरने का पाप बंध किया करते है।

भावार्थ- वर्षा के दिनो में अनेक गिंजाई उत्पनन होती हैं तथा सैकड़ों हजारों गिंजाइयों का छत्त थोड़े से ही स्थ्ज्ञान में बना रहता है। यदि उन गिंजाइयो के ऊपर किसी हाथी व ऊँट का पैर पड़ जाय या उनके ऊपर कोई पला भरकर मिट्टी डाल दे, अथवा अगिन डाल दे तो वे सब गिंजाई एक साथ्ज्ञ मर जाती हैं अथवा मशीनों के युद्ध में अनेक जीव एक साथ्ज्ञ मर जाते हैं व विष मिली वायु से अनेक जीव एक साथ मर जाते हैं ऐस अनेक जीव जो एक साथ्ज्ञ मरते है। उनका ही साथ्ज्ञ होता हैं तथा ऐसा एक साथ उदय में अने वाला पापकर्म का बंध भ्ज्ञी वे सबि एक ही साथ करते हैं।

जो हजारों जीव किसी सभ्ज्ञा में बैठकर एक साथ किसी वीतराग निर्ग्रंथ गुरूकी निंदा करते है। अथ्ज्ञवा भगवान अरहंत देवकी व उनके कहे हुए शास्त्रों की निंदा करते है। अथवा अनेक मनुष्य एक साथ्ज्ञ मिलकर पशु-पक्षियों का युद्ध देखते हैं और प्रसनन होते हैं ऐसे सब जीव या उनमें से अनेक जीव ऐसे ही आयु कर्म का बंध करते हैं जो एक ही साथ अंत को प्राप्त होतेहैं । यहीं समझकर किसी भी वीतराग देव-शास्त्र गरू की निंदा नहीं करनी चाहिये व पशु पक्षियोंका युद्ध नहीं देखना चाहिए।

किसी पुरूष को देखकर स्त्री के हृदय में व किसी स्त्री को देखकर किसी पुरूष के हृदय में काम वासना उत्पनन हो जाती है उसका कारण बतलाते है-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च नरस्य नार्याः ।

दृष्ट्वा मिथः स्यात्खलकामजन्म ।।

अर्थ- हे प्रभ्ज्ञो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप कर्म से स्त्री पुरूषों मे परस्पर एक दूसरे को देखकर कामवासना उत्पनन् हो जाती है?

उत्तर- नार्याः पुरा जन्मनि वा नरस्य,

मिथे यदि स्याद् व्रूभिचारकर्म ।

रागादिहास्यं ह्रदि तत्प्रमोहात,

तयोऽरमुत्रेपि भवेतामोहः ।।64।।

अर्थ- पहले जन्म में जिन स्त्री पुरूषों का संबंध रहता है, व पहले जन्म में जो स्त्री पुरूष परस्पर व्यभिचार करते रहते हैं अथवा एक दूसरे पर मोहित होकर रागभाव व हँसी किया करते हैं ऐसे स्त्री पुरूषों के दय में परलोक में भी परस्पर मोह उत्पनन् होता है।

भावार्थ- एक कुटुंब जितने जीव उत्पनन् होत हैं उनका पूर्वभव का संबंध प्रायः कुछ न कुछ रहताही है। लोग पूर्वभव में परस्पर शत्रु होते है। ऐसे जीव यदि एक कुटुम्ब में आकर उत्पनन् होते हैं तो एक कुटुंब में होने पर भ्ज्ञी परस्पर उनका विरोध रहता ही है। इसी प्रकार जिन स्त्री पुरूषोां का पहले भव में परस्पर संबंध रहा है अथवा जिन स्त्री पुरूषों ने पहले भव में परस्पर व्यभिचार सेवन किया है, परस्पर एक दूसरे पर मोहित होकर रागभाव किये हैं व हंसी आदि विनोद किया है। अथवा जिन दोनों मे परस्पर होनेवाला रागभावा ह्रदय में बना रहा है। ऐसे जीव जब दूसरे भव में भी स्त्री पुरूष होते हैं तब उनमें एक दूसरे को देखकर रागभाव व मोह उत्पनन् होता ही है तथा ऐसा मोह व रागभाव अनेक जन्मों तक बना रहता है। यही समझकर भव्यजीवों को कभी किसी से अधिक प्रेम व रागभाव नहीं करना चाहिये। भोगोपभोगों का सेवन भी न्यायपूर्वक ही करना चाहिये। अन्यायपूर्वक भोगोपभोगों का सेवन कभी नहीं करना चाहिये।

क्रोध उत्पन्न होने का कारण बतलाते है।-

प्रश्न- पापोदयाज्जायत एव कस्मात् ।

दृष्ट्वान्यजीवान् हृदि कोपजन्म ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब यह बतलाइये कि किस पापकर्म के उदय से इस जीव के हृदय में अन्य जीवों को देखकर क्रोध उत्पनन् हो जाता है ?

उत्तर- यः कोऽपि नो पूर्वभवस्य शत्रुः,

स्वदेहहन्ता यदि वा विरोधी ।

वियोगकर्ता स्वकुटम्बकानां,

तं वीक्ष्य कोपो भवतीह जन्तोः ।।65।।

अर्थ- जो कोई पुरूष्ज्ञ पहले भवमें अपना शत्र था अथवा अपने शरीर को नाश करने वाला व विरोधी था अथवा अपने किसी कुटुंब के मनुष्य का वियोग करने वाला था ऐसे मनुष्य को देखकर इन जीवो के हृदय में अवश्य ही क्रोध उत्पनन् होता है।

भावार्थ- क्रोधादिक कषायों की उत्पत्ति पहले जन्म के संस्कारों से ही होतही है। पहले भव में किजन जीवों ने अपनी कुछ हानि की है व अपने कुटंब की कुछ हानि की है या अपने साथ कुछ विरोध किया है ऐसे जीवों को देखकर अपने हृदय में अवश्य ही क्रोध उत्पनन् होता है। यदि पहले भव में हमारे जीव ने किसी के साथ वैर विरोध किया है तो हमको देखकर दूसरे के हृदय में क्रोध उत्पनन् होता है। यही समझकर भव्य जीवों को कभी किसी के साथ वैर विरोध नहीं करना चाहिये अथवा किसी की हानि नहीं करनी चाहिये। जिस किसी के साथ वैर विरोध हो उससे उसी समय क्षमा माँग लेनी चाहिये इस प्रकार अपने आत्मा में क्रोधादिक का संस्कार कभी नहीं रखना चाहिये। एक साथ अने जीवों के रोगी होने का कारण बतलाते है-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च भवन्ति चैक-

काले सरोगा बहुजीववर्गाः ।।

अर्थ- हे प्रीाो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह अनेक जीवों का समुदाय एक ही समय में किस पापकर्म के उदय से एक साथ रोगी होता है?

उत्तर- साधोर्वपुः स्वेदरजःप्रलिप्तं,

दृष्ट्वा जुगुप्सामकरोत्प्रणिन्दाम ।

स्वानन्दतुष्टस्य तथापमानं,

स्यादेककालेपि च रोगयुक्तः ।।66।।

अर्थ- जो अनेक जीव मिलकर वीतराग निर्ग्रंथ मुनियों के पसीना और धूलि से मिले हुए मलिन शरीर को देखकर ग्लानि करते हैं या उनकी निंदा करते हैं अथवा आत्मा में लीन रहने वाले उन्ही मुनियों का अपमान करते हैं ऐसे जीव उस पापकर्म के उदय से एक ही समय में रोगी होते हैं।

भावार्थ- वीतराग निर्ग्रंथ मुनियों की निंदा करना, उनको देखकर ग्लानि करना व उनका अपमान करना महापाप है। मुनि लोग पूर्ण अहिंसाव्रत को पालन करते है। सनन करने में अनेक जीवों की हिंसा होती है। यही कारण है कि मुनि लोग आजन्म सनन के त्यागी होते हैं गर्मी के दिनो में पसीना आता ही है और धूलि उड़कर उन पर जम ही जाती है। तथापि वे मुनिराज कभी सनन नहीं करते, उस शरीर को मलिनता को सहन करते हैं वे मुनिराज शरीर को भी पर और हेय समझते है।, इसलिये वे शरीर से भी कभी ममत्व व मोह नीं करते। वे मुनिराज जो अपने शुद्ध आत्मा को ही अपना समझते है। और इसीलिये वे सदाकाल उसी में लीन रहते है।। ऐसे मुनियो ंको देखकर जो अनेक जीव उनकी निंदा करते हैं, उनका अपमान करते हैं उनके लिये बुरे वचन कहते हे।, उनके आहार विहार में प्रतिबंध करते हैं व उनसे अरूचि रखते हैं, उनकी

आज्ञा का उल्लंघन करते या कराते हैं अथवा अन्य किसी प्रकार उनका विरोध करते है। ऐसे समस्त जीव एक साथ रोगी होते हैं। उन सब जीवों ने एक साथ पाप का बंध किया इसीलिये उन सब का उदय भी एक साथ हो आता है। यही समझकर वीतरागी मुनियों की निदा कभी नहीं करनी चाहिये।

रोगों की शांति के लिये प्रयत्न करने पर भी रोग शांत नहीं होता इसका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- रोगापशान्त्यै च कृते प्रयत्ने ।

तस्योपशान्तिर्भवतीह किं न ।।

अर्थ- रोगों की शांति के लिये प्रयतन करने पर भी उस रोग की शांति नही होती इसका कारण क्या है ?

उत्तर- सरोगिसेवा न कृता प्रदत्त,

स्वल्पौषधं रैविपुलं गृहित्वा ।

रोगस्य भीतिं च प्रदर्श्य लोश्राद्,

यत्ने कृते नश्यति नुर्न रोगः ।।67।।

अर्थ- जो पुरूष वैद्य होकर भ्ज्ञी रोगियो ंकी सेवा नहीं करता, अथवा अपने तीव्र लोभ से रोगा का भय दिखलाकर बहुत सा धन लेकर भी बहुत थोड़ी औषधि देता है वह पुरूष रोगी होने पर उसकी शांति के लिये अत्यंत प्रयतन करने पर भी निरोग नहीं होता।

भावार्थ- जो मनुष्य जिस विद्या का जानकार है उसका उस विद्याा द्वारा अपना और दूसरों का दोनों का उपकार करना चायिे। यहां पर इतना और समझ लेना चाहिये कि केवल धन बटोर लेना अपना उपकार नहीं है। धन तो अपने कर्म के क्षयोपशम के अनुसार आता ही है। किंवा अपने आत्मा का कल्याण कर लेना, पापकर्मों का नष्टकर पुण्यकर्मों

का संचय कर लेना अपना उपकार कहलाता है। उन विद्या से जिस प्रकार भी दूसरों का उपकार हो उसे उसी प्रकार दूसरों का उपकार करते रहना चाहिये। यही उस विद्या के प्राप्ता होनेा का फल है। वैद्यों को रोगियों की सेवा भी करनी चाहिये और उचित मूल्य लेकर अच्छी औषधि देनी चाहिये। यदि कोई गुणी निर्धन आ जाय तो उसकी विशेष सेवा करनी चाहिये तथा ऐसे निर्धनों के लिये बिना मूल्य औषधि भी देनी चायिे। जो वैद्य ऐसा नहीं करते हैं तथा अधिक मूल्य लेकर भी अच्छी औषधि नहीं देत रोगियों की सेवा नहीं करते अथवा अधिक धन लेने की इच्छा से रोग को बढ़ा देते हैं रोग को असाध्य व कष्टसाध्य बतलाकर अधिन धन लेने की इच्छा करते हैं जो निर्धनों से भी अधिक धन वसूल कर लेते हे। ऐसे वैद्य रोगी होने पर बहुत अधिक कष्ट पाते हैं तथा उस रोग को शांत करने के लिये उत्तम उपाया करने पर भी निरोग नहीं होते हैं।

गर्भपात होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद ! स्त्रियश्र ।

कौ गर्भातो भवति प्रभो मे ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप के करने से स्त्रियों का गर्भपात हो जाता है ?

उत्तर- पुत्रो यया मारित एव गर्भे,

तुग्मारणार्थं च विषं प्रदत्तम् ।

वा गर्भपातं प्रविधाय तुष्येत,

तस्या भवेदि हि गर्भपातः ।।68।।

अर्थ- जिस किसी स्त्री ने अपने व दूसरे के पुत्र को गर्भ में ही मार दिया है किसी के पुत्र को मारने के लिए विष दिया है, अथवा जो गभ्रपात करके संतुष्ट हुई है उस स्त्री का गर्भपात अवश्य ही होता है।

भावार्थ- गभ्र में रहने वाला बालक अत्यंत दुःखी, अत्यंत लाचार और सर्वथा पराधीन रहता है। उस समय वह थोड़े से ही प्रयोग से मर जाता है। ऐसे लाचार पराधीन पुत्र को मार देना महापाप कहलाता है। जो स्त्री ऐसे महापाप करती है अथवा जो स्त्री अपने व दूसरे के पुत्र को विष देकर मार देती है अथवा जो गर्भपात करके प्रसनन होती है अथवा सौत के पुत्रों से ईर्ष्या, द्वेष रखकर उनको दुःख देती है ऐसी स्त्री का गभ्रपात अवश्य हो जाता है। गर्भपात होना पाप का कारण है और वह पुत्र मारने आदि महापापों के करने से ही होता है।

कुव्यसनों में धन खर्च होने कारण बतलाते हैं

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च धनादिशक्ते-

व्यच्यो भवेद्वा व्यसने जनानाम् ।

अर्थ- हे प्रभो ! अब यह बतलाइये कि किस पाप के करने से लोगों का धन व अन्य शक्तियाँ कुव्यसनो में खर्च हो जाती है ?

उत्तर- धनं कुमार्गे हि हठान्नियोज्य,

कृत्वा प्रशंसां व्यसनस्थितानाम् ।

बलान्यभार्यामपहृत्य तुष्येत,

तेषां धनादेर्व्यसने व्ययः स्यात् ।।69।।

अर्थ- जो पुरूष हठ पूर्वक अपने धन को किसी कुमार्ग में लगा देता है अथवा जो पुरूष कुव्यसनो मे ीन होने वाले मनुष्यों कीप्रशंसा करता है अथवा जो किसी की स्त्री को बूपूर्वक हरण कर संतुष्ट व प्रसनन होता है ऐसे पुरूषों का धन व शक्तिकुव्यसनो में ही र्ख होती हैं

भावार्थ- हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील सेवन आदि पापों के साधनों को कुमार्ग कहते है। तथा जुआ खेलना, मांस भक्षण करना, मद्यपान करना, वेश्या औरशिकार खेलना ये सात कुव्यसन कहलाते हे। ये कुमार्ग

व व्यसन सब पापों के मार्ग है। इनके करने से महापाप उत्पनन होता है। यद्यपि इन पापों के करने वाले नरकादिक दुर्गतियों मे ही जाते है।। परंतु किसी कारण विशेष यदि ऐसे मनुष्य मरकर धनी मनुष्य हो जाती हैं तो फिर उनका वह धन दुर्व्यसनों में ही खर्च हो जाता है। जिन लोगों को जनम-जन्मांतर से दुर्व्यसनों का अभ्यास पड़ा हुआ है ऐसे लोगों का मन फिर दुर्व्यनों में ही लगा रहता है।

सम्यग्ज्ञान में भी रूचि न होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्मताद्धि पापाच्च न रोचतेऽयं।

जीवायमिष्टः सुखदः सुबोधः ।।

अर्थ- हे भगवन ! अब कृपाकर यह बतलाये कि किस पाप कायर्य के करने से इस जीव को मिष्ट और सुख देने वाला श्रेष्ठ ज्ञान भी अच्छा नहीं लगता ?

उत्तर- दत्वा कुशिक्षां व्यसने नियोज्य,

कृत्वा जनान् देवगुरोश्र निनदाम् ।

श्रुत्वेति तुष्येद्वचनं खलादेः,

तस्मै सुबोधोपि न रोचतेऽत्र ।।70।।

अर्थ- जो पुरूष कुशिक्षा देकर व दिलाकर प्रसनन होता है अथवा जो पुरूष अनेक मनुष्यों को कुव्यनों मे लगाकर प्रसनन होता है देव, शास्त्र, गुरूकी निंदा कर प्रसनन होता है, अथवा दुष्ट व नीच पुरूषों के वचनों को सुनकर प्रसनन होता है ऐसे पुरूष को अंत में जाकर भी श्रेष्ठ ज्ञान में रूचि कभी नहीं होती है।

भावार्थ- जिनके हृदय में तीव्र मिथ्यात्व बैठा हुआ है ऐसे ही पुरूष कुशिक्षा से प्रसनन होते है। जिस शिक्षा से मिथ्यात्वरूप परिणाम हो जाय, जिस शिक्षा से देव-शास्त्र-गुरूकी भक्तिहट जाय, रतन्त्रयसे रूचि हट

जाय, सम्यक्चारित्र द्वेष करने लग जाय, देवपूजा-पात्रदान आदि काक बुरा कहने लग जाय, वीतराग निर्ग्रंथ गुरूआं की निंदा करने लग जाय व शास्त्रों की आज्ञा का उल्लंघन करने लग जाय ऐसी शिक्षा को कुशिक्षा कहते हैं जो लोग ऐसी शिक्षा में प्रसनन होते है। वे लोग मोक्षमार्ग से सदा विरीत रहते हैं और इसीलिए ऐसे लोग देव शास्त्र, गुरू की निंदा करते हैं व दुष्टों के वचनों को सुनकर प्रसनन हुआ करते है। ऐसे मिथ्यादृष्टि पुरूषों को भला श्रेष्ठ ज्ञान व आत्मज्ञान अच्छा कैसे लग सकता है अर्थात् कभी नहीं लग सकता।

चांडाल हाथ से मृत्यु होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाश्र वदेति जन्तो-

श्राण्डालहस्तैर्भवतीह मृत्युः ।।

अर्थ- हे प्रीाो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस किस पापकार्य के करने से यह जीव चांडाल के हाथ से मारा जाता है ?

उत्तर- दुःखप्रदं हिंसकमेव कृत्यं,

कृतं हृतं प्राणधनं पशोर्यैः ।

सुसेवितं वा मधुमद्यमांसं,

चाझछालतः स्यान्मरणं च तेषाम् ।।71।।

अर्थ- जो पुरूष अनेक जीवों को महादुख देने वाले हिंसा के कार्य करते रहते हैं अथवा पशुओं के प्राणरूपी धन को हरण है तथापि महापाप कर्म के उदय से ऐसा समय आता है। जो पुरूष अनेक पापी लोग चांडाल के ही हाथ मारे जाते हैं।

भावार्थ- चांडाल के हाथ से मरना अत्यंत निंदनीय गिना जाता है तथापि महापापकर्म के उदय से ऐसा समय आता है। जो पुरूष अनेक जीवों की हिंसा करते रहते हैं, व अनेक जीवों की हिंसा से होने वाले

व्यापार को करते हैं, जो पशुओं को मारते हैं व पशुओं को, पक्षियों को अनेक प्राकर के दुःख देते है व मद्यपान करते है, मांसभक्षण करते है। व शहद खाते हैं, अथवा अनेक जीवों से भरे हुए गूलर, बढ़द्व पीपल आदि के फलों को भक्षण करते हैं ऐस जीव चांडाल, भील आदि के हाथ से मारे जाते हैं और फिर परलो में जाकर नरकादि के दुःख भोगते हैं

मरकर कुत्ता होने का कारण बतलाते है।-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मृत्वा मनुष्यो भवतीह कौ श्रा ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य कि पाप के करने से मरकर कुत्त हो जाता है ?

उत्तर- ईर्ष्याभिमानं कुविरोधवैरं,

करोति यः कोपि मिथो विवादम् ।

रौद्रार्त्तचिन्तामटनं च कोप-

मित्यादिपापात्स भवेत्किल श्रा ।।72।।

अर्थ- जो पुरूष सदाकाल ईर्ष्या व अभिमान करता रहता है, प्रत्येक के साथ वैर विरोध करता रहता है व परस्पर विवाद करता रहता है, आर्तध्यान, रौद्रध्यान का चिंतवन करता रहता है, व्यर्थ ही इधर-उधर फिरता रहता है अथवा और भी ऐसे ही ऐसे कार्य करता रहता है। ऐसा पुरूष मरकर परलोक में कुत्त ही होता है।

भावार्थ- कुत्ते की पर्याय नीच पर्याय है। वह विष्ठा, माँस आदि निकृष्ट पदार्थों का भक्षण करता रहता है, घर-घर फिर है, कुत्तों के साथ लडता रहता है, तथा जहां जाता है वहा ही दुकारा जाता है। ऐसी यह कुत्ते की नीच पर्याय नीच कार्य करने से ही प्रापत होती है। एक दूसरे के साथ ईर्ष्या करना, अभिमान करना, कुत्तें के ही समान आपस में वैर

विरोध करना, व परस्पर विवाद लड़ाई-झगड़ा करना, बिना कारण के क्रोध करना, बिना कारण इधर-उधर घूमते रहना अथवा आर्तध्यान, रौद्रध्यान में लीन रहना आदि कार्स भी नीच कार्य है। तथा जो मनुष्य इन नीच कार्यों को करता रहता है वह मनुष्य मरकर कुत्ता ही होता है यही समझकर प्रत्येक मनुष्य को इन नीच कार्यों से बचते रहना चाहिये।

मरकर बिल्ली होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाचच वद प्रभो ! मे ।

नरो विडालो भवतीह मृत्वा ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य मरकर किस पापकार्य के करने से बिल्ली होता है ?

उत्तर- दुग्धान्नपानाद्यभिलाषतो यो,

बन्धोर्घनादेरपहर्तृकामः ।

दुर्ध्यानभाग् वा कुटिलः सदा स,

मृत्वा विडालो भवतीह पापी ।।73।।

अर्थ- जो पुरूष अनन्, पान, दूध दही की अभिलाषा से अपने भाई बंधुओं के धन को हरण करना चाहता है जो सदाकाल मायाचारी करता रहता है व अशुा दुर्ध्यान करता रहता है वह मनुष्य मरकर भाग्यहीन बिलाव होता है।

भावार्थ- बिलाव होना कुत्ते से भी नीच और बुरा है। बिलाव बहुत मायाचारी होता है, जितना खाता नहीं है उतना बिगाड़ देता है ताि सदाकाल जीवों घात में बैठा रहता है। इसी प्रकार जो मनुष्य सदाकाल मायाचारी करने में ला है, सदाकाल दूसरों का कार्य बिगाड़ने का प्रयतन् किया करता है व दूसरों के धन को हरण करने की इच्छा करता रहता है अथवा दूसरों को हानि पहुँचाने का प्रयतन् किया करता है अथवा और भी

ऐसे ही ऐसे काम किया करता है, निरन्तर मायाचारी का चिंतवन किया करता है ऐसा मनुष्य मरकर बिलाव की पर्याया पाता है। तथा उस पर्याय मं अनेक जीवों की हिंसा कर चिरकाल तक नरकादिक दुर्गतियो के दुःख भोगता रहता है यही समझकर मनुष्यों को सदाकाल ऐसे पाप के कार्यों से बचते रहना चाहिये।

सिंहपय्राय प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मृत्वा मनुष्यो भवतीह सिंहः ।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य कैसे पाप करने से मरकर सिंह होता है ?

उत्तर- दुर्ध्यानभाग् यः पशुहिंसकोऽस्ति,

क्रूरस्वभावो जनताविरोधी ।

मांसप्रलोभी स्वपरात्मघाती,

मृत्वा स जीवो भवतीह सिंहः ।।74।।

अर्थ- जो मनुष्य सदाकाल दूसरों को मारने का चिंतवन करता है, अनेक पशुओं की हिंसा करता रहता है, जिसका स्वभाव सदाकाल क्रूर रहता है, जो सदाकाल लोगों का विरोध करता रहता है, जो माँसभक्षण का तीव्रलोलुपी होता है और अपने आत्मा का व अन्य जीवों का घात करने वाला है ऐसा मनुष्य मरकर अवश्य ही सिंह होता है।

भावार्थ- सिंह की पर्याय महापाप करने वाली पर्याय है। यही कारण है कि प्रायः सिंह मरकर नरक ही जाता है। ऐसी पापरूप सिंह की पर्याय महापाप करने से ही प्राप्त होती है। सदाकाल दुर्ध्यान करते रहना, दूसरों को मरने-मारने का चिंतवन करते रहना, शिकार खेलकर अनेक पशु-पक्षियों की हिंसा करते रहना, व अन्य किसी प्रकार से अनेक पशुओं

की हिंसा करते रहना, अपने स्वभाव में सदा क्रूरता रखना, साधारण लोगों के साथ अधिक विरोध रखना, मांसभक्षण व मद्यपान करने में अत्यंत लालुपता रखना, आत्मघात करने का प्रयतन करना अथवा दूसरों के घात का प्रयतन करते रहना व अन्य ऐसे ही कार्य करना महापाप कहलाते हैं। इन्हीं पापों के करने से यह मनुष्य मरकर सिंह होता है।

श्रृगाल पर्याय प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कसमाद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

ना जम्बुकः स्याद् भुवने ह्याभाग्यः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस किस पापकर्म के करने से मरकर इसी लोक में श्रृगाल होता है ?

उत्तर- मिथ्याप्रलापी जनवचको यो,

वेर्ष्यांकरों वा कलहप्रवीणः ।

दानादिधर्माद्धि सदैव दूर-,

स जम्बुकः स्यान्मनुजोऽपि मृत्वा ।।75।।

अर्थ- जो मनुष्य सदाकाल मिथ्याभाषण करता रहता है सदाकाल लोगों को ठगता रहता है, सबके साथ ईर्ष्या, द्वेष करता रहता है, व सबकके साथ कलह करता रहात है, और जो पात्रदान, जिनपूजा आदि धर्मकायी से सदा दूर रहता है ऐसा मनुष्य मरकर श्रृगाल होता है।

भावार्थ- श्रृगाल गीदड़ को कहते हैं। गीदड़ बहुत ही चालाक होता है और प्रायः ठग-ठग कर ही अपना पेट भरा करता है। जो मनुष्य मिथ्याभाषण करने में, लड़ाई-झगड़ा करने में चतुर होता है व अनेक जीवों के साथ ईष्या-द्वेष करता रहता है, जो कभी दान नहीं देता, कभी जिनपूजन नहीं करता, कभी व्रत-उपवास नहीं करता, तथा और भी शुभकार्यों से दूर रहता है ऐसा मनुष्य मरकर गीदड़ होता हैं

यह मनुष्य शील और व्रतों को भंग करने वाला किस कारण से होता है यही बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रीाो ! मे ।

व्रतं गृहीत्वा त्यजतीह मूढः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब क1पाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पापकर्म के करने से व्रतों को ग्रहण करके भी छोड़ देता है ?

उत्तर- यः कारयित्वा व्रतशीलभड्.गं,

तुष्येत्परेषां प्रविधाय निन्दाम् ।

साधोश्चरित्रे ह्ययुनक् प्रदोषं,

स स्यादमुत्रे व्रतीशीलभड्.गी ।।76।।

अर्थ- जो मनुष्य दूसरों के व्रत व शील को भंग कराकर प्रसनन होता है , व दूसरों की निंदा करता है अथवा जो साधुओं के चरित्र मे दोष लगाता है। ऐसा मनुष्य मरकर परलोक में अपने व्रत शीलों को भंग करने वाला होता है।

भावार्थ- अहिंसा, सत्य अर्चार्य, ब्रह्यचर्य, परिग्रहत्याग (परिग्रह परिमाण) ये पांच व्रत कहलाते हैं तीा गुणव्रत शिक्षाव्रतों को शील कहते हैं। यसे व्रत और शील दानों ही आत्मा का कल्याण करने वाले और परंपरा से मोक्ष के कारण है। इसीलिये जो मनुष्य इन व्रत और शीलों को ग्रहण करके फिर छोड़ देता है अथवा इनका भंग रिता रहता है अथवा इनेमें अधिक अतिचार लगाता रहता है वह मनुष्य बहुत अधिक पापी समझना चाहिये। कल्याण करने वाले रतन को पाकर कोई भी नहीं छोड़ता। इसी प्रकार इन व्रतों को भी लेकर कभी नहीं छोड़ना चाहिये। फिर भी जो मनुष्य इनको धारण कर छोड़ देता है उसके समान कोई भाग्यहीन पापी नहीं है। ऐसा भाग्यहीन पापी मनुष्य पहले जन्म में दूसरों के व्रत-शील भंग कराने से होता है, दूसरों की निंदा करने से होता है

अथवा मुनियों के पवित्रचरित्र में दोष लगाने से होता है। अथवा किसी धर्मात्मा को मिथ्या कलंक लगाने से होता है। यही समझकर भव्य जीवों को इन पापों से सदा बचते रहना चाहिये। यह मनुष्य किस पाप के करने से मरकर गाय की पर्याय पाता है यही कहते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मृत्वा मनुष्यो भवतीह धेनुः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप के करने से यह मनुष्य मरकर गाय का शरीर धारण करता है ?

उत्तर- आचारहीनश्र विचारशून्यो,

ह्यभक्ष्यभक्षी भुवि केवलं यः ।

पानान्नलोभी खलु मन्दबुद्धिः,

स स्यादमुत्रे मनुजोऽपि धेनुः ।।77।।

अर्थ- जो मनुष्य सदाचार रहित है, वियारशून्य है, अभक्ष्य भक्षण करने वाला है, अनन्पान का अत्यंत लोलुपी है, अथवा जो मंदबुद्धि है ऐसा मनुष्य मरकर परलोक में गाय की पर्याय प्राप्त करता है।

भावार्थ- गाय बहुत भोली-ाली होती है। इसीलिए जो पुरूष इस जन्म में आचार-विचार न करते हुए चाहे जहां जिसके घर, चाहे जिसके हाथ का खा लेते हैं जो खाने-पीने व रहन-सहरन में विचार नहीं करते, न भक्ष्य-अभक्ष्यका विचार करते है।, तथा जो अनन्पान के तीव्रलोलुपी बने रहते हं और जिनकी बुद्धि अत्यंत मंद होती है ऐसे मनुष्य मरकर गाय का जन्म लेते है।

भैंस व भैंसाकी पर्याय किस कारण से प्रापत होती है यही दिखलाते हे।-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मृत्वा मनुष्यो महिषो भवेत्कौ ।।

अर्थ- हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य मरकर किस कारण से भैंव भैंसा होता है ?

उत्तर- धर्मीपदेशं सुखदं न श्रुत्वा,

गृह्वाति यः केवलमेव दोषम् ।

वाऽशान्तिमेकां विषमां करोति,

स याद्धि मृत्वा महिषो ह्याभाग्यः ।।78।।

अर्थ- जो पुरूष धर्म के उपदेश को कभी नहीं सुनता तथा केवल दोष को ही ग्रहण किया करता है तथा इस संसार में जो केवल एक अशांति को ही उत्पनन् यिका करता है ऐसा पुरूष मरकर भैंसा होता हैं

भावार्थ- भैंसा बहुत अठला, उपद्रव करने वाला और कभी न शांत रहने वाला पशु है। इसीलिये जो मनुष्य सदा अशांति फैलाया करता है कभी सामाजिक ण्गड़े व कभी धार्मिक झगड़े उत्पनन् किया करता है, जो पुरूष कभी देश के झगड़े उत्पनन् करता है, कभी राज्य के झगड़े उतपनन् करता है, कभी कुटुंब के झगड़े व कभी भाइयों के झगड़े उत्पनन् किया करता है अथवा जो धर्मकार्यीं की ओर कभी ध्यान नहीं देता, जो सदा दूसरों के दोषों को ही ग्रहण किया करता है। ऐसा पुरूष मरकर भैंसा ही होता है जो इस पर्याय मं आकर भी उपद्रव किया करता है।

बकरा होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च् वद प्रीाो ! मे ।

मृत्वा मनुष्योऽपि भवेदजः कौ ।

अर्थ- हे स्वामिनृ ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य मरकर किस कारण से बकरा होता है ?

उत्तर- वृथैव गच्छद्धि वदेद् वसेद् वा,

करोतयकार्यं नयंन निमील्य ।

निजप्रशंसां च परप्रणिन्दां,

कृत्वेति तुष्येत्स भवेदजः कौ ।।79।।

अर्थ- जो मनुष्य बिना प्रयोजन के व्यर्थ ही इधर-उधर घूमता फिरता है, व्यर्थ ही बकवाद करता फिरता है और व्यर्थ ही इधर-उधर फिरता रहता है जो अपने नेत्रों को बंदकर निंदनीय कार्य किया करता है अथवा अपनी प्रशंसा और दूसरों की निंदा करके बहुत प्रसनन होता है ऐसा मनुष्य मरकर इस पृथ्वी पर बकरा होता है।

भावार्थ- बकरा की पर्याय नीच पर्याय है उसका सदाकाल मरने का भय लगा रहता है तथा भूख-प्यास के महादुःख ाोगा करता है। ऐसी नीच पर्याय नीच और व्यर्थ के काम करने से ही होती है। जो मनुष्य बिना काम के बाजार में व गलियों में इधर-उधर घूमा करता है, अथवा जो बिना प्रयोजन के अनेक प्रकार की बकवाद किया करता है और जो चाहे जहां रह जाता है, जो किसी प्रकार का वियार किये बिना बुरे से बुरा काम कर डालता है, जो अपने प्रशंसा से प्रसनन होता है तथा दूसरे की निंदा सुनकर व स्वयं दूसरों की निंदा करके प्रसनन होता है अथवा जो पुरूष अन्य ऐसे ही नीच कार्यों को करता रहताहै वह पुरूष मरकर बकरा होता है।

कौआ की पर्याय प्रापत करने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रीाो ! मे ।

मृत्वा मनुष्यो भवतीह काकः ।।

अर्थ- हे स्वामिन् अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य करकर किस पापकार्य के करने से कौआ होता है ?

उत्तर- वस्तु ह्यभक्ष्यं मलिनं च निन्द्यं,

यश्राात्ति् मांसं कटुकं ब्रवीति ।

दुःखप्रदं कर्कशमेव वाक्यं,

मृत्वा स मतयी भवतीह काकः ।।80।।

अर्थ- जो मनुष्य अभक्ष्य, मलिन और निंदनी पदार्थों का भक्षण करता है ओर जो दुःख देने वाले कठोर और कड़वे वाक्य ही बाला करता है ऐसा मनुष्य मरकर कौआ होता है।

भावार्थ- कौआ अत्यंत निंदनीय पक्षी है वह अभक्ष्य भक्षण करता रहता है। मलिन निंद्या पदार्थों का भक्षण करता है, मांस, विष्ठा आदि का भखण करता है और सदाकाल कठोर वचन बोला करता है। यहां तक कि इस संसार में उसका बोलना अपशुकन माना जाता है। ऐसे निंद्य पक्षी की पर्याय निंद्य काम करने से ही प्रापत होती हैं जो मनुष्य कौओं के समान अभक्ष्य भक्षण किया करते हैं, मलिन और निन्दनीय पदार्थों का भक्षण करते हैं, मद्य-मांस मधु का सेवन व उदंबर फलों का भक्षण किया करते हैं अथवा जो कौओं के समान कठोर दुर्वचन, निंदनीय वचन कहा करते हैं व दूसरों की निंदा किया करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर इन्हीं पापों के कारण कौआ की पर्याय प्राप्त करते हैं

दुष्ट होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मृत्वा मनुष्यो भतीह दुष्टः ।।

अर्थ- हे प्रीाो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि मनुष्य किस किस पाप के करने से मरकर दुष्ट होता है ?

उत्तर- दुष्टस्य येन व्यसनस्थजन्तोः,

साधोः समं वा विषमं विवादः ।

मिथ्यात्वमूढस्य कृत प्रशंसा,

मृत्वा स मत्र्यो भवतीह दुष्टः ।।71।।

अर्थ- जो मनुष्य इस जन्म में किसी दुष्ट के साथ वादविवाद करता है व किसी जुआरी व चोर आदि व्यसनियों के साथ्ज्ञ वाद-विवाद करता रहता है। अथवा जो साधु सज्जनों के साथ विवाद करता रहता है। अथवा जो मनुष्य मियिादृष्टि व अत्यंत मूर्ख मनुष्यों की प्रशंसा किया करता है ऐसा मनुष्य मरकर दुष्ट मनुष्य होता है

भावार्थ- दुष्ट मनुष्य सबके साथ दुष्टता किया करता है, तथा विशेषतः सज्जनों के साथ व वीतराग निर्ग्रंथ साधुओं के साथ दुष्टता किया करता है। ऐसा दुष्ट मनुष्ट दष्ट व नीच काम करने से ही उत्पनन होता है। जो मनुष्ट दुष्ट मनुष्यों में रहता है, दुष्ट मनुष्यों की प्रशंसा किया करता है, दुष्ट मनुष्यों से दुष्टता के काम सीखता है, व मिथ्यादृष्टियों के साथ रहकर मिथ्यात्वकी वृद्धि करता है, वीतराग निर्ग्रंथ मुनियों की निंदा करता है उनके साथ वाद-विवाद करना चाहता है व उनका तिरस्कार करता है, अथवा जो अन्य ऐसे ही दुष्टता के कार्य किया करता है ऐसा मनुष्य मरकर फिर भी महादुष्ट होता है और फिर अनेक दुष्टता के काम कर नरक आदि दुर्गतियों के महादुःख भोगता रहता है। यही समझ कर मनुष्यों को कभी दुष्टता नहीं करनी चाहिये। सज्जनों के ही साथ अपनी संगति रखनी चाहिए और सदाकाल धर्मकार्य में लगे रहना चाहिये।

व्यभिचारी होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रीाो ! मे ।

मृत्वा नरः स्याद्व्यभिचारसेवी ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस - किस पाप के करने से मरकर व्यभिचारी मनुष्य होता है ?

उत्तर- वेश्यादिकानां च कुशीलजन्तोः,

सङ्.ग कृतो दुष्टजनादिकानाम्।

क्रीडा समं येन नपुंसकेन,

मृत्वा नरः स्याद्व्यभिचारभाक् सः ।72।।

अर्थ- जो मनुष्य इन जन्म में वेश्याओं की संगति करते हैं, अन्य व्यभिचारिणी स्त्रियों की संगति करते हैं व दुष्ट लोगों की संगति करते अथवा जो नपुसकों के साथ क्रीड़ा करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर व्यभिचारी होते हैं।

भावार्थ- व्यभिचार सेवन करना महापाप है, जो पुरूष व्यभिचार सेवन करता है व व्यभिचार सेवन करने की इच्छा करता है वह मनुष्य भी रावण के समान अतयंत निंदत होकर नरकादिक दुर्गतियों के दुःख भोगता है। रावण ने व्यभिचार सेन करने की इच्छा मात्र ही की थी उसी के फल से आज तक उसकी निंदा हो रही है तथा वह रावण का जीव आज तक नरक में पड़ा दुःख भोग रहा है। इसीलिये व्यभिचार सेवन करने की कभी इच्छा नहीं करनी चाहिये। जो मनुष्य व्यभिचारी जीवों के साथ उठता-बैठता है वेश्याओं की संगति में रहता है व अन्य व्यभिचारिणी स्त्रियों की संगति में रहता है अन्य चोर-जुआरी आदि दुष्ट लोगों की संगति में रहता है व अनंगक्रीडा करता है, हिजड़ों की संगति में रहता है व उनके साथ क्रीडा करता है ऐसा मनुष्य इस लोक में भी व्यभिचारी बन जाता है और मरकर भी तीव्र व्यभिचारी होता है। जहां से मरकर फिर वह नरकादिक दुर्गतियों के दुःख भोगता है। इसीलिये भव्य जीवों को कभी भी दुष्टों संगति में नहीं बैठना चाहिये।

पागल होने काकारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रीाो ! मे ।

मृत्वेति मत्र्यो ग्रहिलो भवेत्कौ।।

अर्थ- हे स्वामिन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस किस पाप कार्य के करने से यह मनुष्य मरकर अगले जन्म में पागल हो जाता है ?

उत्तर- मंत्रैश्र तंत्रैर्ग्रहिलोन्यजीवः,

कृतश्र , कृत्वा ग्रहिलापमानम् ।

वारोप्य तस्योपरि रोषदोषं,

तुष्येत्य मृत्वा ग्रहिलो चरः स्यात् ।।73।।

अर्थ- जो मनुष्य किसी मंत्र से व किसी तंत्र से अन्य जीव को पागल बना देता है, अथवा जो पागल जीवों का अपमान करता है अथवा जो उस पागल के ऊपर क्रोधित होने का दोष आरोपण कर संतुष्ट होता है ऐसा मनुष्य मरकर अगले जन्म में पागल होता है

भावार्थ- पागल मनुष्यों का जीवन भी व्यर्थ है वह न तो कुछ धर्मकर्म कर सकता है और न घर गृहस्थी का काम कर सकता हैं पागल मनुष्य केवल इधर-उधर घूमता रहता है। उसे न खाने का ध्यन है, न पीने का ध्यान है आर न पहनने का ध्यान है। यदि नंगा है तो नंगा ही घूमता रहता है। ऐसा पागल मनुष्य पापकर्म के उदय से ही होता है। जो मनुष्य किसी मंत्र तंत्र से किसी मनुष्य को पागल बना देता है व किसी पागल का अपमान करता है अथवा जो ऐसी ही ऐसी अन्य किसी प्राकर की मायाचारी करता है वह मनुष्य मरकर अगले जन्म में अवश्य ही पागल होता है।

बन्दीगृह में पड़ने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रीाो ! मे ।

जीवाः स्वयं बन्दिगृहे पतन्ति ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि ये जीव किस किस पापकार्य के करने से अपने आप बंदीगृह में जा पड़ते हैं ?

उत्तर- कारागृहे यैरपराधमुक्ता,

जीवा बलाद् बन्दिगृहे बनादौ ।

उक्त्वानृतं वा विपदेऽहि बद्धाः,

स्वयं व्यथादौ खलु ते पतन्ति ।।74।।

अर्थ- जिन मनुष्यों ने अपराधरहित जीवों को भी आपत्ति में डालने के लिये झूठ बोलकर तथा बलपूर्वक बंदीगृह में डाल दिया है अथवा किसी बन में ले जाकर बंदगृह में डाल दिया है ऐसे जीव जन्म में जाकर अनेक वित्तियों को सहन करने के लिये अपने आप बंदीगृह में जा पहुँचते हैं।

भावार्थ- निरपराध जीवों को दुःख देना व उनको झूठ बोलकर व झूठा दोष लगाकर बंदीगृह में डाल देना, मिथ्या कलंक लगाकर देश कनकाला दे देना, किसी निर्जन वन में छोड़ देना महापाप कहलाता है, क्योंकि ऐसा करने से उस जीव को महादुःख होता है। इसीलिये जो जीव ऐसा पाप करते हैं उन मनुष्यों को अगले जन्म में किसी न किसी बहाने से बंदीगृह में अवश्य जाना पड़ता है। वहाँ पर उनहे अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं तथा वहाँ से निकल कर अन्य दुर्गतियों के दुःख भोगने पड़ते हैं । यही समझकर रिपराध जीवों को कभी सताना नहीं चाहिये और उन उनको कभी मारना चाहिये।

उत्पन्न होते ही मरजोने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

स्वजन्मकाले म्रियते हि जीवः ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस किस पापकार्य के करने से जन्म लेते समय ही मर जाता है ?

उत्तर- यैर्जन्माकले हि परे च जीवाः,

सुमारिता वा खलु छेदिताश्र ।

कृतो वियोगो जनबान्धवानां,

ते जन्मकाले मनुजा म्रियन्ते।।75।।

अर्थ- जो मनुष्य अन्य जीवों को उत्पनन होते ही मार देते हैं व छेदन-भेदन कर देते हैं अथवा किसी भी जीव को उसके माता पिता से व भाई बंधुओं से अलग कर देते हैं, ऐसे जीव अगले जन्म में जाकर जन्म होते ही मर जाते हैं।

भावाथ्र- जन्म होते ही किसी जीव को मार देना बहुत बहड़ा पाप है, क्योंकि उस समय उसकी अवस्था अत्यंत शोचनीय, बलहीन और परवश होती है। उस समय वह कुछ नहीं कर सकता यहाँ तक कि रो भी नहीं सकता। ऐसी अवसथा में किसी भी दूसरे के बच्चो को मार देने के समान अन्य कोई पाप नहीं है मार देना व छेदन भेदन कर देना एक ही बात है। इसी प्रकार उत्पनन होत ही किसी बालक को उसके माता-पिता से अलग कर देना व भाई-बंधुओं से अलग करदेना भी बड़ा पाप है, क्योंकि जिन लोगों से वह बालक अलग कर दिया जाता है उनको महादुःख होता है। इसी प्रकार किसी बालक के मार देने पर भी उसके माता-पिता व कुटुंबियों को बहुत दुःख होता है। इसी महापाप के कारण वह मनुष्य मरकर उत्पनन होते ही मार दिया जाता है अथवा स्वयं मर जाता है। यही समझकर भव्यजीवों को कभी किसी बालक को न मारना चाहिये और उ उसके माता-पिता से उसको अलग करना चायिे।

निंदनीय होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कसमाद्धि पापाच्च वद प्रीाो ! मे ।

भवन्ति जीवा भुवि निन्दनीयः ।।

अर्थ- हे ीागवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पाप के करने से इस संसार में निंदनीय अर्थात् निंदा करने योग्य उत्पनन होते हैं ?

उत्तर- धर्मस्य देवस्य गुरोश्र निदां,

वाऽधार्मिकाणां च कृतः प्रसगः ।

यैर्भक्षितं चायन्यधनां ह्यभक्ष्यं,

भवन्ति कौ ते कस्माद् ।।76।।

अर्थ- जो मनुष्य देव, धर्म व गुरू की निंदा करते हैं, अथवा जो अधार्मिक पुरूषों की संगति करते है।, अथवा जो दूसरोंा का धन भक्षण किया करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर परलोक में समस्त जीवों के द्वारा निंदनीय होते हैं।

भावार्थ- जो मनुष्य इस संसार में निंदनीय होता है उसे सब लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं कोई उसका विश्वास नहीं करता और सब लोग उसका अपमान करते हैं इससे यह सिद्ध होता है कि ऐसा निंदनीय मनुष्य होना महापाप का फल हैं ऐसा महापाप देव, शास्त्र, गुरू की निंदा करने से होता है, देव, शास्त्र, गुरू परम वीतराग है, सर्वथा वीतरागताका उपदेश देते हैं, कभी किसी से कुछ चाहते नहीं, सदाकाल अपने आत्मा के कल्याण में व अन्य भव्य जीवों के कल्याण करने में लगे रहते हैं। ऐसे परमपूज्य देव, शास्त्र, गुरूका तिरस्कार करना महापाप का कारण है और ऐसे ही पाप करने से यह जीव निंदनीय व घृणास्पद होता हैं इसके सिवाय अधर्मातमा व पापी जीवों की संगति करने से भी अनेक प्रकार के पाप उत्पनन होत रहते है। प्रायः धर्महीन मनुष्यों की संगति से ही देव, शास्त्र, गुरू की निंदा की जाती है। अथवा ऐसे पापियों की संगति से ही अभक्ष्य भक्षण और पर धन हरण आदि महापाप किये जाते हैं ताा इन्हीं पापों के कारण यह जीव परलोक में जाकर अत्यंत निंदनीय होता है। इसीलिये भव्यजीवों को पापियों की संगति कभी नहीं रखनी चाहिए।

अपमृत्यु होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रीाो ! मे ।

प्राप्नोति जीवः सहसापम्तयुम् ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस किसि पाप के करने से इस जीव को अकस्मात् अपमृत्यु हो जाती है ?

उत्तर- दत्वान्यजीवाय विषं च तुष्येत,

विषाद्विलाक्यैव परस्य मृत्युम् ।

प्रक्षिप्य वह्नौ ह्यासिना च हतया,

तस्वापमृत्यु सहसा भवेत्कौ।।87।।

अर्थ- जो पुरूष किसी जीव को विष देकर संतुष्ट होता है, अथवा विष के देने से होने वाली किसी की मृत्यु को देखकर संतुष्ट होता है, अथवा जो किसी जीव को अगिन् में फेंककर व किसी काो तलवार से मारकर प्रसनन् होता है ऐसा मनुष्य अकस्मात् होने वाली अपमृत्यु से मरता है।

भावार्थ- किसी को विष देकर मारना व अगिन् में फेंक कर मार देना अथवा तलवार बंदूक से मार देना या अन्य किसी प्रकार से जीवों को मार देना महापाप माना जाता है। ऐसा महापाप करने वाला मनुष्य अपमृत्यु से मरता है और मरकर नरकादिक दुर्गतियों में पहुँच कर चिरकालतक दुःख भोगता रहता है। अपमृत्यु भी पापकर्म के उदय से ही होती है। तथापापका फल देने के लिये ही होती है, यही समझ कर भव्य जीवों की सदाकाल पाप से डरते रहनाचाहिये।

धन,घर आदि के जल जाने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च् वद प्रीाो ! मे ।

प्रदह्यते नु ह्यनलैर्गृहादिः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापकार्य के करने से इस जीव का घर-धन आदि जल जाता है।

उत्तर- विध्संसने चान्यधनादिकानां,

येन प्रयत्नो दहने कृतश्र ।

दग्धं परेषां सधनं गृहादिः,

प्रदह्यते तस्य धनं गृहादिः ।।88।।

अर्थ- जो मनुष्य दूसरों के धन-धान्यादिकों के नाश करने का प्रयतन करते रहते हैं व दूसरों के घर-धन आदि के जलाने का प्रयतन किया करते हैं अथवा जिन्होंने दूरां का धन व घर जला दिया है ऐसे मनुष्यों का धन वघर अगिन से अवश्य जल जाता है।

भावार्थ- दूसरों के घर में अगिन लगा देना, धन नष्ट कर देना, रहने का स्थान नष्ट कर देना, उसकी जीविका नष्ट कर देना अथवा और भी ऐसे ही पाप करना महापाप का कारण है। ऐसे पापों के करने से पापकर्मों का बंध हाता है और उस कर्म के उदय से उसका घर-धन आदि सब जल जाता है या नष्ट हो जाता है। इसीलिये भव्य जीवों को कभी ऐसा चिंतवन नहीं करना चाहिये।

स्त्री-पुत्रादिक के वियोग का कारण बतलाते हैं।

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे।

भार्यादिबन्धोश्र भवेद् वियोगः ।।

अर्थ- हे स्वामिन! अब कृपाकर यह बतलाइये कि स्त्री-पुत्र, भाई-बंधु आदि इष्ट जनों का वियोग किस-किस पापकार्य के करने से होता है?

उत्तर- यैश्रान्यभार्यादिवियोगकार्ये,

दत्तानुमोदश्र कृतः प्रयत्नः ।

स्वकार्यसिघ्यै हि परापमान-

स्तेषां वियोंगः स्वजनैः समं स्यात् ।।89।।

अर्थ- जिन जीवों ने पहले जन्म में अन्य जीवों की स्त्री, पुत्र, भाई

आदि कुटुंबी लोगों के वियोंग करने मे प्रयतन किया है, अनुमोदना की है अथवा अपने कार्य की सिद्धि के लिये दूसरों का अपमान किया है ऐसे लोगों को अगले जन्म में जाकर अपने कुटुंबी लोगों का वियोग सहन करना ही पड़ता है।

भावार्थ- किसी की स्त्री का वियोग करना किसी के पुत्र का वियोग करना व किसी के भाई का वियोग करना पाप का ही कारण है तथा जो जैसा करता है वह वैसा ही फल पाता है। यही कारण है कि जो दूसरों के बच्चों का व स्त्री-पुत्रादिकों का वियोग करता है परलोक में जाकर उसके पुत्र, स्त्री आदि का वियोग अवश्य होता है। यही समझकर किसी के कुटुंब का वियोग कभी नहीं करना चाहिये।

धन नाश होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

धनस्य नाशो भवतीह नृणाम ।।

अर्थ- हे प्रीाो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि मनुष्यों के धन का नाश किस पापकार्य के करने से होता है ?

उत्तर- कृतो धनादेर्हरणे प्रधत्नो,

द्वारेण राज्ञः किल कारितो यैः ।

चैरादिद्वारेण परस्य हानिः,

धनादिनाशो भवतीह तेषाम् ।।90।।

अर्थ- जो पुरूष दूसरों के धन को हरण करने का प्रयतन करता है अथवा जो राजा आदि के द्वारा दूसरों के धन को हरण करने का प्रयतन कराता है अथवा जा चोर, जुआरी आदि की सहायता से दूसरों को हानि पहुचाता है उस पुरूष के धन आदि का नाश अवश्य होता है।

भावार्थ- अनेक लोग ऐसे होते हैं जो दूसरों की हानि पहुंचाने में

अत्यंत प्रसनन होते हैं। यदि वे स्वयं हानि नहीं पहुँचा सकते, तो फिर किसी चोर की सहायता से हानि पहुँचा देते हैं अर्थात् चोरी करवादेते हैं, लुटवा देते हैं अथवा राजा व राजकर्मचारियों के द्वारा हानि पहुँचा देते हैं, परस्पर लड़ाकर हानि पहुँचा देते हैं अथवा अन्य कितने ही कारणों से हानि पहुँचा देते हैं ऐसे जीवों के परिणाम सदा अशुभ रहते हैं और उन परिणामों के निमित्त से बंधे हुए कर्मों के उदय से किसी न किसी प्रकार से उनके धनका भी सर्वथा नाश हो जाता है। चाहे वह धन का नाश चोरी से हो व राज्य की ओर से हो व व्यापार के घाटे से हो या अन्य आकस्मिक कारणों से हो, परंतु अवश्य हो जाता हैं यही समझकर बुद्धिमान जीवों को दूसरों की हानि करने का चिंतवन कभी नहीं करना चाहिये।

कंठमाला होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे।

गेन्थिश्र कण्ठे भवतीह जन्तोः ।।

अर्थ- हे स्वामिन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पापकर्म के करने से इस जीव के गले में गाँठे व कंठमाला हो जाती है ?

उत्तर- पीडान्यकण्ठे खलु येन दत्ता,

वा दापिता द्वेषशाद्धि निन्दा ।

कौ ग्रन्थिजीवस्य कृता कुचेष्ठा,

ग्रन्थिर्हि कण्ठे भवतीह तस्य ।।91।।

अर्थ- जो मनुष्य अन्य जीवों के कंठ में दुःख पहुँचाया करते हैं, अथवा किसी द्वेष के कारण दूसरों के द्वारा पीड़ा पहुँचाया करते हे। अथवा किसी की निंदा किया करते हैं, अथवा किसी जीव के गले में होने वाली गाँठ की कुचेष्टा किया करते हैं ऐसे जीवों के कंठ में अवश्य ही गाँठ उत्पनन हो जाती है।

भावार्थ- कंठ में गाँठ उत्पनन् हो जाना कंठमाला कहलाती है। यह कंठमाला कष्टसाध्य व असाध्य रोग कहलाता है। तथा वर्षों तक दुःख देता रहता है, यह रोग पापकर्म के उदय से ही होता है। वह पापकर्म दूसरों को दुःख देनेसे ही बँधता है जो लोग दूसरों के कंठ में छेदन-भेदन कर दुःख पहुँचाया करते हैं, जो स्वयं तो दुःख नहीं पहुँचाते व दूसरों के द्वारा पहुचाया करते है। व झूठी निंदा किया करते हैं, अथवा जिस किसी जीव के कंठ में गाँठ उठी है, उसकी हँसी किया करते हैं या दुःख पहुँचाने की नियत से उसी गाँठ को छिनन्-भिनन् किया करते हैं अथवा अन्य कितने ही उपयों से दुःख पहुँचाने की चेष्टा किया करते हैं ऐसे पुरूषों के गले में ही कंठमाला होती है और उससे वे महा दुःखी हुआ करते हैं। यही समझकर किसी रोगी को कभी दुःख नहीं देना चाहिये। रोगी की सदा सहायता करते रहना चाहिए ऊँट की पर्याय प्राप्त करने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे।

मत्र्यः किलोष्ट्रो भवतीह मृत्वा ।

अर्थ- हे स्वामिन् अब कृपा कर यह बतलाइये कि किस-किस पाप के करने से यह मनुष्य मरकर ऊँट होता है ?

उत्तर- नमेन्न देवं न गुरूं न शास्त्रं,

बाऽधो महीं यो न विलोक्य गच्छेत् ।

उदण्डवृत्तिश्र धनेन मत्ते,

मृत्वा किलौष्ट्रः स भवेदभाग्यः ।।92।।

अर्थ- जो मनुष्य अरहंतदेव को और वीतराग निर्ग्रन्थगुरू को नमस्कार नहीं करता है अथवा जो ऊँची-नीची भूमि को देखकर नहीं चलता तथा सदाकाल उद्दंडवृत्तिको धारण करता रहता है और धन के मद से उन्मत्त रहता है ऐसा मनुष्य मरकर परलोक में भाग्यहीन ऊँट होता है।

भावार्थ- ऊँट की पर्याय एक निकृष्ट पर्याय है। उसकी चाल सवारी आदि सब निकृष्ट कहलाती है। ऐसी निकृष्ट और उद्धत पशु की पर्याय निकृष्ट और उद्धत काम करने से ही प्राप्त होती है। जो मनुष्य मदोन्मत्त व उद्धत होकर, देव, शास्त्र, गुय आदि किसी को नमस्कार नहीं करता, अथवा जो ऊँची-नीची भूमि को देखकर नहीं चलात, अपनी उन्मत्तता के कारण बिना देखे चलता है अथवा जो सदाकाल उद्दडवृत्ति को धारण करता रहता है और अपने धन के मद से उन्मत्त होकर किसी को कुछ नहीं गिनता ऐसा उद्धत और उन्मत मनुष्य मरकर ऊँट ही होता है।

हाथी की पर्याय प्रापत होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रीाो ! मे ।

जीवो गजः कौ भवतीह मृत्वा ।।

अर्थ- हे स्वामिन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस- किस पाप के करने से मरकर हाथी की पर्याय में पहुँचाता है ?

उत्तर- व्रतोपवासं न तपो जपं वा,

सद्धर्मदेवादिगुरोर्न सेवाम् ।

कृत्वाऽकरोत्केवलदेहपुष्टं,

मृत्वा मनुष्योऽपि गजो भवेत्सः ।।93।।

अर्थ- जो मनुष्य न तो कभी व्रत उपवास तपश्चरण करता है, न जप करता है और न देव, धर्म, गुरू की सेवा करता है। इस प्रकार धार्मिक कार्यों को न करता हुआ जो केवल शरीर को पुष्ट किया करता है ऐसा मनुष्य मरकर हाथी ही होता है।

भावार्थ- जिस प्रकार हाथी की पर्याय केवी शोाा के लिए है किसी काम केलिए नहीं हथै तथा उसके खाने का खर्च भी बहुत अधिक है। ऐसी पर्याय उन्हीं जीवों को प्राप्त होती है जो मनुष्य पर्याय पाकर भी

व्रत, उपवास, जप, तप आदि कुछ नहीं करते हैं, न कभी श्रेष्ठधर्म को धारण करते हैं और न कभी देव, शास्त्र, गुरू की सेवा करते हैं इस प्रकार जो मनुष्य एक भी धार्मिक क्रिया को न करते हुए केवल शरीरी को पुष्ट करने में रात दिन लगे रहते हैं ऐसे पुरूष मरकर हाथी ही होते हैं। अतएव मनुष्य जन्म पाकर के व्रत, उपवास, जप, तप आदि धार्मिक कार्यों का करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य को अवश्य करना चाहिये।

जोंक की पर्याय प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रीाो ! मे ।

मृत्वा मनुष्यश्र भवेद् जलौकः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पाप के करने से जोंक की पर्याय प्राप्त करता है ?

उत्तर- सुखप्रदान् दुःखहरान् परोषां,

त्यक्त्वा गुणान् ये भदान् प्रदोषान् ।

गृह्नन्ति कुर्वनित सदापमानं,

मृत्वा जलौका भुवि ते भवन्ति ।।94।।

अर्थ- जो मनुष्य प्रत्येक जीव को सुख देने वाले तथा दुःखों को दूर करने वाले दूसरों के श्रेष्ठ गुणों को छोड़कर केवल जन्म-मरणरूप संसार को बढ़ाने वाले दोषों को ग्रहण किया करते हैं तााि जो सदाकाल श्रेष्ठ गुणाों का व सज्जनों का अपमान किया करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर इस संसार में जोंक की पर्याय प्राप्त करते हैं

भावार्थ- जोंक की पर्याय अत्यंत निंदनीय पर्याय है यदि जोंक को दूधन देने वाले किसी थन पर भी लगा दी जाय तो भीव ह रूधिर ग्रहण किया करती है। इसी प्रकार जो मनुष्य उत्तम से उत्तम गुणवानों के

समीप रहते हुए भी उनके उत्तम गुणों को ग्रहहण नहीं करते किन्तु उनके दोषों को ही ग्रहण किया करते हैं अथवा जो उत्तम गुणियों में भी मिथ्या दोष लगा देते हे। ऐस मनुष्य मरकर जोंक ही होते हैं। जो इस पर्याय में दूध जैसे उत्त्म पदार्थ को छोडत्रकर रूधिर ही ग्रहण करते हैं।

उलूक व उल्लू की पर्याय प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रीाो ! मे ।

मृत्वा मनुष्यो भुवि कोशिकः स्यात् ।।

अर्थ- हे प्रभो 1 अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस किस पाप के करने से मरकर उल्लू की पर्याय प्रापत करता है।

उत्तर- कुर्वन्ति देवस्य न दर्शनं ये,

पिवन्ति साधोर्वचनामृतं न ।

दूरेऽतिदूरे गुरूतो भ्रमन्ति,

भवन्ति मृत्वा खलु कौशकासते ।।95।।

अर्थ- जो मनुष्य न तो कभी भगवान अरहंत देव के दर्शन के दर्शन करता है न कभी वीतराग निर्गंथग गुरूओं के वचनरूपी अमृतका पान करता है तथा जो वीतराग निर्ग्रंथ गुरूओं से दूर-दूर रहते हैं उनके समीप तक नपही जाते ऐसे मनुष्य मरकर उल्लू की पर्याय प्राप्त करते हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार उल्लू दिन में किसी के दर्शन नहीं कर सकता, आँखें बंद कर छिप जाता है उसी प्रकार जो मनुष्य पया?ेय प्राप्त करके भी भगवान् अरहंत देव के और वीतराग निर्ग्रंथ गुरूओं के दर्शन कभी नहीं करता, और न उन गुरूओं के मोक्षमार्ग को नियिंपण करने वाले अमृतमय वचखनें को सुनता है तथा तीव्रमिथ्यात्व के कारण जो गुरूओं के समीप तक नहीं जाता है ऐसा मनुष्य मरकर उल्लू की पर्याय प्राप्त करता है।

डांस मच्छरों की पर्याय प्राप्त होने का कारण बतलाते है-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे मृत्वा मनुष्याश्र भवन्ति दंशाः।।

अर्थ- हे स्वामिन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पाप के करने से यह मनुष्य मरकर डांस व मच्छरों की पर्याय प्राप्त करता है।

उत्तर- गुरोः पुरो ये स्तवनं नतिं वा,

कुर्वन्ति पश्रातू खलु तत्प्रणिन्दाम् ।

सदापमानं च पुरः परेषां,

मृत्वा नरासते च भवन्ति दंशाः ।।96।।

अर्थ- जो मनुष्य वीतराग निर्ग्रंथ गुरूओं के सामने उनकी स्तुति करते हैं व उनको नमस्कार करते है। किन्तु पीछे उनकी निंदा किया करते है। तथा अन्य लोगों के सामने उन्ही मुनियों का अपमान किया करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर डांस व मच्छर की ही पर्याय प्रापत करते हैं।

भावाथ- मच्छर जिस प्रकार कान पर आकर गीत सुनाया करता है और फिर समय पाकर पीछे से काट लिया करता है उसी प्रकार जो मनुष्य वीतराग मुनियों के सामने तो उनकी स्तुतिर्ि किया करते हैं व उनको नमस्कार भी करते हैं परंतु उनके पीछे उनकी निंदा किया करते हैं व उनमें मिथ्या कलंक लगाया करते हैं अथवा उनके लिए अन्य कितने ही प्रकार के दुर्वचन कहा करते हैं इसी प्रकार के जो मनपुष्य प्रायः सबका अपमान किया करते हैं, सबका हानि पहुँचाया करते हैं व छिप छिपकर हानि पहुँचाते हैं ऐसे मनुष्य मरकर डांस मच्छर ही होते हैं।

सर्प की पर्याय प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मृत्वा मनुष्याश्र भवन्ति सर्पाः ।।

अर्थ- हे स्वामिन् अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य

किस-किस पाप के करने से सर्प की पर्याय प्राप्त करते हैं ?

उत्तर- धर्मस्वरूपं च गुरूपदेशं,

श्रुत्वापि बुद्धवा सकलं पदार्थम् ।

वैरं न मिथ्यात्वविषं त्यजन्ति,

मृत्वा जनास्ते च भवन्ति सर्पाः ।।97।।

अर्थ- जो मनुष्य धर्म का स्वरूप और गुरू का उपदेश सुनकर समस्त पदार्थों का स्वरूप समझकर भी अपने वैर विरोध का त्याग नहीं करते हैं अथवा अपने मिथ्यात्वरूपी विष का त्याग नहीं करते ऐसे मनुष्य मरकर सर्प की पर्याय पाते हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार सर्प जन्मजन्मांतर तक अपना वैर नहीं छोड़ता तथा मंत्रवादियों के द्वारा समझाने व सब प्रकार से संतुष्ट कर देने पर भी अपना वैर नहीं छोड़ता तथा सुखी रखने पर भी काटना नहीं छोड़ता। उसी प्रकार जो मनुष्य गुरू के उपदेश से समस्त तत्तवों का और अपने आत्मा का स्रूप समझ लेता है तथा वैर और विरोध व कषायों का स्वरूप समझ कलेने पर भी जो मनुष्य अपने वैर विरोध नहीं छोड़ता व मिथ्यात्वरूपी विष का त्याग नहीं करता, आत्मा का स्वरूप समझकर भी जो आत्मा में लीन नहीं होता व सम्यग्दर्शन का यथार्थ स्वरूप जानकर भी उसका ग्रहण नहीं करता ऐसा मनुष्य मरकर सर्प का शरीर धारण करते हैं।

बिच्छू की पर्याय धारण करने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापच्च वद प्रभो ! मे ।

स्युर्वृश्चका कौ मनुजाश्र मृत्वा ।।

अर्थ- हे स्वामिन् ! ब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पाप के करने से मरकर बिच्छू होता है ?

उत्तर- स्वख्यातिहेतोः स्वजनान् परान् वा,

वाग्वज्रतश्चेतसि ताडयन्ति ।

दंशन्ति ये नेत्रविकारदन्तै-

स्ते वृश्रिकाः स्युर्मनुजाश्र मृत्वा ।।98।।

अर्थ- जो मनुष्य अपनी प्रसिद्धि के लिए अपने कुटुंबी लोगों के व अन्य लोगों के हृदय में अपने वचनरूपी वज्र की चोट से ताड़ना करते हैं अथवा जो दांतों व नेत्रों के विकारों से मनुष्यों को काटते हैं ऐसे मनुष्य मरकर बिच्छू होते हैं।

भावार्थ- बिच्छू जिस प्रकार अपने डंक की चोटे मारता है उसी प्रकार जो पुरूष वज्र के समान चुभने वाले कठोर वचनों की चोट मारते हैं व दांतो से काट लेते हैं अथवा नेत्रों के विकार की चोट मारते हैं अथवा जो और भी ऐसे ही ऐसे काम करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर बिच्छू होते हैं। बिच्छू एक निकृष्ट जीव है वह जहाँ जाता है वही से भगाया जाता है। व मारा जाता है। इसी प्रकार कठोर वचन कहने वाला भी पीटा जाता है व मारा जाता है। यही समझकर किसी भ्याी भव्यजीव को कठोर वचन कभी नहीं कहने चाहिये।

चटक की पर्याय प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मृत्वा नरः स्याच्चटको ह्यभाग्य ।।

अर्थ- हे स्वामिन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप के करने से यह मनुष्य मरकर चटक व चिड़ा होता है ?

उत्तर- धनार्जनं श्राानन्दविवर्द्धनार्थं,

दानार्चनार्थं न करोति किनतु ।

पुत्राय वा केवल कुक्षिहेतो-

मृत्वा स मत्र्यश्रटकों भवेत्कौ ।।99।।?

अर्थ- जो मनुष्य अपने धन का संचर कर न तो उससे ज्ञान की वृद्धि करता है और न दान,पूजा आदि श्रेष्ठ कायी में खर्च करता है। अथवा उस धन को केवल पेट भरने में खर्च करता है अथवा अपनी संतान पालन करने में खर्च करता है ऐसा मनुष्य मरकर चिड़ा ही होता है।

भावार्थ- धन पाकर के उस धन को दान में खर्च करना, पूजा में खर्च करना, जिनालय बनावाना, जिन प्रतिमा बनावाना, धार्मिक शिक्षा देना आदि श्रेष्ठ कार्यों में ही खर्च करना चाहिये, यह मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है। धन का प्रयोजन केवल पेट भर लेना नहीं है, क्योंकि पेट तो कौआ आदि नीच जानवर भी भर लेते है। मनुष्य जन्म पाकर के परलोक सुधारना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। इतना समझते हुए भी जो मनुष्य प्रापत हुए धान से केवल अपना पेट भरते हैं अथवा केवलन अपनी संतान के भरण पोषण में ही अपना धन खर्च कर डालते हैं ऐसे मनुष्य मरकर चिड़ा ही होते हैं। क्योंकि चिड़ा भी केवल अपना पेट भरता है। और यथाशक्ति संतान को पाल लेता है। यही समझकर धनी पुरूष को सदाकाल अपना धन धर्मकार्य में खर्च करते रहना चाहिये।

तोते की पर्याय प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मृत्वा मनुष्योऽपि शुको भवेत्कौ ।।

अर्थ- हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस पाप के करने से तोते की पर्याय प्राप्त करता है ?

उत्तर- ज्ञानादिगर्व भुवि केवलं यः,

करोति किंचित्सखदं न कार्यम् ।

मिष्टं सदा जल्पति यत्र तत्र,

मृत्वा शुकः स्यान्स च भाग्यहीनः ।।100।।

अर्थ- जो मनुष्य इस संसार में सदाकाल ज्ञान, धन आदि का अभिमान करता रहता है और अन्य जीवों को सुख देने वाला कार्य कभी नहीं करता तथा जो इधर-उधर घूमता हुआ केवल मीठे वचन सुना देता है ऐसा मनुष्य मरकर भाग्यहीन ताते की पर्याय प्राप्त करता है।

भावार्थ- तोता केवल मीठा बोलता है इसके सिवाय वह अन्य किसी काम में नहीं आता। इसी प्रकार जो मनुष्य इसे संसार में केवल धन व ज्ञान के अभिमान में चूर रहता है जो अन्य जीवों को सुख देने वाला परोपकार व दानादिक का कार्य किंचिन्मात्र भी नहीं करता। केवल मीठे वचन कहता हुआ इधर-उधर घूमता रहता है ऐसा मनुष्य मरकर तोते की ही पर्याय प्रापत करता है। यही समझ कर भव्यजीवों को अपने ज्ञान व धन का आदि का अभिमान कभी नहीं करना चाहिये तथा केवल मीठे वचन कहकर ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये, किंतु उन मीठे वचनों के साथ-साथ अपने आत्मा का तथा अन्य जीवों का कल्याण भी करना चाहिये। अपने ज्ञान से जिन धर्म की प्रभावना करनी चाहिये और धन को दान में खर्च कर भव्य जीवों की सहायता देनी चाहिये।

वृक्ष की पर्याय प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मृत्वा मनुष्यो भवतीह वृक्षः ।।

अर्थ- हे स्वामिन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पाप के करने से वृक्ष की पर्याय प्राप्त करता है ?

उत्तर- स्वमीक्षदं शांतिनिकरं सदा यः,

जिनं सुधर्मं च गुरू विगर्वात् ।

न वन्दते बोधकरं च शास्त्रं,

मृत्वा स मत्र्यो भवतीह वृक्षः ।।101।।

अर्थ- इस संसार में देव, शास्त्र, गुरू और सद्धर्म ही स्वर्ग-मोक्ष देने वाले हैं और आत्मा में शांति उत्पनन करने वाले हैं जो मनुष्य अपने मिथ्या अभिमान से ऐसे भगवान् जिनेन्द्रदेव को उन जिनेन्द्रदेव के कहे हुए श्रेष्ठ धर्म को आत्मज्ञान प्रकट कराने वाले जिनप्रणीत शास्त्रों को और उनकी ाज्ञानुसार चलने वाले वीतराग निर्ग्रंथ गुरूओं की वंदना नहीं करता है वह मनुष्य मरकर वृक्ष ही होता है।

भावार्थ- वृक्ष सदा खड़ा ही रहता है वह किसी के सामने भी नम्र नहीं होता है । इसी प्रकार जो मनुष्य इतना अभिमान है कि भगवान् जिनेन्द्रदेव के सामने जाकर भी कभी नम्र नहीं होता है वह पाप करता है, क्योंकि भगवान जिनेन्द्रदेव समस्त आत्माओं का कल्याण करने वाले, समस्त जीवों को अभयदान देने वाले, समस्त जीवों को सुख देने वाले, अहिंसा धर्म का उपदेश देने वाले और स्वर्ग मोक्ष के साक्षात् कारण है।। ऐसे भगवान जिनेन्द्रदेव को भी नमस्कार न करना उनके सामने जाकर भी वृक्ष के समान खड़े रहना महापाप है, क्योंकि इन्द्रादिक देव भी भगवान् जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करते हैं फिर भला मनुष्य की तो बात ही क्या है। अर्थात् जो मनुष्य होकर भी जिनेन्द्रदेव को नमस्कार नहीं करता व उनके कहे हुए शास्त्र व धर्म को नमस्कार नहीं करता अथवा निर्ग्रंथ गुरूओं को नमस्कार नहीं करता ऐसा मनुष्य मरकर अपने गाढ़ अभिमान कभी नहीं करना चाहिये।

मयूर की पर्याय प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मत्र्योऽपि मृत्वा च शिखी भवेत्कौ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-

कस पाप के करने से मयूर की पर्याय प्राप्त करता है ?

उत्तर- स्वात्मानुभूतेः स्वरसं न पीत्वा,

हठात्स्वयं पावयति परान् यः ।

त्यक्त्वा स्वकृत्यं यतते परार्थ,

स स्याच्छिखी कौ मनुजोऽपि मृत्वा ।।102।।

अर्थ- जो मनुष्य अपने आत्मा के अनुभव से उत्पनन् हुए शुद्ध आम के रस को स्वयं नहीं पीता है किंतु हठपूर्वक दूसरों को पिलाने का प्रयतन् करता है। इसी प्रकार जो अपने आत्मकर्तव्य को छोड़कर दूसरों का उपकार करने के लिए प्रयतन् करता है वह मनुष्य मरकर मयूर ही होता है।

भावार्थ- मयूर स्वयं महापाप उत्पनन् करता रहता है, वह प्रतिदिन अनेक कीड़ों को मारकर खा जाता है तथापि वह केवल देखने में सुंदर लगता है और शब्द मीठा बोलता है। इसी प्रकार जो मनुष्य अपने आत्मा का कल्याण तो कभी करता नहीं, किन्तु स्वयं अनेक प्रकार के पाप किया करता है और फिर भी दूसरों का कल्याण करने के लिए लंबे चैड़े उपदेश देता हुआ परोपकार करने का नाटक किया करता है ऐसा मनुष्य मरकर मयूर की पर्याय प्रापत करता है। यही समझकर सबसे पहले अपने आत्मा का कल्याण करना चाहिये अपने आत्मा का कल्याणकर लेने पर दूसरे के कल्याण करने का प्रयतन् करना चाहिए क्योंकि अपने आत्मा का कल्याण कर लेने पर ही दूसरों का कल्याण किया जा सकता है।

गृद्ध पर्याय प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मृत्वा मनुष्यो भवतीह गृद्ध ।।

अर्थ- हे स्वामिन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस

पाप के करने से यह मनुष्य मरकर गृद्ध की पर्याय प्राप्त करता है।

उत्तर- कृत्वा स्वयं नैव धनार्जनादिं,

यः केवलं बंधु गृहे भुनक्ति ।

गच्छेत्सदा यत्र लभेत वाऽन्नं,

मत्र्यः स मृत्वा भवतीह गृद्ध ।।103।।

अर्थ- जो मनुष्य स्वयं कभी धनोपार्जन नहीं करता, केवल कुटुंब में जाकर भोजन कर लेता है अथवा जहाँ पर अनन मिल जाता है वहीं पर चला जाता है। ऐसा बेकार मनुष्य मरकर गृद्ध पर्याय प्राप्त करता है।

भावार्थ- जिस प्रकार गृद्ध माँस भक्षण करता है और वह भी मरे हुए पशुओं का ही माँस भक्षण करता है तथा जहाँ कहीं माँस पड़ा दिखाई देता है वहीं पहुँच जाता है। इसी प्रकार जो मनुष्य कभी कुछ कमाता नहीं, न कमाने का कभी प्रयतन करता है, भाई-बंधुओं के यहाँ जैसा कुछ मिल जाता है खा लेता है। यदि घर में कुछ खाने को न मिला तो फिर जहाँ भोजन मिलता है वहीं जा पड़ता है और भख्य-अभक्ष्य जो कुछ मिल जाता है वही खा लेता है। इस प्रकार भक्ष्य-अभक्ष्य जो कुछ मिल जाता है वही खा लेता है इस प्रकार भक्ष्यअभख्य का कुछ विचार नहीं करता, निकृष्ट भोजन कर लेता है ऐसा मनुष्य मरकर अवश्य ही गिद्ध पर्याय प्राप्त करता है।

बंदर की पर्याय प्रापत करने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मत्र्योऽपि मृत्वा च कपिर्भवेत्कौ ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पाप के करने से बंदर की पर्याय धारण करता है?

उत्तर- देशेऽन्यदेशेऽन्यगृहेऽपि गच्छे-

न्निष्कारणं यश्र वनस्पतीन् वा ।

छिनत्ति धर्मायततं भिन्नत्ति ।

मृत्वा स कत्यैश्र भवेत्कपिः कौ ।। 104।।

अर्थ- जो मनुष्य बिना कारण के ही देश-विदेश में घूमता फिरता है, बिना कारण के ही अनेक वनस्पतियो को तोड़ता फिरता है व जिनालय आदि धर्मायतनों को तोड़ता है, ऐसा मनुष्य मरकर बनदर की पर्याय प्राप्त करता है।

भावार्थ- जिस प्रकार बंदर देश-विदेश के समस्त स्थानों में घर-घर बिना किसी प्रयोजन के घूमता रहता है, तथा अनेक वनस्पतियों को अनेक वृक्षों को अनेक फलों को अनेक पुष्पों को तोऊ डालता है व अनेक घरों में मंदिरो में पहुंचकर हानि पहुचाया करता है व उनकी तोड़-फोड़ करता है ऐसा मनुष्य मरकर बंदर की पर्याय में उत्पनन होता है। यही समझकर भव्य जीवों को ऐसे पापो से सदाकाल बचते रहना चाहिये। साधमिर्यों के साथ विवाद करने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च करोति जीवः ।

वृथा विवादं सह धार्मिकैश्र ।।

अर्थ- हे स्वामिन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पाप के करने से धर्मात्माओं के साथ वाद-विवाद करता रहता है ?

उत्तर- देवस्य धर्मस्य गुरोः पुरा यैः,

कृतोऽपमानश्र वृथा विवादः ।

कुर्वन्ति संस्कारवशात्प्रकोपे,

साधर्मिकैस्ते विवदन्ति लोके ।।105।।

अर्थ- जो पुरूष पूर्व जन्म में देव, धर्म, गुरू का अपमान करते हैं अथवा पूर्व जन्म के संस्कारों के निमित्त से गुरूओं पर क्रोध करते हैं, उनके साथ विवाद करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर अन्य जन्म में जाकर वहाँ धर्म में व धर्मात्माओं के साथ वाद-विवाद किया करते हैं।

भावार्थ- धर्म में व धर्मात्माओं के साथ विवाद करना, धर्म मं किसी प्रकार की शंकर रखना सम्यग्दर्शन को नष्ट करना है और मिथ्यात्वक को बढ़ाना है। गुरू के साथ तो कभी वाद-विवाद करना ही नहीं चाहिए, क्योंकि गुरू की तो आज्ञा ही मान्य होती है। गुरू वीतराग होते है। और समस्त आशाओं से रहित निर्ग्रंथ होते हैं वे जो कुछ कहते हैं आत्मकल्याण के लिए ही कहते हैं ऐसे निस्पृह गुरूओं के साथ विवाद करना पाप का कारण हैं ऐसा पाप वही मनुष्य करता है जो पहले भव में देव, धर्म ुरू का अपमान करता है, उन्हे पूज्य नहीं मानता उनकी निंदा करता है, धर्म की हँसी उडत्राता है, धर्मात्माओं के साथ विवाद करता है, धर्मात्माओं को नीचा दिखाता है। व अन्य कितने ही ऐसे ही काम किया करता है। ऐसा मनुष्य मरकर गुरूओं के व धर्मात्माओं के साथ झगड़ने वाला या वाद-विवाद करने वाला होता है।

राजा भी रंक होने का कारण बतलाते हे।-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

राजापि मृत्वा भवतीह रंकः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप के करने से राजा भी मरकर रंक हो जाता है ?

उत्तर- धर्मादिशून्यो विषये निमग्नो,

द्वेषी प्रजानां पशुवद्विहारी ।

मांसाशनो यो मदिराप्रपायी,

म्वा स राजा भवतीह रड्.कः ।।106।।

अर्थ- जो राजा धर्म कर्म से सर्वथा रहित होता है, इन्द्रियों के विषयों में लीन रहता है, प्रजा से द्वेष करता है, पशुओं के समान विहार करता है, माँस भक्षण करता है और मदिरा पान करता है, ऐसा राजा मरकर इसी संससार में अत्यंत दरिद्र रंक होता है।

भावार्थ- राजाओं को धर्मात्मा होना अत्यावश्यक है, क्यसोंकि राजाओं के धर्मात्मा होने से समस्त प्रजा धर्मात्मा हो जाती है। यदि राजा पापी होता है तो समस्त प्रजा पाप करने लग जाती है। प्रजा सदाकाल राजा का अनुकरण करती रहती हैं राजा और प्रजा दोनों के पाप करने से राज्य नष्ट हो जाता है तथा दोनों के पुण्य करने से गज्य की वृद्धि होती है। इसलिये जो राजा धर्मकार्यों से वंचित रहता है कभी धर्मकार्य नहीं करता वह राजा मरकर परलोक में अत्यंत दरिद्री रंक होता है। इसी प्रकार जा ेराजा सदाकाल विषयों में जीन रहता है, वह भी मरकर रंक ही होता है, क्योंकि सदाकाल विषयों मे लीन रहने वाला राजा न तो धर्मकर्म कर सकता है न प्रजा का पालन कर सकता है और न ही धर्मात्माओं की रक्षा कर सकता हैं । तथा उसकी देखादेखी उसकी प्रजा भी ऐसी ही हो जाती है। इसलिये राजाओं को धर्मकार्य करते हुए न्यायपूर्वक दइन्द्रियों को तृप्त करना चाहिये। इसी प्रकार जो राजा प्रजा से द्वेष करता है, प्रजा का पुत्र के समान पालन नहीं करता व पशुओं के समान सदाकाल बिना प्रयोजन के भी इधर-उधर घूमता है अथवा जो मद्यपान, मांसभक्षण आदि निकृष्ट पदार्थों का सेवन करता है ऐसा राजा मरकर परलोक में निकृष्ट पदार्थों का सेवन करता है ऐसा राजा मरकर परलोक में निकृष्ट नीच रंक होता है। यही समझकर राजाओं को ऊपर लिखे निकृष्ट कार्यों से सदा बचते रहना चाहिये।

कुदेव, कुशास्त्र व कुगुरूकी प्रशंसा करने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च करोति जीवः ।

कुदेवधर्मादिगुरूप्रशंसाम् ।।

अर्थ- हे प्रीाो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पाप के करने से कुदेव, कुधर्म व कुगुरूकी प्रशंसा किया करता है ?

उत्तर- कुदेवशास्त्रस्य गुरोः पुरा यैः,

श्रद्धा कृता वा विनयादिभक्तिः ।

कुर्वन्ति संस्कारवशात्त् एव,

परत्र लोकेपि च तत्प्रशंसाम् ।।107।।

अर्थ- जिन लोगों ने पहले जन्म में कुदेव, कुशास्त्र व कुगुरू की श्रद्धा विनय और भक्ति की है ऐसे जीव मरकर अपने संस्कारों के निमित्त् से परलोक में भी जाकर कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरूओं की ही प्रशंसा किया करते हैं।

भावार्थ- मिथ्यात्व का संस्कार जन्म-जन्मांतर तक जाता है। जो मनुष्य इन जन्म में गाढमिथ्यात्व में लीन रहता है वह मनुष्य परलोक में जाकर भी उसी मिथ्यात्व में लीन बना रहता है। मित्यात्वकर्म करने से जो दर्शनमोहनीयकर्म का बंध होता है उसकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तरि कोड़ा-कोड़ी सागर तक की रहती है अर्थात सत्तरि कोड़ा-कोड़ी सागर तक वह

एक समय में बँधा हुआ कर्म फल देता रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक समय में बँधा हुआ कर्म अपनी स्थिति और अनुभाग के अनुसार फल दिया करता है। अतः उसी के अनुसार वह मिथ्यात्व सेवन किया करता है। यही कारण है कि जो पुरूष पूर्व जन्म में कुदेवादिकका श्रद्धान उनकी विनय और भक्ति करता है वह पुरूष अगले जन्म में भी उन्हीं कुदेवादिकों को श्रद्धान, उन्हीं की विनय, भक्ति और प्रशंसा करता है। यही समझकर तथा पाकर भव्य जीवों को यथाकाल अपने मिथ्यात्व का त्याग कर शास्त्रोक्तविधि के अनुसार सम्यग्दश्रन ग्रहण कर लेना चाहिये। मियित्व के संस्कार से ही बहुत से विद्वान शास्त्रों को पढ़कर भी उनके विपरीत चलते है।, अपने तीव्र मिथ्यात्व के उदय से शास्त्रोक्त कर्तव्यों को मिथ्या बतलाते है। पंचामृताभिषेक का निषेध करते हैं, व पुश्पपूजन, फलपूजन, दीपपूजन, धूपपूजन का निषेध करते हैं, पात्रदान का निष्शेध करते हैं, यहां तक कि आरती का भी निषेध करते हैं। ऐसे लोग परलोक में भी जाकर शास्त्रों का यथार्थ श्रद्धान नहीं कर सकते । इसक`सिवाय जो विधवाविवाह, विजातीय विवाह आदि दुष्कर्मों का प्रतिपादन करते हैं उन्हें तो तीव्र मिथ्यादृष्टि कहना ही चाहिए, इसेमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

घर गृहस्थी से रहित होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मृत्वा नरः स्याद् गृहादारहीनः ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य मरकर किस-किस पाप के करने से घर गृहस्थी से रहिता होता है ?

उत्तर- छित्वा गृहादिं मधुमक्षिकाणां,

वा पक्षिकाणां च रसं पिबन्ति ।

लोभात्परेषां च कलेवरं ये,

भवन्ति कौ ते गृहदारहीनाः ।।108।।

अर्थ- जो पुरूष मधु-मक्खियों के छत्ते तोड़ डालते हैं ओर उनके शहद को खा जाते है। अथवा बया आदि अनेक पक्षियों के घोंसले तोड़ देते हैं अथवा तीव्र लोभ के कारण उन पक्षियों के माँस खा जाते हैं ऐसे मनुष्य मरकर घर, स्त्री आदि सबसे रहित अकेले ही होते हैं।

भावार्थ- किसी भी पशु, पक्षी का घर बिगाड़ देना, उसको आश्रय हीन बना देना महापाप है। मधु-मक्खियों का छत्त तोऊने में तो अनेक मक्खियों की हिंसा होती है और अनेक मक्खियाँ बिना घरबार के आश्रय रहित हो जाती हैं तथा शहद का स्पर्श करने मात्र से उसमें रहने वाले अनंत जीव मर जाते हैं। इसी प्रकार किसी पशु, पक्षी को मार देना भी उसके कुटुंब को दुःखी करना है। इसीलिए जो मनुष्य इन जन्म में दूसरों का घरबार तोड़ता है वह मनुष्य मरकर अगले जन्म में घर गृहस्थी से रहित अकेला ही रहता है।

कीड़े मकोड़े पर्याय प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मृत्वा नरः स्यात्खलु कीटकः कौ ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पाप के करने से यह जीव मरकर कीड़े-मकोड़ो में उत्पनन होता है ?

उत्तर- रक्षा समित्या लघुप्राणिनां वा,

कृता न दृष्टा गुरूदेवमुद्रा ।

दीना न तुष्टा धनगर्वितैर्ये-

र्भवन्ति दुष्टा भुवि कीटकासते ।।109।।

अर्थ- जो पुरूष समितियो का पालन कर छोटे-छोटे प्राणियों की रक्षा नहीं करते हैं , देव-शास्त्र-गुरू के दर्शन करते हैं और धन मदसे

मदोन्मत्त होकर जो किसी भी दीन दरिद्र को संतुष्ट नही करते ऐसे मनुष्य मरकर इसी संसार में दुष्ट छोटे-छोटे कीड़े होते हैं।

भावार्थ- छोटे-छोटे कीड़े थोड़ा सा कारण मिलने पर योही मर जाते हैं, कोई पैर के ततले दबकर मार जाता है कोई लीद गोबर में दबकर मर जाता है, कोई मलमूत्र में दबकर व बहकर मर जाता है और केई पानी में बह कर मर जाता है। जो मनुष्य ऐसे छोटे-छोटै जीवों की रक्षा नहीं करते हैं भूमि को देखकर नहीं चलते हैं व देख शोधकर पदार्थों को न उठाते हैं, न रखते हैं, जो मलमूत्र भी देख शोधकर नहीं करते तथा अपने प्रमाद के कारण इन सब कामों में छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों का घात किया करते है। ऐसे मनुष्य मरकर अगले जन्म में छोटे-छोटे कीड़े होते हैं जिन्हे अन्य लोग दाबदूब कर मार देते हैं। इसी प्रकार जो जीव देव, शास्त्र, गुरू के दर्शन नहीं करते , न उनका उपदेश सुनते हैं और न उन पर श्रद्धा रखते हैं तथा जो दीन दरिद्री मनुष्यों को कभी संतुष्ट नहीं करते , कभी उनको भोजन तक दान में नहीं देते और सदाकाल धन के मद में उन्मत्त् रहते हैं ऐसे मनुष्य मरकर छोटे-छोटे कीडत्रे होते हैं यही समझकर छोटे-छोटे कीड़े मकोड़ों की रक्षा अवश्य करते रहना चाहिये और दीन-दरिद्रियों को कुछ न कुछ दान देकर अवश्य संतुष्ट करते रहना चाहिये।

शक्तिहीन होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

मृत्वा नरः स्याद्भुवि शक्तिहीनः ।।

अर्थ- हे भगवन् अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पाप के करने से मरकर अत्यंत शक्तिहीन होता हैं

उत्तर- स्वार्थाभिसिद्धयै स्वबलेन जन्तून,

हत्वा च भीतिं खलु दर्शयित्वा।

बद्धा सदा बन्दिगृहे जना यै-

मृत्वा खलास्ते च भवन्त्यशक्ताः ।।110।।

अर्थ- जो निदय्य मनुष्य अपने स्वार्थ की सिद्ध के लिए अपने बल से भय दिखलाकर दूसरे प्राणियों को मार देते हैं अथवा जो उनको बाँधकर बंदीगृह में डाल देते है। ऐसे दुष्ट मनुष्य मरकर परलोक में शक्तिहीन ही होते है।

भावार्थ- जो बलवान् पुरूष इस जन्म में शक्तिहीन मनुष्यों को दबाया करते हैं, अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए उन्हें बंदीगृह में डलवा देते हैं, उन्हें लूट लेते है।, उनका घरवार छीन लेते हैं, धन-धान्य छीन लेते हैं व समय पड़ने पर उन्हें मार भी देते हैं ऐसे मनुष्य मरकर परलोक में जाकर अत्यंत शक्तिहीन होते हैं तथा ऐसे शक्तिहीन होते हैं जिन्हें सब लोग दबा लें,ख् अनेक प्राकर के दुःख पहुँचावे, बंदीगृह में डलवा दें व मरवा दें। यही समझकर बलवान पुरूषों को कभी दीन दुखियों को नहीं सताना चाहए, किंतु जितनी बन सके उतनी उनकी सहायत करनी चाहिए।

सत्यकार्य करने पर भी धनादि की हानि होने का कारण बतलाते है-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च भवेद्धनादेः ।

सदा हि सत्कार्यकृतेऽपि हानिः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि श्रेष्ठ कार्यों के करने पर भी इस मनुष्य के धन की हानि किस कारण से होती है।

उत्तर- दानादिपूजां न जपं तपो हि,

कृत्वा न र्धं भुवि केवलं यः ।

धनार्जने स्यान्निरतश्र तस्य,

हानिः सुसत्कार्यकृते धनादेः ।।112।।

अर्थ- जो पुरूष दान, पूजा, जप, तप व अन्य धार्मिक कार्यों को

कभी नहीं करता है केवल धनसंचय करने में सदाकाल तल्लीन रहता है ऐसा पुरूष परलोक में जाकर यदि श्रेष्ठकार्य भी करता है तो भी उसके धनादिक की हानि होती है।

भावार्थ- धनसंचय करने के साथ इस मनुष्य को धर्मकार्य भी अवश्य करते रहना चाहिए। भगवान् जिनेन्द्रदेव की पूजा, मुनियों की वैयावृत्य और स्वाध्याय करना आदि प्रत्येक दिन के करने योग्य धर्मकार्य हैं। इन कार्यों में प्रतयेक मनुष्य को कुछ न कुछ द्रव्य अवश्य खर्च करना चाहिये। कमाये हुए धन में से चैथाई भाग या दशवां भाग धर्मकार्य में अवश्य खर्च कर देना चाहिये। इन कायी के सिवाय तीथर्यात्रा, गुरूदर्शन, गुरूसेवा आदि भी धर्मार्य हैं इनमें भी यथाशक्ति खर्च करना प्रतयेक गृहस्थ का कर्तव्य है। धन कमाने में पापकर्म का बंध होता ही है। यदि उस धन को किसी भी धर्म कार्य में न लगाया जाय तो फिर पाप ही पाप बना रहता है अर्थात् उस धन को धर्मकार्य में लगाने से जो पुण्य की प्रापित होनी चाहिए वह नहीं होती। यही कारण है कि अगले जन्म में जाकर उस पापकर्म के उदय से श्रेष्ठकार्यों के करने पर भी उसके धनादिककी हानि बराबर होती रहती है। यही समझकर धर्मकार्य में आलस कभी नहीं करना चाहिये।

अनावृष्टि अर्थात वर्षा न होने का कारण दिखलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

काले हि काले न भवेत्सुवृष्टिः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप के करने से समय-समय पर अच्छी वर्षा नहीं होती ?

उत्तर- न धार्मिका वा मुनयो न यत्र,

न देवपूजा न च पात्रदानम् ।

दुष्टा जना यत्र वसन्ति तत्र,

वृष्टिर्न शान्तिश्र भवेत्कदापि ।।113।।

अर्थ- जिस देश में न तो धार्मिक पुरूष रहते हे।, न मुनि जन रहते हैं, जहाँ पर न देव पूजा होती है और न पात्रदान होता है तथा जहाँ पर दुष्ट अधार्मिक लोग ही निवास करते है। ऐसे देश में वृष्टि और शांति कभी नहीं होती है।

भावार्थ- जिस देश में धर्मात्मा और पुण्यवान् जीव आकर जन्म लेते हैं, जहाँ पर प्रतिदिन देवपूजा होती रहती है, विधिपूर्वक अभिषेक होता रहता है, नैमित्तिक विधिविधान होते रहते है। व प्रतिष्ठादिक कार्य होते रहते हैं, जहाँ पर वीतराग निर्ग्रंथ मुनिराज भी आकर निवास करते हैं, जहाँ पर मुनियों को प्रतिदिन आहारदान दिया जाता है, उनका उपदेश सुना जाता है, उनकी सेवा की जाती है, जहाँ पर समय-समय पर रथोत्सव आदि के द्वारा धर्मप्रभावाना होती है अथवा जहाँ पर समय-समय पर श्रावकों को आहरदानादिक देकर समदत्तिका प्रचार किया जाता है, ऐसे देशों में सदाकाल समयानुसार वर्षा हुआ करती हैं परंतु जहाँ पर ये ऊपर लिखे कार्य नहीं होते और जहाँ पर दुष्ट लोग ही निवास करते हैं ऐसे देश में न तो समयानुसार वृष्टि होती है और न ह कभी शांति ही रहती है।

पुण्य कार्य करने वाले के साथ वैर विरोध करने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।

सुपुण्यकर्तुश्र वरैविर्रिरोधः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप के करने से जीव पुण्यवान् मनुष्यों के साथ व पुण्यकार्य करने वाले मनुष्यों के साथ वैर विरोध करता है ?

उत्तर- पूर्वं मिथो वैरविरोधकर्तुः ,

सङ्.ग कृतो येन खलादिसेवा ।

तस्यैव संस्कारवशात्समं सः,

करोति वैरं शुभकृत्यकर्तुः ।।114।।

अर्थ- जो मनुष्य पहले जन्म में वैर विरोध करने वालों की संगति करते हैं व दुष्ट लोगों की सेवा करते हैं ऐसे मनुष्य परलोक में जाकर पहे जन्म के संस्कार के निमित्त से पुण्य कार्य करने वालों के साथ भी वैर विरोध किया करते हैं।

भावार्थ- किसी के साथ वैर विरोध करना पाप का कारण है। फिर भला पुण्यकार्य करने वाले के साथ वैर विरोध करना तो और भी अधिक पाप कका कारण है। जो पुरूष बिना कारण वैर विरोध करने वालों की संगति किया करते हैं, उनके देखा-देखी सज्जनों के साथ वैर विरोध किया करते है। व दुष्ट लोगों की संगति करते हैं, उनकी सेवा करते है।, अथवा श्रेष्ठधर्म का विरोध किया करते हैं ऐसे मनुष्य परलोक में भी अपने वैर विरोध के संस्कार को साथ ले जाते हैं। फिर वहां उस संस्कार के निमित्त से पुण्यकार्य करने वालों के साथ भी वैर विरोध किया करते हैं। यही समझकर दुष्ट लोगों की और वैर विरोध करने वालों की संगति भी कभी नहीं करनी चाहिये।

विपरीत बुद्धि हो जाने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च भवेन्नराणां ।

विनाशकाले विरीतबुद्धि ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पाप के करने से मनुष्यों की बुद्धि विनाश होने के समय विपरीत रूप परिणत हो जाती है ?

उत्तर- कालोतिबुद्धेः सुखशान्तिदात्रया-

नाशाय यत्नो हि कृतश्र येन ।

तस्यैव हानिश्र सदापमानो,

विनाशकाले विपरीतबुद्धि ।।115।।

अर्थ- पुण्यवान् और बुद्धिमान् पुरूषां की बुद्धि सुख और शांति उत्पनन् करने वाली होती है और समयानुसर उत्पनन् हो जाती है।, परंतु जो पुरूष उस श्रेष्ठ बुद्धि को भी नाश करने के लिये प्रयतन् करता है, उस मनुष्य की सदा हानि होती रहती है, सदा अपमान होता रहता है और सदा विनाश होने के समय उसकी बुद्धि अवश्य ही विपरीतरूप परिणत हो जाती है।

भावार्थ- किसी की श्रेष्ठ बुद्धि नाश करना उसके आत्मा की निर्मलता का घात करना है, क्योंकि बुद्धि व ज्ञान ही आत्मा का एक ऐसा प्रगट होने वाला गुण है जो आत्मा का चिह्न माना जाता है। ज्ञान से ही आत्मा का अस्तित्व मानना पड़ता है। ऐसे ज्ञान का व ऐसी श्रेष्ठबुद्धि का नाश कर देना उस आत्मा की उच्चता, निर्मलता व उत्तमता का नाश कर देना है और इस प्रकार आत्मा की निर्मलता का नाश कर देना महापाप का कारण है। इसी पाप के उदय से जब यह आत्मा परलोक में जाकर उत्पनन् होता है तब स्थन-स्थान पर उसकी हानि होती है और उसका नाश होने के लिए उसकी बुद्धि विपरीत व भ्रष्ट हो जाती है। जिससे कि वह अनेक अन्याय और अनर्थ करता हुआ नरक निगोद का पात्र हो जाता है। यही समझकर किसी की बुद्धि भ्रष्ट करने का प्रयतन् नहीं करना चाहए। यदि किसी की बुद्धि विपरीत हो गई हो तो समझाा बुझााकर उसको बदलने का प्रयतन् करना चाहिये तथा उसे मोक्षमार्ग में लगाने का प्रयतन् करना चाहिए।

इस अध्याय के पठन-पाठन का अभिप्राया दिखलाते हैं-

उत्तर- ज्ञात्वेति निन्द्य विषमव्यथादं,

त्यक्त्वापि कुर्वन्त्वशुीोपयोगम् ।

शुभेपयोगेऽक्षसुखादिमूले

व्रत्तिं च शुद्धे हि यतस्व गन्तुम् ।।116।।

अर्थ- इन सब विषयों को अच्छे प्रकार से पठन-पाठन कर भव्य जीवों को अत्यंत निंदनीय और अत्यंत दुःख देने वाले अशुभोपयोग का त्याग कर देना चाहिये तथा इन्द्रियजनय सुखों के मूल कारण भूत शुभोपयोग में अपना मन लगाना चाहिये और अंत में शुद्धोपयोग प्राप्त करने के लिये प्रयतन करना चाहिये।

भावार्थ- इस अध्याय में जो कुछ वर्णन किया है उससे यह सिद्ध हो जाता है कि पापकर्म करने से अशुभपयोग होता है, तथा अशुभपयोग होने से फिर पापकमी का बुध होता है। इसे प्रकार एक बाकर के अशुभोपयोग से भी पापों की परंपरा बराबर चलती रहती है और उन पापों के कारण इस जीव को नरक-निगोदादिक के महादुःख भोगने पड़ते हैं इसीलिये भव्यजीवों को सबसे पहले इस अशुभोपयोग का त्यागर करना चाहिये। समस्त दुःखों का मूल कारण यह अशुभोपयोग ही हैं इसका त्याग किये बिना आत्मा का कल्याण कभी नहीं हो सकता। तथा आत्मा का कल्याण करना प्रत्येक जीव के लिये परमावश्यक है। अतएव अशुभोपयोग का त्याग कर शुभोपयोग धारण करना चाहिए और शुद्धोपयोग प्रापत करने के लिए सदाकाल प्रयतन करते रहना चाहिए, क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति शुद्धोपयोग से हही होती है।

समस्त अध्याय का सार बतलाते हैं-

मतिः स्याद् यादृशी यस्य तस्य स्यात्तादृशी गतिः ।

यदर्थे यस्य भावोऽस्ति प्रायस्तल्लुभते हि सः ।।117।।

अर्थ- जिस मनुष्य की जैसी बुद्धि होती है उस मनुष्य की गति भी वैसी ही होती हैं। तथा जिस मनुष्य का भाव जिस पदार्थ के लिए होता है

उस मनुष्य को वह पदार्थ अवश्य प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ- संसार में जितने पुण्य व पाप हैं वे सब अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार होते हैं। यदि बुद्धि भ्रष्ट होती है व पापरूप होती है तो उस जीव से सदाकाल पाप होते रहते हैं, यदि जिस किसी की बुद्धि सरल और यर्थाा होती है वह मनपुष्य पापों से बचता हुआ सदाकाल पुण्यकार्य ही करता रहता है। इसीलिए आचार्य महराजने कहा है कि जिसकी जैसी बुद्धि होती है उसको वैसी ही गति प्रापत होती है। वहां पर गतिशब्द का अर्थ पुण्य-पापरूप है। अथवा पुण्य से स्वर्गादिक गति प्राप्त होती है और पाप नरकादिक गति प्राप्त होती है। अथवा जिस किसी मनुष्य के भाव जिस पदार्थ के लिए होता है प्रायः वह पदार्थ प्रयतन करने पर उसको मिल जाता है। जो मनुष्य मोक्ष् की इच्छा रखकर मोक्ष के लिए प्रयतन करता है उसको दस पाँच भव में मोक्ष की प्राप्ति हो ही जाती है। जब प्रयतन करने से मोक्ष् की प्राप्ति हो जाती है तब फिर संसारी पदार्थ की तो बात ही क्या है? अर्थात् प्रयतन करने पर संसारी पदार्थ भी प्राप्त हो ही जाते हे। यही समझकर भव्य जीवों को सदाकाल मोक्ष के लिए ही प्रयतन करते रहना चाहिए।

भवों की दुष्टता और चित्त के विकारों का कारण बतलाते हैं-

पुर्वसंस्कारतो भावे दुष्टानां सड्.गदोषतः ।

दुष्टता विकृतितिश्रित्ते दुःखदा जायते नृणाम ।।118।।

अर्थ- मनुष्यों के भावों में जो दुःख देने वाली दुष्टता आती है वह पूर्वजन्म के संस्कारों के निमित्त आती है तथा मनुष्यों का दुःख देने वाले जो विकार उत्पनन होते हैं वे दुष्ट जीवों के संगति के दोष से उत्पनन होते हैं।

भावार्थ- पहले जन्म में इस मनुष्य के जैसे संसकार होते हैं अगले भव में जाकर उसके परिणाम वैसे ही हो जाते हैं। जिसके परिणाम मोक्षमार्ग में लग जाते हैं तथा उन परिणामों के निमित्त से जो मोक्षमार्ग के

लिए प्रयतन् करता रहता है उस संस्कार के निमित्त से वह अगले जन्म में भी मोक्षमार्ग में लगा रहता है तथा जो व्यसनों में व किसी अन्य कुमार्ग में लग जाता है वह उन संस्कारों के निमित्त से अगले जन्मे में भी कुमार्ग व व्यसनों में ी लगा रहात है। इससे सिद्ध होता है कि परिणामों के होने से पहले जन्म के संस्कार ही कारण पड़ते हैं कमठ का जीव व्यसन में पड़ गया था इसलिये उसका वह संस्कार कितने ही जन्म तब बना रहा था तथा उसके भाई के जीव किसी व्यसन में न पड़कर मोक्षमार्ग में लग गया थाख् इसलिये उसेने अंत में जाकर मोक्ष की प्राप्ति कर ही ली थी। यही समझकर भव्य जीवों को अपने परिणाम और कर्तव्य सदा श्रेष्ठ पुण्यरूप कायी में व मोक्षमार्ग में ही लगाना चाहिये। अन्य व्यसन व कुर्मा से सदा बचते रहना चाहिये, क्योंकि व्यसन व कुमार्ग में पड़ने से द1ष्ट पुरूषों की संगति करनी पड़ती है। तथा दुष्ट पुरूषों की संगति से सदाकाल ह्रदय में विकार उत्पनन् होते हैं । उन विकारों से पाप उत्पनन् होते हैं और उन पापों से नरकादिक दुर्गतियों प्रापत होती है। । इसीलिये उन नरकादिक दुर्गतियों से बचने के लिये दुष्टां की संगति सर्वथा छोड़ देनी चाहिये। आत्म कल्याण का यही सबसे उत्तम मार्ग है।

इस अध्याय का उपंसहार करते हैं-

तदनुसारतो ग्रन्थे वर्णितं ह्यशुभं फलम् ।

कस्यापि निन्दर्नाा न न तिरस्कारहेतवे ।।119।।

सर्वप्राणिहितार्थं हि शुद्धचिद्रूपूर्तिना ।

धीमता स्वात्मतुष्न कुंथुसागरसूरिणा ।। 120।।

अर्थ- शुद्ध चैतन्य की मूर्ति, अत्यंत बुद्धिमान ओर अपने आत्मा में संतुष्ट रहने वाले आचार्य श्री कुंथुसागर स्वामीने ऊपर कहे हुए कथन के अनुसार अशुभोपयोग का अशुभ फल वर्णन किया है। यह अशुभोपयोग का अशुभ फल न तो किसी की निंदा करने के लिए लिखा गया है, और न किसी का तिरस्कार करने के लिए लिख्ाा गया है, किंतु समस्त प्राणिं

का हित करने के लिए लिखा गया है।

भावार्थ- इस ग्रंथ का पठन-पाठन व इसका स्वाध्याय कर भवजीव अपने अशुभयोगों का त्याग कर दें और शुभोपयोग धारण कर मोक्षमार्ग में लग जायें इसी हेतु से यह ग्रंथ लिखा है।

इति आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागरविरचिते भावत्रयफलप्रदर्शी

नाम ग्रंथे अशुभोपयोगफलवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

इस प्राकर आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागर विरचित भावत्रयफलप्रदर्शी नाम के ग्रंथ की 'धर्मरतन' पं0 लालाराम शा.ी विरचित हिंदी भाषा टीका में अशुभोपयोग के फल को वर्णन करने वाला यह पहला अध्याय समाप्त हुआ।

दूसरा अध्याय

शुभोपयोग का फल

सुखप्रदं दुःखहरं किलेष्टं,

नत्वा मुदा पन्चगुरूं यथावत् ।

शुीोपयोगस्य फलस्वरूपं,

सर्वात्मशान्त्यै कथयामि भक्त्या ।।121।।

अर्थ- अब मैं समस्त जीवों को सुख्ा देने वाले तथा सबके दुःखों को दूर करने वाले ऐसे अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठीी विधिपूर्वक भक्ति के साथ नमस्कार करता हूं । फिर समस्त जीवों को शांति प्राप्त कराने के लिए शाुभोपयोग के फल का निरूपण करता हूँ।

सुपुत्रों की प्राप्ति का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च सुपूत्रलाभाः ।

भवन्ति नृणां वद देव ! लोके ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्य कार्य के करने से इस लोक में मनुष्यों को सुपुत्रों की प्राप्ति होती है?

उत्तर- कुमार्गलग्रान् हि परस्य पुत्रान्,

युक्त्या विबोद्धयैव पुरा सुमार्गे ।

सेवादिकार्ये ह्ययुनक् सुसाधो-

र्मातुः स भव्यो लभते सुपुत्रान् ।।122।।

अर्थ- जा`मनुष्य पहले जन्म में कुमार्ग में चलने वाले दूसरे के पुत्रों को युक्तपूर्वक समझाकार सुमार्ग में लगा देता है तथा सज्जनों की माता-

पिता कीसेवा में लका देता है ऐसा भव्य जीव दूसरे जन्म में जाकर श्रेष्ठ पुत्रों को प्रापत करता है।

भावार्थ- दूसरों की संतान को सुशिक्षा देना, उनको धर्म मार्ग में लगाना, उनकी आत्मा को कल्याण में लगा देना, पुण्य का कार्य है। जो पुत्र बालकपन में धर्मशिक्षा ग्रहण कर लेते हैं वे फिर धर्म मार्ग में च्युत नहीं होते। यही कारण है कि आचार्यी ने बालकों के लिये सबसे पहले धर्मशास्त्रों के पढ़ने का आदेश दिया है। जो पुरूष अपने व दूसरों के पुत्रों को सबसे पहले धर्मशिक्षा देता है, उनको कुर्मा में जाने से रोकता है और सुमार्ग में लगाता है ऐसे भव्य जीव को अगले जन्म में श्रेष्ठ और सुयोग्य पुत्रों की प्राप्ति होती हैं

सुयोग्य और धार्मिक पति के प्रापत होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च् वद प्रीाो ! मे ।

धर्मानुकूलं लभते पतिं स्त्रीः ।।

अर्थ- हे देव! ब कुपाकर यह बतलाइये कि किस पुण्य कार्य के करने से स्त्रियों को धर्मानुकूल पति प्राप्त होता हे ?

उत्तर- दानादिधर्मे सततं निमग्रं,

पुराभवे या पुरूशें विलोक्य ।

तुष्येद् दयार्द्राखिल दीननाथं,

श्रेष्ठं पतिं सा लभते गुणज्ञम् ।।113।।

अर्थ- जो दयालु स्त्री पहले भव में देवपूजा, पात्रदान आदि धर्मकार्य में निमग्र रहने वाले पुरूषों को देखकर संतुष्ट होती है वह स्त्री अगले जन्म में अनेक दीनों की रक्षा करे वाले, गुणी और श्रेष्ठ ऐसे उत्तम पति को प्राप्त होती है।

भावार्थ- जिसके हृदय में धर्मप्रेम होता है वही जीव धर्मात्माओं को

गुण है और वह सम्यग्यदर्शन का एक अंग हं इसीलिये सम्यग्दृष्टि जीव ही धर्मात्माओं को देखकर प्रसनन हो सकता है। जो स्त्रीऐसे सम्यग्दर्शन को धारण करती है, वीतराग निर्ग्रंथ मुनियों के दर्शन कर अत्यंत प्रसनन होती है जो देवपूजा व पात्रदान करना अपना कर्तव्य समझती है और धर्म की रक्षा करने के लिये धर्मात्माओं की सहायता करती रहती ळै, उनको देखकर उनके धर्म प्रेम से प्रसनन होती है ऐसी स्त्री परलोक में जाकर अनेक गुणों से सुशोभित धर्मात्मा श्रेष्ठपति पाती है।

सुपुत्री प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कसमाच्च पुण्याच्च वद प्रीाो ! मे ।

लाभः सुतायाः भवति ह्यमुत्रे ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पुण्यकर्म के करने से परलोक में जाकर श्रेष्ठ पुत्री प्राप्त होती है ?

उत्तर- दानार्चनादौ च सदा निमग्रां,

पुत्री सुशीलां च परस्य दृष्ट्वा ।

योऽप्रीणयच्छिक्षणदत्तचित्तं,

सीतासमानां लभते स पुत्रीम् ।।124।।

अर्थ- जा पुरूष दान, पूजा आदि श्रेष्ठ कार्यों मे तल्लीन रहने वाली, सुशील और पढ़ने लिखने में चित्त लगाने वाला दूसरों की पुत्री को देखकर प्रसनन होता है वह पुरूष परलोक में जाकर सीता के समान सुपुत्री प्राप्त करता है।

भावार्थ- जिस प्रकार राजा जनक के सीता पुत्री हुइ थी जो सीता अत्यंत पतिव्रता थी, पति की भक्ति करने वाली थी और जिसका नाम आज तक प्रसिद्ध है ऐसी पुत्री भी बड़े भाग्य से उत्पनन होती है। जो पुत्री इस जन्म में प्रतिदि भगवान् जिनेन्द्रदेव की पूजा करती है, दान देते है,

संयम पालन करती है, व्रत उपवास करती है, तथाा धार्मिकग्रंथों का स्वाध्याय करती रहती है जो पुत्री कुत्सित नाटक उपन्यास, काव्य, कथा-कहानी आदि की पुस्तकों को भी कभी नहीं पढ़ती है सदाकाल पुण्यवान् मोक्षगामी महापुरूषों की कथा या अन्य धर्मशास्त्रों को पढ़ती रहती है तथा अन्य अनेक धर्मकार्य भी किया करती है ऐसी पुत्री भी परलोक में जाकर सीता के समान श्रेष्ठ पुत्री होती है तथा जो पुरूष ऐसी सुपुत्रियों को देखकर प्रसनन हुआ करते हैं वे पुरूष भी परलोक में ऐसी सुपुत्रियों को प्रापत करते हैं।

श्रेष्ठ पत्नि प्रापत होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रीाो ! मे।

नरः सुीार्यां लभते मनोज्ञाम् ।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पुण्यकार्य के करने से इस मनुष्य को श्रेष्ठ पतिन प्राप्त होती है ?

उत्तर- कृत्वा पुरा शीलवतिप्रशंसां,

दानार्चनादौ सुखदे सुलग्राम् ।

दृष्ट्वा ह्यतुष्यद्विनयान्वितां स्त्रीं,

श्रेष्ठां स भव्यो लभते सुशीलाम् ।।125।।

अर्थ- जो पुरूष पहले जन्म में शीलवती स्त्रियसों की प्रशंसा करके सुतुष्ट होता है अथवा दानपूजा आदि सुख देने वाले कार्यों में सदाकाल लग्र रहने वाली और अत्यंत विनयवती स्त्री को देखकर जो सुतुष्ट होता है ऐसे भव्य पुरूश को श्रेष्ठ और सुशील स्त्री प्राप्त होती है।

भावार्थ- शीलवती स्त्रियों की प्रशंसा करना, उनको देखकर प्रसनन होना, उनके शीलगुण की प्रशंसा फैलाना आदि कार्यों के करने से शील पालन करने की दृढ़ता होती है। यहाँ परयह भी समझ लेना चाहिये कि

जो मनुष्य स्वयं शीलवाना होता है, वही पुरूष शीलवती स्त्रियों की प्रशंसा किया करता है, और वही पुरूष धर्मकार्यों में लीन रहने वाली और पति की विनय करने वाली पतिव्रता स्त्रियों को देखकर प्रसनन् हुआ करता है। जो पुरूष स्वयं शील पालन नहीं करता वह कुशील पुरूष तो कुशीला स्त्रियों को देखकर प्रसनन् होता है तथा वह कुशील पुरूष शीलवती स्त्रियों से द्वेष रखता है, कुशील पुरूष सदाकाल कुशील को बढ़ाने का प्रयतन् किया करता है इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि शीलवान् पुरूष ही शीलवती सि.यों की प्रशंसा करता है धर्म पालन करने वाली पतिव्रता स्त्रियों को देखन प्रसनन् होता है और ऐसे भव्य पुरूष को ही परलोक में जाकर पतिव्रता श्रेष्ठपतिन् प्राप्त होी है।

यशस्वी होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माच्च पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

सुकीतिन्युक्तो भवतीह जीवः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पुण्य कार्य के करने से यह जीव इस संसार में यशस्वी होता है।

उत्तर- तीर्थकराणां गुणकीर्तनाद्वा,

सुधार्मिकाणां गुरूसेवया वा ।

सन्मानसत्कारविधेर्विशेषात्,

जीवो यशस्वी भवतीह विश्वे ।।126।।

अर्थ- जो पुरूष्ज्ञ तीर्थकरों के गुणवणन करता है, धर्मात्मा पुरूषो काविशेष्ज्ञ आदर सत्कार करता है और वीतराग न्र्रिंथ गुरू की सेवा करता है ऐसा पुरूष इस संसार भर में यशस्वी हो जाता है।

भावार्थ- संसार में यशस्वी होना, व कीर्तिमान् होना बड़े पुण्यकर्म के उदय से हुआ करता है। यशस्वी होने योग्य पुण्यकर्म तीथंकर परमदेव

के गुणवर्णन करने से उनकी स्तुति करने से उनकी पूजा करने से बध को प्राप्त होता है। जहाँ तीर्थंकर परमदेव जन्म लेते हैं वहाँ परउनके गर्भ मे आने से छह महने पहलेसे ही इंद्र की आज्ञा से कुबेर प्रतिदिन तीनों समय रतनें की वर्षा किया करता है तथा उसी समय से देव-देतियां आकर माता पिता की सेवा किया करती हैं । जन्म लेते ही इन्द्र अपनी सब विभूति केसा थ आता है और भगवान को मेरू पर्वत पर ले जाकर क्षीरसमुद्र के जलसे उनका अभिषेक करता है। यह कितने बड़े पुण्यकर्म की महिमा है। जो लौकांतिक देव अपने स्थान से कभी बाहर नहीं आते वे भी तीर्थंकर परमदेव के विरक्त होने पर आकर भगवान की स्तुति करते हैं। तथा केवल ज्ञान के समय स्वयं इन्द्र आकर समवसरण की रचना कराता है साथ ही प्रातिहार्य आदि की विभूति प्रगट होती है। यह सब उन तीर्थंकर परमदेव के अपपार पुण्य की महिमा है। ऐसे तीर्थंकर परमदेव की भक्त-स्तुति करने वाला पुरूष अवश्य ही यशस्वी होता है इसी प्रकार वीतराग निर्ग्रंथ गरू भी महातपस्ती होते ळें, इन्द्र आदि देव भी उनकी सेवा किया करते हैं। उन गुरूओं की सेवा करना, उनकी स्तुति करना, उनकी वैयावृत्या करना आदि सब कीर्ति फैलने का कारण हैं तथा धर्मात्मा पुरूशों का आदर सत्कार करना, उनकी सेवा भक्ति करना आदि भी यशा बए.ाने वाला हैं जो पुरूष इन सब कार्यों को करता है, श्रुतभक्ति ओर आचार्य भक्ति करता है तथा धर्मप्रभावना करता है उस पुरूष का यश समस्त संसार में फैल जाता है। तथा उनका वह यश चिरकाल तक बना रहता है।

सुख देने वाले कुटुंब की प्राप्ति का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

सुखप्रदं ना लभते कुटुम्बम् ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्य कार्य के करने से इस जीव को सुख देने वाला कुटुंब प्राप्त होता है ?

उत्तर- यो यस्य कस्यापि कुटुम्बिनः कौ,

कृत्वा मिथो वैरविरोधशांतिम् ।

दत्वा धनादिं सुखिनं च तुष्येत,

प्राप्नोति योग्यं सुखदं कुटुम्बम् ।।127।।

अर्थ- जो पुरूष किसी भी कुटुंब के परस्पर होने वाले वैर विरोध को शांत कर देता है व किसी दुःखी कुटुंब को धनादिक देकर संतुष्ट करता है अथवा किसी सुखी कुटुंब को देखकर संतुष्ट होता है ऐसा पुरूष परलोक में जाकर योग्य और सुख देने वाले कुटुंब को प्रापत होता है।

भावार्थ- योग्य और सुख देने वाले कुटुंब के प्राप्त होने से यह जीव सुखी रहता है। यदि संतान व भाईबंधु अथवा स्त्री आदि कोइ भी अपने कुटुंब में अयोग्या होता है तो उसके निमित्त से सब घर व कुटुंब दुखी रहता है। दुखी होने पर प्रायः धार्मिक क्रियाएँ भी छूट जाती हैं। यदि वही कुटुंब योग्य होता है तो घरभर को सुख मिलता हैऔश्र सुखी होने से धार्मिक क्रियाएँ भी बिना किसी विघन के पूर्ण हो जाती हैं। इसलिये योग्य और सुख देने वाले कुटुंब का मिलना भी पुण्यकर्म से प्रापत होता है। जो पुरूष दूसरों को योग्य बनाता रहता है, उनके परस्पर के वैर विरोध को शांत करता रहता है, धार्मिक शिक्षा देता रहता है, धर्मातमा पुरूषों को धन वस्त्र आदि देकर सुखीन बनाता है, तथा ऐसे सुखी धर्मात्माओं को दुखकर संतुष्ट होता है, जो धर्मात्मा पुरूषों की सब प्रकार से सहायता करता रहता है, ऐसे पुरूष को परलोक में जाकर अवश्य ही सुयोग्य कुटुंब प्राप्त होता है।

संयमी होने कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च् वद प्रभो ! मे ।

सुसंयमी कौ भवतीह जीवः ।।

अर्थ- हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह जीव इस संसार में अइा पुण्यकार्य के करने यह जीव इस

संसार में आकर संयम को धारण करता है उत्तर- यो वागतो देवगतेश्र मातुः,

पितुः कृता भक्तिवशात्सुसेवा ।

सत्सड्.गतिर्येन शिवप्रदा हि,

स संयमी स्याद् गुणदोषवेदी ।।128।।

अर्थ- जो जीव देवगति से आता है, भक्तिपूर्वक माता-पिता की सेवा करता है, और मोक्ष देने वाले धर्मात्मा सज्जनों की संगति करता है ऐसा गुण और दोषों को जाननेवाला पुरूष्ज्ञ अवश्य ही संयम धारण कर संयमी होता है।

भावार्थ- संयम धारण करना मोक्ष का कारण है, और इसीलिए ऐसा यह संयम बहुत बड़े पुण्यकर्म क उदय से प्रापत होता है। पांचों इंद्रिय और मन कोवश करना इंद्रिय संयम हैतथा छहों कार्य के जीवों कीी रक्षा करना प्राातिसंयम है। यह संयम सज्जाति मेंं उत्पनन होने वाले उत्तम मनुष्यों को ही प्राप्ता होता है, और इसीलिए यह बहुत अधिक पुण्यकर्म के उदय से प्राप्त होता है। जो जीव पहले जन्म में भगवान् अरहंतदेव की भक्ति करते है।, उनकी पूजा करते हैं, वीतराग निर्ग्रंथ मुनियों को दान देते हैं, श्रावक धर्म को पालन कर मुनिव्रत धारण करते हैं और फिर तपश्रण कर देवगति को प्रापत होते हैं ऐसे जीव स्वर्ग से आकर उमम मनुष्य को संयम धारण कर मोक्ष प्रापत करते हैं इसके सिवाय माता पिता की सेवा करना, वीतराग कगुरूओं की सेवा करना, धर्मात्माओं के साथ रहना और सदाकाल धर्मकार्य करते रहना भी देवगति के कारण हैं तथा इस प्रकार देवगति प्राप्त करने वाले जीव भी उमम मनुष्य होकर संयम धारण कर लेते हैं।

शोकरहित सुखी होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रीाो! मे ।

शोकेन मुक्तश्र सदा सुखी स्यात् ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाये कि किस-किस पुण्यकार्य करने से यह जीव शोक रहित सुखी होता है ?

उत्तर- बिम्बप्रतिष्ठां गुरूदेवसेवां,

विलोक्य तुष्येज्जिनधर्मवृद्धिम् ।

धर्मोत्सवं धार्मिकजीवलोकान् ।

स शोकमुक्तश्र सदा सुखी स्यात् ।।129।।

अर्थ- जो धर्मात्मा मनुष्य बिम्ब प्रतिष्ठा को देखकर प्रसनन होता है। देव-धर्म-गुरू की पूजा, भक्ति, सेवा आदि को देखकर प्रसनन होता है, जिन धर्म की वृद्धि और अनेक धर्मोत्सवों को देखकर तथा धर्मात्का लोगां को देखकर प्रसनन होता है ऐसा मनुष्य परलोक में जाकर शोक से रहित होकर सदाकाल सुखी रहता है।

भावार्थ- दुखःशोक आदि की प्रापित पापकर्म के उदय से होती है तथा पापकर्मों का नाश, धर्मकार्यों के करने से होता है। ीागवान् जिनेन्द्रदेव की पूजा करना, जिनालय बनवाना, जिनप्रतिमा बनावाना, उनकी प्रतिष्ठा करना, व दूसरों के द्वारा कराई हुई प्रतिष्ठाओं को देखना, पात्रदान देना, गुरूसेवा करना, जिनधर्म का उपदेश देकर जिनधर्म की वृद्धि करना, अन्यमतों का खंडन कर अपने जिनधर्म की प्रीाावना करना, रथेत्सव करना-कराना व देखना, धर्मात्मा पुरूषों को दान देना, उनके स्वाध्याय आदि का प्रबध कर देना, जैनगंथों को लिखाकर देना, स्वाध्यायशाला बनवाना, तीथ्र्यात्रा करना आदि सब धर्मकार्य हैं इनके करने से पापकर्मों का नाश होता है, तथा पुण्यकर्मों की प्राप्ति होती हैं इस प्रकार पापकर्मे। केनाश हो जाने से यह जीव अगले जन्म में शोक रहित हो जाता है और उस पुण्यकर्म का उदय होने से सदाकाल सुखी रहता है। यही समझकर भव्यजीवों को सदाकाल अपना समय धर्मकार्यों में ही व्यतीत करते रहना

चाहिए।

यह जीव अनेक जीवों का स्वामी किस कारण से होता है यही दिखलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

स्वामी भवेन्ना बहुजीवकानाम् ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पुण्यकार्य के करने से अनेक जीवों का स्वामी होता हैं

उत्तर- देवस्य धर्मस्य गुरोश्र सेवां,

यो धार्मिकाणां विनयं च कृत्वा ।

दीनाय दत्वैव गृहान्नवस्त्रं,

तुष्येत्स मृत्वा बहुजीवकर्ता ।।130।।

अर्थ- जो पुरूष देव-शास्त्र-गुरू और धर्म की सेवा करके संतुष्ट होता है, **अथवा** जो धर्मात्मा पुरूषों का आदि-सत्कार व उनकी विनय कर संतुष्ट होता है और जो धनहीन धर्मात्माओं को घर, अनन, वस्त्र आदि देकर संतष्ट होता है ऐसा पुरूष मरकर अनेक जीवों का स्वामी होता है।

भावाथ्र- इस संसार में राजा-महाराजा व बड़े-बड़े सेठ लोग ही अनेक जीवों के स्वामी होते हैं और ऐसे महापुरूष श्रेष्ठ पुण्यकर्म से ही होते हैं। इस संसार में सबसे श्रेष्ठ पुण्यकर्म है भगवान जिनेन्द्रदेव की सेवाभक्ति करना है। इसका भी कारण यह है कि भगवान जिनेन्द्रदेव सर्वोत्कृष्ट देव हैं, इन्द्रादिक देव भी सदाकाल उनकी सेवा किया करते हैं। यद्यपि वे जिनन्द्रदेव वीतराग हैं तथापि उनके शुद्ध आत्मा के प्रभाव से सेवाभक्ति करने वाले पुरूष के परिणाम भी शुद्ध हो जाते हैं। उन शुद्ध परिणामों के निमित्त से वह जीव श्रेष्ठ पुण्यकर्मों का बंध कर लेता है और उस पुण्यकर्म के उदय से राजा-महाराजा होकर अनेक जीवों का स्वामी

होता है। अथवा जो पुरूष्ज्ञ धर्मात्मा पुरूषों को अनेक प्रकार के दान देता है वह भी परलोक में जाकर अनेक जीवों का स्वामी होता है। यही समझकर प्रत्येक भव्य जीव को प्रतिदिन भगवान जिनेन्द्रदेव की पूजा करनी चाहिये और मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका आदि समस्त भव्य जीवों को यथोचित दान देना चाहिए। इस संसार में पात्रों को दान देना ही भूरि संपत्तिका कारण है।

निरोग शरीर प्रापत होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

नीरोगदेहं लभते मनुष्यः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि इस मनुष्य को किस-सि कारण से निरोग शरीर प्राप्त होता है।

उत्तर- सरोगिपात्राय किलौषधान्नं,

भक्तया प्रदत्तं विमलासनादि ।

सरोगिनः साधुजनस्य येन,

सेवा कृता स्यान्स सुखी ह्यरोगी ।।131।।

अर्थ- जो मनुष्य मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इन चारों प्रकार के रोगी पात्रों को भक्तिपूर्वक औषध-अनन आदि देता है वर्ि नर्मल पवित्र आसन देता है अथवा जो रोगी मुनियों की सेवा सुश्रुष्ज्ञा करता है वह जीव अगले भव में जाकर निरोग और सुखी होता है।

भावार्थ- रोगी जीवों को औषधिदान देना, उनको निरोग बनाना है। जो रोगी निरोग हो जाता है वह जन्मभर सुखी रहता है। यदि कोई साधु, अर्यिका, श्रावक रोग युक्त हो तो उनको औषधि देकर निरोग करना विशेष पुण्य का कारण होता है। इसका भी कारण यह है कि रतन्त्रयको धारण करने वाला चारों प्रकार का संघ निरोग होन पर रतन्त्रयकी वृद्धि

करता है और अपने आत्मा का कल्याण करता है। यदि वह रोगी ही बना रहता तो वह रतन्त्रय वृद्धि करने से व आत्मकल्याण करने से वंचित रह जाता है। औषधि प्रापत हो जाने से वह निरोग होकर फिर आत्मकल्याण में लग जाताा है। अतएव औषधि देने वाला भी उस आत्मकल्याण में सहायक बन जाता है और इस प्रकार वह विशेष पुण्य का भागी हो जाता है। उस विशेष पुण्य से ही वह अगले जन्म में निरोग और सुखी रहता ह। इसी प्रकार रोगी मुनियों की या अन्य व्रतियों की सेवा सुश्रूषा करना भी उनके आत्मकल्याण में सहायत देना है। इसीलिए वह भी विशेष पुण्य का भागी होकर अगले जन्म में वह भी सुखी और निरेग रहता है। अतएव समर्थ पुरूषों को रोगियों के लिए औषधि देने का प्रबंध अवश्य करते रहना चाहिए। साथ में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वह औषधि शुद्ध और पवित्र हो, मद्य, मांस व आसव-अरिष्ट आदि से बनी न हो। इसका भी कारण यह है कि मद्य व मांस आदि से बनी हुई औषधि देने से अत्यंत पाप का भागी होना पड़ता है, और वह पाप पुण्य को भी पापरूप में परिणत कर देता है। अतएव शुद्ध और पवित्र औषधि देना ही सर्वथा उचित है और पुण्य का कार्य है। नीतिमान् और बलवान् होने का कारण बतलाते है।-

प्रश्न- कसमाद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

नीत्या बलिष्ठो भवतीह जीवः ।।

अर्थ- हे देव ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पुण्यकार्य के करने से नीतिमान् और बलवान् होता है ? उत्तर- रक्षा कृता येन च दीनजन्तो-

र्वाऽशक्तजन्तोश्र सुखाया यत्नः।

क्षुधातृषार्त्ताय जलान्नदानं,

वलेन नीत्यापि बली भवेत्सः ।।132।।

अर्थ- जो मनुष्य दीन-दुखी जीवों की रक्षा करता है, असमर्थ जीवों को सुख पहुँचाने का प्रयतन करता है व भूखे-प्यासे जीवों को अनन्-जल देता रहता है, ऐसा जीव परभव में जाकर शरीर से भी बलवान् होता है और नीति के पालन करने में भी बलवान् होता है।

भावार्थ- इस संसार में छोटे-मोटे जितने प्राणी हैं उन सबकी रखा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य हैं तथा जो जीव अत्यंत दीन व दुःखी है उनकी रक्षा करना तो प्रत्येक मनुष्य का विशेश और आवश्यक कर्तव्य हो जाता है। इसी प्रकार असमर्थ जीवों को सुख पहुँचाना व भूखे जीवों को शुद्ध जल देना भी पुण्य का कार्य है। ाूखे प्यासे जीवों को अनन्-जल देने से धनादिक की वृद्धि होती है। तथा निर्बलों की सहायता करने से बल की प्रापित होती हैं यही कारण है कि दीन दुखी जीवों की रक्षा करने से, उनको सुख पहुँाने से व अनन् जल का दान देने इस जीव को शारीरिक शक्ति भी प्राप्त होती है और नैतिक शक्ति भी प्रापत होती है।

समताभाव प्रापत होने का कारण बताते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

स्याद्देव ! जीवः समतास्वभावी ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह जीव समतारूप परिणामों को प्राप्त कर लेता है।

उत्तर- श्राद्धोत्तमादेर्विनयं च कृत्वा,

यः शान्तमुद्रां जिनदेवसाधोः ।

विलोक्य तुष्येत्सुजनात्सधर्मा,

स्यात्कौ स मृत्वा समतास्वभावी ।।133।।

अर्थ- जो धर्मात्मा पुरूष उत्तम श्रावकों की विनय कर संतुष्ट होता

है अथवा जिनदेव और वीतराग गुरू की शांतमुद्रा देखकर प्रसनन होता है व सज्जन पुरूषो को देखकर प्रसनन होता है ऐसा पुरूष मरकर इसी प्रृथ्वी पर समतारूप परिणामों को धारण करने वाला होता है।

भावार्थ- सुख दुःख दोनों में समान परिणाम रखना, साना मिट्टी दोनों को समान मानना, इष्टसंयोग वा इष्टवियोग में समान परिणाम धारण करना व अनिष्टसंयोग व अनिष्टवियोग में समान परिणाम धारण करना समता कहलाती है।इस प्रकार समतारूप परिणामों को धारण करना बड़े पुण्यकर्म के उदय से प्रापत होता है। इसका भी कारण यह है कि जहाँ पर समतारूप परिणाम होते हैं वहाँ पर लोभ रागद्वेष आदि सब नष्ट हो जाते हैं तथा इन सब विकारों के नष्ट होने से पापरूप कर्मों का बंध नहीं होता है। इसलिए समतारूप परिणामों को धारण करना पुण्यकर्म के उदय से होता है और पुण्यकर्मों का ही बंध करता हैं ऐसा यह समता परिणाम मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविकाओं की निय करने से, रतन्त्रयको धारण करने से, देव-गुरूकी शांतमुद्रा का दर्शन करने से और रतन्त्रय को धारण करने वालों की संगति करने से ही प्रापत होता है। यही समझ कर रतन्त्रय को धारण करना प्रत्येक भव्य जीव का कर्तव्य है।

धर्मात्मा होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

सुधार्मिकः कौ भवतीह जीवः ।।

अर्थ- हे देव ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह जीव धर्मात्मा हो जाता है ?

उत्तर- धर्मीत्सवं धर्मरतान् जनान् यो-,

दयान्वितान् वा व्रतशीलपूतान् ।

विलोक्य तुष्येत्स्वगुरूं कृपाब्धिं,

स धार्मिको ना प्रभवेदमुत्र ।।134।।

अर्थ- जो पुरूष किसी धर्मोत्सव को देखकर प्रसन्न होता है, जो अत्यन्त दयालु पुरूषों को देखकर प्रसन्न होता है, व शीव्रतों कोपालन कर पवित्र होने वाले पुरूषों को देखकर प्रसन्न होता है, अथवा कृपा के सागर ऐसे वीतराग निर्ग्रंथ परमगुरू को देखकर जो अत्यन्त प्रसन्न होता है ऐसा मनुष्य परलाक में जाकर भी धर्मात्मा ही होता हैं

भावार्थ- जो जीव इस लोक में रहकर सदाकाल धर्मकार्य करता रहता है व धर्म में लीन रहता है वह परलोक में भी जाकर धर्मात्मा ही होता हे। धर्मार्य करने से आत्मा भी धर्मरूप ही हो जाती है और इसीलिए वह अगले जन्म में भी धर्मात्मा होता है। धर्म की प्रीाावना करने वाले अनेक प्रकार के उत्सव देखन व करना-कराना, जिनालय बनवाना, जिनप्रतिमा बनवाना, प्रतिष्ठा में ओय हुए अनेक धर्मात्माओं को देखकर प्रसन्न होना, दयालु व्रतियों को देखकर प्रसन्न होना, उनकी सेवा सुश्रुषा करना, देव-गुरूओं के दर्शन कर प्रसन्न होना, उनकी पूजा करना, गुरूओं की वैयावृत्य करना, तीथचयात्रा करना आदि सब धर्मकार्य हैं। इनमें लीन रहने वाला पुरूष अगले जन्म में भी अवश्य ही धर्मात्मा होता है।

निभच्य होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

सनुनिभच्यो चान्यभवे भवेन्ना ।।

अर्थ- हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पुण्यकार्य के करने से परलोक में जाकर निभच्य हो जाता है ?

उत्तर- दीनाय येनान्नजलाभयादि,

कुभूपदुष्टादिनजनैच्हताय ।

दत्वा कृता दुःखिजनस्य रक्षा,

स निभच्यो ना प्रभवेदमुत्र ।।135।।

अर्थ- जो पुरूष किसी दुष्ट राजा व अन्य दुष्ट क्रोधी आदि जीवों के द्वारा सताये हुए दीन दुःखियों को अनन्-जल अभय आदि देकर उन दुखी जीवों की रक्षा करता है वह मनुष्य परलोक में जाकर अवश्य ही निभय होता है।

भावार्थ- किसी भी दुष्ट के द्वारा सताया हुआ मनुष्य सदाकाल भयभीत रहात है। जो भयभीत रहता है वह कभी सुखी नहीं हो सकता।प्रायः दुष्ट लोग व दुष्ट राजा लाग दीन-दुखियों को ही सताया करते हैं ऐसे दीन दुखियोंको जो आश्वासन दिया करते हैं, उनकी रक्षा करते हैं, उनको अनन् जल दिया रते हैं व उनको अपनी शरण में लेकर अभयदान दिया करते हैं, अथवा अपने-अपने कर्म के उदय से दुखी हुए अन्य जीवों की भी रखा किया करते हैं, उनके दुःख दूर करते है। और उनको सब प्रकार से निभय बना देते हैं ऐसे मनुष्य परलोक में जाकर भी निभय होते हैं।

उदार होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्मिन सुकार्ये कृिते विशेषे ।

चित्तं ह्यदारं च भवे'राणाम् ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किन-किन शुभ कार्यों के करने से मनुष्यों का हृदय उदार हो जाता है ?

उत्तर- सत्पात्रदानादनुमोदनाद्वा,

मिथ्यादृशां वा शिवमार्गदानात् ।

दत्त्वान्नदानं हृदि हषयोगाद्,

भवेन्नराणां हृदयं ह्युदारम् ।।136।।

अर्थ- जो मनुष्य वीतराग निर्ग्रंथ मुनियों को आहार दान देता है, व उसकी अनुमोदना करता है, अथवा जो मिथ्यादृष्टि जीवों को मोक्ष मार्ग में

लगाता है तथा गुरूजनों को आहारदान देकर अपने हृदय में हर्ष मानता है, ऐसा मनुष्य परलोक में जाकर उदाय हृदयवाला होता है।

भावार्थ- दान तो अनेक मनुष्य दिया करते हैं, परन्तु वीतराग निर्ग्रंथ मुनियों को दान देने वाले बड़ेपुण्यकर्म के उदय से ही होते है।। इसका भी कारण यह है कि वीतराग निर्ग्रंथ मुनि न तो कुछ परिग्रह ही रखते हैं और न कभी किसी` किसी भी पदार्थ की याचनाकरते हैं। रतन्त्रय को व विशेषकर सम्यक्चारित्र का`पूर्णरीति से प्रापत करने के लिये वे आहार विश्य लिया करते हे।। सम्यक्चारित्र की पूर्णता बिना शरीर के नहीं हो सकती तथा बिना आहार के शरीर नहीं टिक सकता। अतएव दिन में एक बार व दो, चार, दश उपवास करे के अनंतर श्रावकों के आहार के समय आहार के लिये मौन धारण कर श्रावकों की बस्ती में जाते हैं तथा जिस मार्ग वे व जहां तक सर्वसाधारण लोग आते जाते हैं वहीं तक जाते हें। यदिर किसी श्रावक ने उनका प्रतिग्रह कर लियो तो उसके यहां आहार ले लेते हें अन्यथा फिर अपने तपश्चरण के स्थान पर चले जाते हैं ऐसी निरीहवृत्ति को धारण करने वाले मुनियों को आहार देने के परिणाम देव-शास्त्र व गुरूपर अटल श्रद्धान रखने वाले जीवों के ही होते हे। । तथा ऐसे ही जीव उस आहारदान की अनुमोदना कर सकते है। व ऐसे आहारदान के देकर प्रसनन् हो सकते हैं ऐसे मनुष्य अपनी आयु पूर्ण कर भोगभूमि में उत्पनन् होते है। व देव होते हैं तथा वहाँ से आकर अत्यंत उदार हृदय को धारण करने वले महादानी होते हैं और अंत में समस्त भूति का त्याग कर नेश्वरी दीक्षा धारण कर तपश्चरण से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

वक्ता होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रीाो ना ।

धीमान् भवेद्वान्यभवे सुवक्ता ।।

अर्थ- हे प्रीाो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किन-किन

पुण्यकार्यों के करने से यह जीव परलोक में जाकर बुद्धिमान वक्ता होता है?

उत्तर- विद्याप्रदानं विदुषां च सेवा,

येन प्रशंसा निजबोधकर्तुः ।

विद्यार्थिने वा जिनशास्त्रदानं,

कृतं स वक्तान्यभवे भवेद्धि ।।137।।

अर्थ- जो मनुष्य इस जन्म में अनेक विद्यार्थियों को विद्या दान देता है, जो विद्वानों की सेवा करता है, अपने को आत्ज्ञान कराने वाले गुरूअें की प्रशंसा करता हहै, और जो विद्यार्थिय्यों को पढ़ने के लिए जैन शास्त्रों को देता है ऐसा पुरूष परलाक में जाकर यथार्थ बोलने वाला वक्ता होता है।

भावार्थ- विद्या का दान देने से आत्मा में विद्या का संस्कार होता है, जो पुरूष स्वयं विद्या का दान नहीं दे कसता उसको विद्या के पढ़ने में सहायता देनी चाहये। तीव्रबुद्धि विद्यर्थीियों के लिए पढ़ने के सब साधन इकट्ठे कर देने चाहिये। तथा विद्वानों की सेवा करते रहना चाहिये। अपने गुरू की प्रशंसा करते रहना चाहये। जिन ग्रंथों को लिख-लिखाकर दान देना चाहिये। साथ ही यह ध्यान में रखना चाहिये कि जैन शास्त्रों को पठन-पाठन करना ही विद्याध्ययन करना है, क्योंकि आत्मा का कल्याण जैनशास्त्रों के पठन-पाठन से ही होता है। अन्य शास्त्रों के पठन-पाठन करने से आत्मा का कल्याण कीाी नहीं होता, किन्तु अन्य शास्त्रों के पठन-पाठन से यह जीव संसार मार्ग में लग जाता है। इसीलिये जो पुरूष जैन शास्त्रों के पठन-पाठन में सहायता पहुँचाता है, जैन शास्त्रों के विद्वानों की सेवा सुश्रुषा करता है, व जैन शास्त्रों को पढ़ाता सुनाता है वह पुरूष परलोक मे जाकर अवश्य ही उत्तम वक्ता होता है।

स्वतंत्र होने का कारण बतलाते हे।-

प्रश्न- कस्मिन् सुपुण्ये च कृते विशेषे ।

जीवः स्वतंत्रोपि सुखी भवेत्कौ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह जीव स्वतंत्र और सुखी होता है।

उत्तर- कुटुम्बहीनाय तदात्मशान्तयै,

बोधं धनादिं सुखदं च दत्वा ।

वस्त्रान्नीहीनाय तदेव तुष्ये-

ज्जीवः स्वतंत्रः स भवेदमुत्र ।।138।।

अर्थ- जो मनुष्य कुटुंबरहित मनुष्यों की आत्माओं को शांत करने के लिये उनको समझाता है, उनके लिए सुख के साधन धन-धान्य आदि पदार्थों को देता है तथा अनन वस्त्ररहित मनुष्यों को अनन वस्त्र देकर अत्यंत संतुष्ट होता है ऐसा मनुष्य परलोक में जाकर अवश्य ही स्वतंत्र और सुखी होता है।

भावार्थ- आश्रयहीन जीवों को आश्रय देना, दुखी जीवों का दुःख दूर कर उनको सुख पहुँचाना, भूखे-प्यासों को अनन-जल देना, वस्त्र रहित संसारी जीवों को वस्त्र देना, मिथ्या ज्ञानियों को सम्यग्ज्ञान प्रदान करना, अधर्म मं लगे हुए जीवों को धर्म में लगाना, व अन्य भी ऐसे कार्य पुण्य बढ़ाने वाले हैं। ऐसे पुण्यकार्य करने से यह जीव परलोक में जाकर किसी के अधनी नहीं रहता, स्वतंत्र होकर सुखीर होता है तथा अंत में समस्त कर्मों को नष्ट कर परम सिद्धपरमेष्ठी बन जाता है।

सुंदर शरीर की प्राप्ति का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

ना सुन्दराड्.गो भवतीह मृत्वा ।।

अर्थ- हे देव ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पुण्यकार्य के करने से परलोक में जाकर सुन्दर शरीर धारण करता है ?

उत्तर- स्यात्सर्वजीवः शुभदेहधारी,

येषां सदिच्छा गुरूदेवभक्तिः ।

दृष्ट्वान्यदेहं भुवि रोगहीनं,

तुष्ये त्स मृत्वा भुवि सुन्दराड्.गः ।।139।।

अर्थ- इस संसार में समस्त जीव सुंदर शरीर को धारण करने वाले हों ऐसी श्रेष्ठ इच्छा जिनको सदाकाल बनी रहती है। जो सदाकाल भगवान जिनेन्द्रदेव व वीतराग निर्ग्रंथ गुरूओं की भक्ति किया करते हैं और जो दूसरों के निरोग शरीर को देखकर संतुष्ट होते हैं ऐसे मनुष्य मरकर परलोक में उत्तम सुन्दर शरीर को धारण करते हैं।

भावार्थ- उत्तम और सुंदर शरीर का प्राप्त होना भी बड़े भारी पुण्यकर्म के उदय से होता है। जो पुरूष भगवान जिनेंद्रदेव की भक्ति करता है, उनकी पूजा करता ळै, उनका ध्यान करता है तााि उनके कहे हुए शास्त्रों की आज्ञानुसार अपनी प्रवृत्ति रखता है, वीतराग निर्ग्रंथ गुरूओं की भक्ति करता है, उनकी सेवा सुश्रूषा करता है, तथा जो पुरूष सदाकाल समस्त जीव के सुखी होने की भावना रखता है ऐसा जीव श्रेष्ठ पुण्यकर्म के उदय से परलोक में जाकर सुन्दर व मनोहर शरीर को धारण करता है।

आदर-सत्कार प्राप्त करने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

सन्माननीयोऽन्यभवेज्जनाऽयम।।

अर्थ- हे देव ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-

किस पुण्यकार्य के करने से दूसरे जन्म में भी जाकर मान्य व आदर-सत्कार करने योग्य होता है ?

उत्तर- येनात्मभक्त्या गुरूदेवसेवा,

स्नेहप्रवृत्तिश्च मिथः कृता हि ।

तद्वाक् प्रमाणं मनसा कृतं वै,

सन्माननीयोऽन्यभवे भवेत्सः ।।140।।

अर्थ- जो पुरूष्ज्ञ अपने आत्मभक्ति से भगवान् जिनेन्द्रदेव और वीतराग निर्ग्रंथ गुरू की सेवा करता है तथा उन्हीं देव-शास्त्र-गुरूओं के वचनों को मन-वचन-काय से प्रमाण मानता है, समस्त जीवों में परस्पर प्रममय प्रवृत्ति रखता है ऐसा पुरूष परलोक में जाकर श्रेष्ठ पुरूषों के द्वारा माननीय पुरूष होता है।

भावार्थ- सज्जन पुरूष भी जिसको माने, जिसका विनय करे उसको माननीय कहते है। जो पुरूष पूज्य पूरूषों की पूजा किया करता है, वीतराग सर्वज्ञ देव के वचनों को प्रमाण मानकर उन्हीं के अनुसार अपनी प्रवृत्ति करता है। जो देव-शास्त्र-गुरू की आज्ञा उल्लंघन कभी नहीं करता और न कभी किसी को नीचा दिखाने का प्रयतन् करता है। अथवा जो पुरूष्ज्ञ वैर विरोध कराने का कभी भी प्रयतन् नहीं करता, जो सदाकाल सबके साथ अनुरागरूप प्रवृत्ति रखता है। ऐसा पुरूष मरकर परलोक में भी वैभवशाली माननीय पुरूष होता है, जिसे सब लोग मानते हैं, सब लोग जिसका विश्वास करते हैं और सब लोग जिसको बड़ा मानते हैं।

ज्ञानी व्रती होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

ज्ञानी व्रती स्यान्मनुजोऽन्यलोके ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस

पुण्यकार्य के करने से यह जीव परलोक में भी जाकर ज्ञानी और व्रती मनुष्य होता है?

उत्तर- येन क्रियायु नरप्रशंसाऽ-

नाचारवृत्तेश्र कृता प्रणिन्दा ।

फलं व्यथादं व्यनस्य बुध्वा !

ज्ञानी व्रती स्यादिति भाग्यभाक् सः ।।141।।

अर्थ- जो पुरूष सातों व्यसनों को अत्यंत दुःख देने वाले समझ कर अनाचार प्रवृत्तियों की निंदा करता है, व्रत-उपवास व जिनपूजा, पात्रदान आदि क्रियायु पुरूषों की प्रशंसा किया करता है ऐसा भाग्यशाली पुरूष परलोक में भी जाकर ज्ञानी और व्रती पुरूष होता है।

भावार्थ- जुआ, चोरी, शिकार, वेश्यासेवन, परस्त्रीसेवन, मांस-मद्यसेवन आदि सब व्यसन कहलाते हैं। ये व्यसन सब दुःख देने वाले हैं। इन व्यसनों के सेवन करने से इस लोक में भी दुःख मिलता है और परलोक में भी नरकादिक के दुःख भोगने पड़ते हैं। यही समझ करे जो पुरूष इन समस्त व्यसनों का त्याग कर अपनी अनाचार रूप प्रवृत्तिका सर्वथा त्याग कर देता है और जो सदाकाल शास्त्रोक्त क्रियाकांड का पालन किया करता है अर्थात् जो प्रतिदिन भगवान् जिनेन्द्रदेव की पूजा किया करता है, मुनियों को दान दिया करता है, व्रत-उपवास किया करता है, पर्व के दिनों मे विशेष उत्सव किया करता है, रथोत्सव आदि के द्वारा धर्म की प्रभावना किया करता है शास्त्रों का स्वाध्याय किया करता है और जो सदाकाल धर्मात्मा पुरूषों की सेवा किया करता है ऐसा पुरूष परलोक में भी जाकर ज्ञानी और व्रती पुरूष होता है, तथा भाग्यशाली होता है।

भाई-बंधुओं में प्रेम होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

प्रीतिर्भवेद् बंधुजने मिथः कौ ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह जीव अपने भाई-बंधुओं का प्रमपात्र बन जाता है।

उत्तर- श्रीदां सुशांति भुवि कारयित्वा,

बंधोर्मिथः स्नेहकरीं प्रवृत्तिम् ।

विलोक्य तुष्येत्प्रियबांधवानां,

स्नेहो मिथः स्यादिति तस्य कृत्यात् ।।142।।

अर्थ- जो पुरूष इस संसार में लक्ष्मी को बढ़ाने वाली शांति स्थान कर देता है, जो भाई-ीाई में परस्पर सन्ेह बढ़ाने वाली प्रवृत्ति को बढ़ाता रहता है और परस्पर प्रेम से रहने वाले भाई-बंधुओं को देखकर संतुष्ट हुआ करता है वह पुरूष इन श्रेष्ठ कार्यों से अपने भाई-बंधुओं से परस्पर सन्ेह को धारण करने वाला होता है।

भावार्थ- भाई-बंधुओं में परस्पर प्रेम के साथ रहना सौभाग्य की बात है। यह सौीाग्य उसी को प्राप्त होता है जो पहले जन्म में किसी के लिये कभी कोई उपद्रव नहीं करता। जो सबके साथ शांति का बर्ताव रखता है, अन्य लोगों में भी शांति स्थापन कराता है, भाई-भाई में प्रेम कराता है, धर्मात्माओं को देखकर प्रसनन् होता है, धर्मात्माओं ी सेवा करता है और धर्मात्माओं के अनुराग से प्रसनन्ता प्रगट करता है। ऐसा पुरूष परलोक में भी जाकर सबका प्रेमपात्र होता है और सबक साथ प्रेम से रहता है।

बिछड़े हुए पुत्र की प्राप्ति का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- वियोगिपुत्रस्य भवेत्सुलाभ ।

कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।।

अर्थ- हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस

पुण्यकार्य के करने से पुत्र का वियोग होने पर भी परदेश चले जाने पर भी उसकी प्राप्ति हो जाती है ?

उत्तर- दत्त धृतिः पुत्रवियोगिने यै-

स्तत्पुत्रलाभाय कृतः प्रयत्नः ।

सेयोगवार्ता हि कृता न चान्या-

ऽस्माद् योग्यकृत्यादिति पुत्रलाभः।।143।।

अर्थ- किसी भी पुरूष के पुत्र का वियोग होने पर अर्थात् किसी भी कारण से उसके बाहर व परदेश चले जाने पर जो उसके लिए धैर्य बंधाता है, उसकी खोज करने के लिए प्रयतन करता है और जो सदाकाल उसके मिल जाने की ही बात कहता है, उसके विपरीत बात कभी नहीं कहता ऐसा पुरूष अपने इन योग्य कार्य करने के कारण अपने बिछड़े हुए पुत्र को प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ- कभी-कभी किसी का पुत्र अप्रसनन होकर घर से निकल जाता है, परदेश चला जाता है, अथवा उसे कोई बहका कर ले जाता है व चुराकर ले जाता ळै, अथवा साथ से छूट जाता है अथवा और किसी प्रकार से बिछुड़ जाता है। ऐसी अवस्था में उसके माता-पिता व भाई-बंधुओं को धैर्य देना चाहिये, उसको खोज करने के लिए प्रयतन करना चाहिए, यदि वह पुत्र मिल जोने पर भी न आता हो तो उसको समझा बुझााकर ले आना चाहिये और इस प्रकार उसके माता-पिता व भाई बंधुओं को संतुष्ट करना चाहिये जो मनुष्य इस प्रकार का प्रयतन करते हैं ऐसे पुरूषों के पुत्रादिकों का व भाई-बंधुओं का वियोग कभी होता ही नहीं हैै। यदि किसी कारण से हो भी जाय तो वह बिछड़ा हुआ भाई व पुत्र अपने आप आ जाता है। ऐस पुरूषो को इष्ट वियोग का दुःख कभी नहीं होता है।

पिता-पुत्र स्नेह का कारण बतलाते हे।-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! स्यात् ।

स्नेहः सुपुत्रस्य मिथः पितुश्च ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस **पुण्यकार्य के करने से पिता पुत्र में परस्पर स्नेह रहता है।**

उत्तर- पितुः सुपुत्रस्य मिथः प्रमोदं,

दष्ट्वेति तुष्येद्विनयोपचारम् ।

विनाश्य वैरं ह्याकरोत्प्रशांतिं,

स्नेहो द्वयोः स्यात्सुकृतेः प्रतापात् ।।144।।

अर्थ- जो पुरूष पिता पुत्र के परस्पर के प्रमोद को देखकर संतुष्ट होता है, उनके विनय और उपचार को देखकर प्रसनन होता है अथवा किसी पिता-पुत्र के परस्पर के विरोध को मिटाकर जो शांति स्थापन कर देता है ऐसा पुरूष अपने पुण्यकार्यों के प्रताप से पिता-पुत्र दोनों के साथ प्रम धारण करता है।

भावार्थ- पिता-पुत्र दोनों के साथ अनुराग पुर्वक बर्ताव रखना, पिता की सेवा सुश्रूषा करना उनकी आज्ञा का पालन करना, अपने कर्तव्य का पालन कर पिता को प्रसनन रखना तथा पुत्र का लालन पालन करना, उसको अनुचित कार्यों से रोकना पढ़ाना, लिखाना, व्यापार आदि सिखाना तथा उसको धार्मिक बनाना आदि समस्त क्रियाएं कुटुंब के सुख के साधन हैं। जो घर का स्वामी अपने कुटुंब के साथ इस प्रकार का बर्ताव रखता है वह स्वामी तथा उसका वह कुटुंब सदाकाल सुखी रहता है। ऐसा सुख बड़े भाग्य से मिलता है। जो जीव पहले जन्म कौटुम्बिक प्रेम को देखकर प्रसनन होता है, किसी भी कुटुंब मं वैर विरोध नहीं होने देता, होने पर बहुत शीघ्र उसे मिटा देता है और जो सेवा सुश्रूषा, परोपकार आदि के द्वारा सबका प्रिय भाजन बना रहता है ऐसा जीव मरकर परलोक में भी अपने समस्त कुटुंब के साथ प्रेमभाव से रहता है।

गर्भ में सुपुत्र आने के चिन्ह बतलाते हैं-

प्रश्न- कथं सुपुत्रस्य स्थितिः प्रगम्या ।

कृत्वा कृपां मे वद मातृगर्भे ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि माता के गर्भ में सुपुत्र के आने पर क्या क्या चिन्ह प्रगट हो जाते हैं ?

उत्तर- गर्भे सुपुत्रागमनात्प्रसादः,

मातुः पितुर्वा विमलो विचारः ।

दानार्चनादौ च सदा प्रवृत्तिः,

ज्ञेयं सुकृतयाद्धि सुपुत्रजन्म ।।145।।

अर्थ- यदि माता के गर्भ में कोई सुपुत्र आ जाता है तो माता पिता का हृय प्रसनन हो जाता है, उनके विचार निर्मल हो जाते हैं और दान, पूजा आदि शुभ कार्यों में प्रवृत्ति हो जाती है। यदि ये सब कार्य होने लगें तो समझ लेना चाहिए कि इस गर्भ से सुपुत्र का जन्म होगा।

भावार्थ- माता के गर्भ में जैसा पुत्र होता है माता-पिता के विचार भी वैसे ही हो जाते है। यदि वह बालक शूरवीर होता है तो माता पिता के विचार किसी भी युद्ध में विजय प्राप्त करने के हो जाते हैं। यदि वह गर्भ का बालम धर्मात्मा होता है तो माता-पिता के विचार धर्मरूप परिणत हो जाते है।, जिनपूजा, पात्रदान तीथऱ्यात्रा आदि करने के विचार हो जाते हैं, धर्मोत्सव वा रथोत्सव आदि के करने कराने व देखने के भाव हो जाते है।। ऐसे परिणामों से उस गर्भ के बालक का सुपुत्रदान जान लिया जाता है।

इच्छानुसार पदार्थों की प्राप्ति का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- पुण्योदयाद्वांछितदं सुवस्तु ।

कस्मात्प्रभो ! मे लभते वदात्मा ।।

अर्थ- हे देव ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पुण्य कर्म के

उदय से इस जीव को इच्छानुसार पदार्थों की प्राप्ति होती है ?

उत्तर- भव्यायसङ्.घाय चतुर्विधाय !

येन प्रदत्तं विमलौषधान्नम् ।

सर्वात्मसौख्याय कृताभिलाषा,

दिव्यं नरः कौ लभते सुवस्तु।।146।।

अर्थ- जो पुरूष भव्य पुरूषों के लिये व मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इन चारों प्रकार के संघ के लिये पवित्र औषधि, पवित्र आहार जल प्रदान करता है अथवा जो समस्त जीवों को सुखी बनाने की अभिलाषा करता रहता है ऐसा पुरूष इसी संसार में इच्छानुसार पदार्थी को प्रापत कर लेता है।

भावार्थ- पात्रदान देने से धन-धान्यी वृद्धि होती है, जो पुरूष प्रतिदिन पात्रदान देता है, वीतराग, निर्ग्रंथ मुनियों को आहाद देता है व औषध व शास्त्र देता है व मुनियों के लिये वसतिकाएं बनवा देता है ऐसा पुरूष मरकर भोगभूमि में ही उत्पनन होता है। वहां पर उसे कल्पवृक्षों के द्वारा इच्छानुसार पदार्थों की प्राप्ति होती रहती है। तदनंतर वहां की आयु पूर्णकर वह देव होता है और वहां भी इच्छानुसार भेगोपभोगों की सामग्री प्रापत कर सुख का अनुभव करता रहता है। इसलिए यदि इच्छानुसार सुख सामग्री प्राप्त करना है तो प्रत्येक भव्य जीव को पात्रदान देने का नियम लेना चाहिये यदि ऐसा योग अपने यहां न हो तो जहां कहीं वीतराग निर्ग्रंथ मुनि हों वहां पात्रदान का लाभ लेना चाहये। इसमें चूकना मनुष्य जन्म को खो देना है।

देव पर्याय प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

स्वर्गे च जीवो भवतीह देवः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्य कार्य के करने से यह जीव स्वर्ग में जाकर देव होता है ?

उत्तर- व्रतोपवासेन तपोजपाभ्यां,

देवादिसेवाकरणेन भक्त्या ।

सत्तीथचैत्रार्चनदानतः स्यात,

शुभोपयोगैर्दिविजो भवेत्सः ।।147।।

अर्थ- जो मनुष्य अनेक व्रत-उपवास-तपश्चरण-जप व ध्यान करता है, भक्तिपुर्वक देव-शास्त्र-गुरू की सेवा पूजा करता है, तीथचैत्रा करता है, प्रतिदिन देवपूजा करता है और प्रतिदिन पात्रदान देता है वह भव्य मनुष्य अपने इन अनेक पुण्य कार्यों से स्वर्ग में जाकर देव होता है।

भावार्थ- देवपर्याय इस संसार में सुखमय पर्याय है। वहां पर जन्म लेते ही थोड़ी देर में युवावस्था को प्राप्त हो जाता है। साथ ही वहां अवधिज्ञान होता है, वहां पर कल्पवृक्ष होते है। जो इच्छानुसार समस्त सामग्री देते है।। अनेक वर्षों बाद भूख की इच्छा होती है और उसी समय उनके गले से अमृत झड़ पड़ता है जिससे वे परम तृप्त हो जाते हैं। देवों को कभी बुढ़ापा नहीं आता और न कभी कोई दुःख ही होहोता है। ऐसी यह देवों की सुखमय पर्याय तपश्चरण व ध्यान करने से प्राप्त होती है अथवा पूर्ण अणुव्रत व महाव्रत धरण करने से होती है, व समतापूर्वक अनेक उपवास करने से प्राप्त होती है। अथवा मुनिराज आचार्य समंतभद्र के समान जिनेद्रदेव की भक्ति करने से प्राप्त होती है।

इस प्रकार अनेक पापकर्मो को नष्ट कर महापुण्य कार्यों के करने से यह देवपर्याय प्राप्त होती है।

मनुष्य प्राप्त होने का कारण बतलाते है।-

प्रश्न- कस्मिन् सुकार्ये च कृते विशेषे ।

मृत्वा भवेन्ना नरजन्मधारी ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस विशेष पुण्यकार्य के करने से यह जीव मनुष्य पर्याय को धारण करता है?

उत्तर- दानार्चनादार्जवधमच्योगात,

कोधादिनाशात्समतारसाद्वा।

मृत्वा मनुष्यो भवतीह विश्रे,

प्रियश्र सर्वस्य सुखप्रदो हि ।।148।।

अर्थ- जो मनुष्य सदा दान देता रहता है, भगवान् जिनेंद्रदेव की पूजा करता रहता है, अपने परिणामों को छल कपट से रहित सरल बनाये रखता है और जो क्रोध को नाशकर समतारस में लीन रहता है, ऐसा मनुष्य मरकर इसी रसमं सबको प्रिय और सबको सुख देने वाला उत्तम मनुष्य होता है।

भावार्थ- स्वाभाविक कोमल परिणामों का होना मनुष्य पर्याय का कारण है जिसके परिणाम स्वभाव से ही कोमल व सरल होते हैं वह क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों से दूर रहता है, तीव्र कषायों से दूर रहने के कारण समतापरिणामों को धारण करता है और समता धारण करने से दान, पूजा, जप, तप आदि आत्मा के कलयाण करने वाले कार्यो में ही लगा रहता है। इन सब पुण्य कार्यों के करने से वह फिर उत्तम मनुष्य होता है अथवा देवपर्याय का सुख भोगकर उत्तम मनुष्य होता है और फिर ध्यान तपश्चरण के द्वारा कर्मों को नष्ट कर मोक्षप्रद प्राप्त कर लेता है।

भोगभूमि में मनुष्य जन्म प्रापत करने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।

ना जन्म गृह्णाति सुभोगभूम्याम् ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह मनुष्य भोगभूमि में उत्तम मनुष्य होता है।

उत्तर- स्वसौख्यभाक्ते मुनयेऽन्नदानं,

दत्तं प्रदातुं च कृताभिलाषा ।

येन प्रशंसा मुनिदानदातुः,

स जायते वेति सुभोगाभूम्याम् ।।149।।

अर्थ- जो मनुष्य अपने आत्मसुख में लीन रहने वाले मुनियों के लिये आहारदान देता है व देने के लिये अभिलाषा करता है अथवा जो देने वालों की प्रशंसा करता है वह मनुष्य आयु पूर्ण होने पर भोगभूमि में उत्पनन होता है।

भावार्थ- रतन्त्रय को पालन करने वाले व अपने शुद्ध आत्मा में लीन रहने वाले मुनि मोक्ष के साक्षात् पात्र हैं। वे मुनि उत्तमपात्र कहलाते है।। उन मुनियों को जो आहार दान देता है वह उन मुनियों की मोक्ष प्राप्ति में सहायक होता है और स्वयं मोक्ष पहुँचने के लिये पूरा साधन बना लेता है। ऐसा मनुष्य आयु के पूर्ण होते ही भोगभूमि में मनुष्य पर्याय धारण कर उत्पनन होता है, वहाँ से स्वर्ग में देव होता है और फिर एक दो मनुष्य पर्याय धारण कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। जो मनुष्य आर्यिका-ऐलक-क्षुल्लक-क्षुल्लिका एवं शीलव्रत पालन करने वाले व्रती श्राावक-श्राविकाओं को आहार वस्त्र आदि देता है वह मध्यम भोगभूमि में मनुष्य पर्याय धारण कर उत्पनन होता है। जो अव्रती सम्यग्दृष्टियों को आहार, वस्त्र आदि यथायोग्य दान देता है वह जघन्य भोगभूमि में मनुष्य होता है। इसी प्रकार मिथ्या तपश्चरण करने वाले भेषी साधुओं को जो दान देता है वह कुभोगभूमि में उत्पनन होता है। अपात्रों को दान देना व्यर्थ समझाा जाता है। जो पुरूष दान देने की इच्छा करता है व दान देने वाले की प्रशंसा करता है वह भी उसी फल को प्राप्त होता है।

आर्यखंड में उत्पन्न होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

शुभार्यखंडे हि भवेन्नृजन्म ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अि कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह जीव आर्यखण्ड में मनुष्य जनम धारण करता है?

उत्तर- जनान् कुवासे वसतः प्रगृह्य,

योऽस्थापयत्सौख्यकरे सुवासे।

दत्वान्नवस्त्रं सुखदं प्रतुष्येत,

स्यादार्यखण्डे खलु तन्नृजन्म ।।150।।

अर्थ- अत्यंत निकृष्ट स्थानों में निवास करने वाले अनेक जीवों को उठाकर जो सुख देने वाले उत्तम स्थानों में बसा देता है और फिर उनको सुख देने वाले अनन्न वस्त्र देकर संतुष्ट होता है वह मनुष्य मरकर आर्यखण्ड में उत्तम मनुष्य होता है।

भावार्थ- आर्यखंड एक उत्तम स्थान है। उसमें मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति रहती है। यहाँ तीर्थंकर व अनेक मुनिराज विहार करते रहते हैं, अर्जिकाएं व श्रावक, श्राविकाएँ रतन्त्रयका पालन करती रहती है।। यही सब आर्यखण्ड की विशेषता है। ऐसे धर्मस्थान में जन्म लेना वास्तव में पुण्य का ही कार्य है और पुण्य का ही साधन है जो मनुष्य निकृष्ट स्थानों मे बसे हुए लोगों का उद्धार करते हैं उन्हे अच्छे स्थानों में बसाते है ऐसे मनुष्य मरकर आर्यखण्ड में जनम लते हैं तथा वहां पर धर्मसाधन कर यथासाध्य रतन्त्रय का पालन करते हहै। और ध्यान तपश्चरण के द्वारा कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

अल्पभोजी होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

स्वल्पान्नभोजी भवतीह भव्यः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह जीव बहुत थोड़ा अनन भक्षण करने वाला होता है ?

उत्तर- स्वराज्यकर्त्रे मुनयेऽन्नदानं,

दत्वेति दीनाय गृहादिवस्तु ।

स्वल्पं च भुक्त्वाऽनशनेन तुष्येत,

स्वल्पान्नभोजी स भवेदमुत्र।।151।।

अर्थ- जो मनुष्य अपने शुद्ध आत्मा में लीन रहने वाले मुनियों को आहारदान देकर संतुष्ट होता है व दीनदरिद्रियों को अनन, वस्त्र, घर आदि देकर संतुष्ट होता है। अथवा जो थोड़ा सा ही भोजन कर संतुष्ट होता है। ऐसा मनुष्य परलोक में जाकर अल्प भोजन करने वाला होता है।

भावार्थ- बहुत अधिक भोजन करना दरिद्रता का चिह्न है और थोड़ा भोजन करना भाग्यशाली होने का चि है। सबसे थोड़ा भोजन देवपर्याय में होता है। वहां पर सैकड़ों हजारों वर्षों के बीत जाने पर क्षुधा की वेदना होती है और उसी समय उनके गले से अृत झर पड़ता है जिससे उनकी तृप्ति हो जाती है। इसी प्रकार भोगभूमि में भी बहुत थोड़ा आहार है। उत्तम भोगभूमि में तीन दिन बाद आँवले के समान थोड़ा आहार लेते है। मध्यम भोगभूमि में दो दिन बाद और जघन्य भूमि में एक दिन बाद कुछ अधिक आहार लेते है। कर्मभूमि में चैथे काल में प्रतिदिन एक बार आहार लेते है।पांचवे काल में प्रतिदिन दो बार आहार लेते हे। और छठे काल में प्रतिदिन कई बार आहार लेते है। । इससे भी सिद्ध होता है कि पुण्यवान् मनुष्य कम आहार लेते है।। जो मनुष्य दान देते रहते हे। तथा जो विशेष कर मुनियों को दान देते हैं व अनेक व्रत उपवास करते हैं तथा

जो सुख-दुःख दोनों में संतोष धारण करते है। ऐसे मनुष्य अपनी आयु पूर्ण होने पर परलोक में बहुत थोड़ा अनन्‍ ग्रहण करने वाले उत्तम पुरूष होते हैं।

व्यवहार चतुर होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

भवेच्च भव्यो व्यवहारदक्षः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह मनुष्य अपने व्यवहार कार्यो में चतुर होता है।

उत्तर- विद्‌याकलादौ चतुरान् विलोक्य,

विवेकिनो ज्ञानिजनस्य शंसाम।

कृत्वेति तुष्येन्मुनिवर्गसेवां,

भवेत्स मृत्वा व्यवहारदक्षः ।।152।।

अर्थ- जो मनुष्य विद्‌या, कला आदि में चतुर मनुष्यों को देखकर संतुष्ट होता है व विवे की और ज्ञानी पुरूषों की प्रशंसा किया करता है अथवा जो मुनियों की सेवा किया करता है ऐसा मनुष्य परलोक में जाकर व्यवहार के सब कार्यों में निपुण होता है।

भावार्थ- व्यवहार चतुर होना बुद्धिमान काम है। जो मनुष्य बुद्धिमानों को व कलाकारों को देखकर, ज्ञानी और विचारशील मनुष्यों को देखकर प्रसनन्‍ होता है व उनकी प्रशंसा करता है अथवा जो मुनियों की और संघ की सेवा करता है, धर्म को धारण करता है, व व्रत उपवास करता है ऐसा मनुष्य परलोक में जाकर व्यवहार के समस्त कार्यो में चतुर होता है, वह अपने व्यवहार में कभी नहीं चूकता।

कवि होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

सुकाव्यकर्ता हि भवत् कविः कौ ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पुण्यकार्य के करने से उत्तम काव्य को करने वाला श्रेष्ठकवि होता है?

उत्तर- निर्दोषदेवादिकाथाप्रशंसा,

सुकाव्यकर्तुर्गुणकीर्तनादिः ।

परंपराधर्मगुरौः कृता यै-

र्भवन्ति मृत्वा कवयोवरास्ते ।।153।।

अर्थ- जो मनुष्य वीतराग सर्वज्ञदेव की कथा कहता है, उनकी स्तुति करता है, उनके चरित्रों को हिने वाले उत्तम कवियो के बुणों वर्णन व उनकी प्रशंसा किया करता है, अथवा परम्परा से चले आये धर्मगुरूओं के गुण वर्णन किया करता है वह जीव परलोक में जाकर उत्तम कवि होता है।

भावार्थ- उत्तम कवि वही कहलाता है जो धर्मकथाओं का निरूपण करता है। जो तीर्थंकर परमदेव के पवित्र चरित्र को अथवा अन्य मोक्षगामी पुरूषें के पवित्र चरित्र को अपने उत्तम काव्य के द्वारा निरूपण करता रहता है। अथवा पुण्यपाप का फल दिखलने तथा पाप का त्याग व पुण्य की वृद्धि करने के लिए अन्य पुरूषों की कथाएं भी कहता है। ऐसे उत्तम विचार वाले कवियों को उत्तम कवि कहते है। जो पुरूष देवपूजा, गुरूपूजा, शास्त्रपूजा करते हैं व उनकी कथाओं को कहकर अपनी आत्मा को पवित्र करते हैं, आचार्य जिनसेन-समंतभद्र आदि उत्तम कवियों की प्रशंसा किया करते है। व उनकी कथाओं को कहकर लोगों को सुनाया करते हैं, अन्य भी अपने धर्मगुरूओं की कथाओं को सुनाया करते है। ऐस पुरूष उत्तम कवियों के समान परमपूज्य पुरूषों के पवित्र चरित्र का निरूपण करते हुए अपने

आत्मा का कल्याण करते रहते हैं। ऐसे महाकवि दो चार भमें ही मोक्ष की प्राप्ति कर लेते हैं।

दीर्घायु पाकर भी सुखी रहने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कसमाद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

दीर्घायुरेवापि सुखी सदा स्यात् ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह मनुष्य दीर्घआयु पाकर भी सदा सुखी रहता है?

उत्तर- व्याघ्रीमुखाद्रक्षित एव जीवो,

विमोचितो बन्दिगृहात्सुबद्धः ।

येन प्रदत्तं विमलौषधान्नं,

दीर्घायुरेवापि सुखी सदा स्यात् ।।154

अर्थ- जो जीव किसी बाघ व सिंह से किसी जीव को बचा लेता है व बंदीगृह में बंधे हुए प्राणियों ाके जो छुड़ा लेताहै अथवा जो रेगी व दुःखी जीवों को निर्मल औषधि व अनन प्रदान किया करता है ऐसा जीव परलोक में जाकर दीर्घायु प्रापत करता है और सुखी भी रहता है।

भावार्थ- दीर्घायु प्राप्त होने से वृद्धावस्था में अनेक प्रकार के दुःख उत्पनन हो जाते हैं। इन्द्रियाँ सर्व शिथिल हो जाती हैं, कानों से सुनाई नहीं पड़ता, नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ता और स्मरण शक्ति सब नष्ट हो जाती है। ऐसी अवस्था में महादुःख होता है। परंतु जो पुरूष जीवों की रक्षा करते हैं, प्रत्येक प्राणी को सुख पहुँचाने का प्रयतन करते है।, रोगीजीवों को औषधियाँ प्रदान करते हैं, भूखों को अनन जल देते हैं और समस्त जीवों के साथ मित्रता का व्यवहार किया करते हैं। ऐसे पुरूष परलोक में जाकर दीर्घायु पाकर भी सुखी रहते है। वृद्धावस्था में भी उनकी इन्द्रियाँ

काम करती हैं और धन कुटुंब आदि सब प्रकार का सुख उनको प्रापत होता है।

पूर्ण अंग-उपांग प्रापत होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! स्या ।

दड्.गैरूपाड्.गैः परिपूर्णदेही ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह जीव अपने शरीर के अंग उपांगों को पूर्णरूप से प्राप्त करता है।

उत्तर- अड्.गाद्युपाड्.गस्य परस्य येन,

रक्षा कृता स्वात्मसमा सदा च।

पराड्.गपुष्टयैच कृतः प्रयत्नो,

भवेत्स मृत्वा परिपूर्णदेही ।।155।।

अर्थ- जो पुरूष सदाकाल अपने समान अन्य जीवों के अंग उपांगों की रक्षा करता है और दूसरों के अंग उपांगों को पुष्ट करने के लिये जो सदाकाल प्रयतन करता है ऐसा जीव परलोक में जाकर अपने शरीर के समस्त अंग और उपांगों से सुशोभित होता है।

भावार्थ- जो दूसरों को दुःख देता है वह स्वयं दुःखी होता है, जो दूसरों के अंग उपांगो को काटता है वह स्वयं अंग उपांगहीन होता है तथा जो दूसरों के अंग उपांगों की रक्षा करता है। दूसरों के अंग उपांगों के रोग को दूर करता है, दूसरां का लालन पालन करता है व उनको पुष्ट बनाता है वह पुरूष परलोक में जाकर अपने अंग उपांगों को पूर्णरूप से प्राप्त करता है, तथा उसके सब अंग उपांग पुष्ट होते हैं।

श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होने का कारण बतलाते है-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च् वद प्रभो ! मे ।

श्रेष्ठे कुले जन्म भवेज्जनानाम् ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह जीव श्रेष्ठ कुल में जन्म लेता है।

उत्तर- परप्रशंसापि निजात्मनिन्दा,

विश्रप्रशान्त्यै प्रियसत्यभाषा,

स्यात्तस्य वा श्रेष्ठकुले सुजन्म ।।156।।

अर्थ- जो पुरूष्ज्ञ दूसरों की प्रशंसा करता है और अपनी निंदा करता है, दीन-हीन पुरूषों की सेवा करता है और समस्त संसार में शांति स्थापित करने के लिये जो प्रिय तथ सत्य वचन बोलता है वह जीव परलोक में श्रेष्ठ कुल में जन्म लेता है।

भावार्थ- श्रेष्ठ कुल में जन्म लेना मोक्ष का साधन है और इसीलिये यह प्रशंसनीय माना जाता है। जो लोग मोक्षमार्ग में लगे हुए जीवों की प्रशंसा करते हैं, साधुओं की स्तुति व वैयावृत्य करते हैं, श्रावक श्राविकाओं की प्रशंसा करते हैं, उनको यशाशक्ति दान दिया करते हैं तथा अपनी निंदा किया करते हैं, स्वयं मोक्षमार्ग में चलने का प्रयतन् करते है। दीन-हीन मनुष्यों को दान देते हैं, उनकी सहायता करते हैं, संसार भर में शांति स्थापना की इच्छा किया करते है। और जो सदाकाल प्रिय और सत्य वचन कहा करते हैं ऐसे पुरूष्ज्ञ परलोक में जाकर उत्तम कुल में उत्पनन् होते हैं।

स्थिर जीविका प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

आजीविकां वा लभते स्थिरां कौ ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-

किस पुण्यकार्य के करने से स्थिर जीविका को प्रापत कर लेता है।

उत्तर- आजीविकायां विनियोज्य दीनान,स्थानस्थितेभय पशुपक्षिकेभ्यः।

दत्त्वान्नपानं हृदि यश्र तुष्ये-,

दाजीविकां शंतिकरां लभेत ।।157।।

अर्थ- जो पुरूष दीन-हीन पुरूषों को आजीविका में लगा देता है, अपने-अपने स्थान में ठहरे हुए पशु पक्षियों को अनन्-जल देकर संतुष्ट होता है ऐसा पुरूष्ज्ञ शांतरीति से चलने वाली और सदाकाल रहने वाली आजीविका को प्राप्त होता है।

भावार्थ- यह जीव निराकुल होने पर सुखी होता है, तथा निराकुल होने पर धर्मकार्य में लग सकता है। बिना आजीविका के यह जीव प्रतिक्षण व्याकुल बना रहता है। अतएव स्थिर जीविका को होना निराकुलता का कारण है। जो जीव दूसरों की जीवों की आजीविका लगाते रहते हैं, भूखों प्यासों को नन् जल दिया करते है, भूखे पशुओं को चारा दिया करते है।, भूखे पक्षियों को दाना डालते है। अथवा और भी अनेक प्रकार से जो अन्य जीवों को निराकुल और सुखी बनाया करते हैं वे जीव परलोक में जाकर स्थिर जीविका प्रापत करते है। और सदाकाल निराकुल होकर सुखी होते है।

नीच कुल में उत्पन्न होने पर भी धन राज्य आदि प्रापत होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च कुलेऽपि नीचे।

जना लभन्ते धनराज्यसत्तम् ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस कार्य के करने से नीच कुल में उत्पनन् होने पर भी इस जीव को धन व राज्य मिल जाता है ?

उत्तर- सेवा कृताऽज्ञानतपःस्थितानां,

येन प्रशंसा विनयः कृतश्र ।

तेभ्यः प्रदत्तं विमलौषधान्नं,

मृत्वा सुखी नीचकुलेपि सः स्यात् ।।157।।

अर्थ- जो जीव अज्ञानतापूर्वक पिश्रण करने वाले मिथ्या गुरूओं की सेवा करता है, प्रशंसा करता है, विनय करता है व उनको अनन्-जल-औषधि आदि देता है वह जीव परलोक में जाकर नीच कुल में उत्पनन् होकर भी सुखी होता है।

भावार्थ- आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जानना सम्यग्ज्ञान कहलाता है, जो साधु होर भी आत्मा के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानते, शरीर को ही आत्मा मान लेते हैं, अथवा आत्मा को सर्वव्यापी मानते हैं, व अणुमात्र मानते हैं, कोई कोई आत्मा और मन को एक मान लेते हैं व आत्मा क्षणिक मानते हैं इस प्रकार विपरीत मानते हुए वे मिथ्या तपश्रण करते हैं। उन्हें जीवों को ज्ञान नहीं, जीवों के स्थानों का ज्ञान नहीं, इसलिए व पंचाग्रि तप तपते हैं, व वृक्षों पर उलटे लटकते हैं, बाल बढ़ा लेते हैं जिनसे अनेक जीवों की हिंसा होती है। इस प्रकार जो साधु अनेक प्रकार से जीवों की हिंसा करने वाला तपश्रण करते हैं उनकी सेवा सुश्रूषा करने से पुण्य तो होता नहीं किंतु थोड़ा बहुत अशुभ कर्मों का बंध अवश्य होता है, इसलिए वे नीच कुल में उत्पनन् होते है तथा अनन्दान देने के कारण वे उस नीच कुल में उत्पनन् होकर भी सुखी अवश्य होते हैं उन्हें धनादिक की व राज्यादिक की प्राप्ति हो जाती है।

सत्यता के साथ आजीविका चलने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च् जनस्य वृत्तिः ।

सत्येन सार्धं चलतीह लोके ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब यह बतलाइये कि किस-किस कारण से लोगों

की आजीविका सत्यता के साथ चलती है।

उत्तर- निर्व्याजतो येन सधार्मिकेभ्यो,

दत्तं च दानं ीुवितत्प्रशंसा ।

कृता दरिद्रऽपि न हीनवृत्तिः,

सत्यै समं स्याद्भुवि तत्प्रवृत्तिः ।।159।।

अर्थ- जो मनुष्य धर्मात्मा पुरूषों को बिना किसी छल कपट के आहार-जल देता है, उन धर्मात्माओं की प्रशंसा करता है अथवा दरिद्र होने पर भी अपनी हीनवृत्ति धारण नहीं करता वह पुरूष परलोक में जाकर सत्यता के साथ अपनी आजीविका चला लेता है।

भावार्थ- हीनवृत्ति धारण करना पाप का कारण है, जिस आजीविका में विशेष हिंसा हो उसको हीनवृत्ति कहते हैं। जो पुरूष दरिद्र होने पर भी हीनवृत्ति् धारण न करता हो व अपनी पापरूप प्रवृत्ति नहीं होने देता, जो अपनी प्रवृत्ति पुण्यरूप रखने का ही प्रयतन् करता है, पापकार्यों से बचने का प्रयतन् करता है, धर्मात्मा पुरूषों को बिना किसी छल कपट के आहार दान देता है, उनकी सेवा सुश्रूषा करता है उनकी प्रशंसा करता है व अन्य भी ऐसे ही ऐसे कार्य किया करता है वह पुरूष परलोक में जाकर निराकुलरूप से रहता है तथा उसकी आजीविका सत्यता पूर्वक चलती रहती है।

अनेक जीवों का एक साि सुखी होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च् वदैककाले ।

ह्यनेकजन्तोश्र सुखोदयः स्यात् ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से एक ही काल में अनेक जीव सुखी होते है। ?

उत्तर- ये पंचकल्याणविधिं विलोक्य,

कृत्वा च भक्त्या जिनतीथर्यात्राम् ।

दत्वान्नदानं मुनयेऽतिहृष्टा-

स्तेष्वैककाले च सुखोदयः स्यात् ।।160।।

अर्थ- जो पुरूष पंचकल्याणक विधि को देखकर व तीथर्यात्रा करके प्रसनन होते है। अथवा जो मुनियों को अनन्दान देकर संतुष्ट होते हैं ऐसे समस्त पुरूषों को एक ही साथ पुण्यकमी का उदय हो आता है और सब जीव एक साथ सुखी हो जाते हैं।

भावार्थ- पंचकल्याणक विधि को देखने के लिए हजारों मनुष्य इकट्ठे होते हैं जिस समय मेरूपर्वत पर भगवान् अभिषेक होता है उस समय हजारों मनुष्य उसको देखते हैं और एक साथ जयजयकार करते हैं। इसी प्रकार दीक्षाकल्याणक,ज्ञानकल्याणक व मोक्षकल्याणक को देखते समय हजारों मनुष्य एक साथ जयजयकार करते हैं, उन सबको एक साथ पुण्य का बंध होता हैं वह पुण्य का बिंध जब उदय में आता है तब भी एक ही साथ आता है और इस प्राकर वे समस्त जीव एक साथ सुखी हो जाते है।। इसी प्रकार सम्मेदशिखर जैसे पूज्य तीर्थस्थानों पर प्रतिदिन सैकड़ों यात्री वंदना करने के लिए जाते हैं और एक साथ जयजयकार करते हुए वंदना करते है। उन सबको पुण्यबंध होता है और वे कर्म एक साथ ही उदय में आकर उन सबको सुखी बना देते हैं। अथवा किसी स्थान पर सैकड़ों हजारों मनुष्य किसी मुनिराज के लिए दिए हुए आहारदान की अनुमोदना करते है। उन सबको एक साथ पूण्यकर्म का बंध होता है तथा एक साथ ही उदय में आता है। ऐसे सब जीवों को एक साथ ही सुख की प्राप्ति हो जाती है।

यद्यपि परिणामों में अन्तर होने से स्थिति अनुभाग में अंतर पड़ सकता है तथापि ऐसे समय में अनेक जीवों के परिणाम प्रायः समान भक्तिरूप होते हैं और ऐसे जीवों के ही एक साथि उन कमी का उदय होता है, जिससे सब जीव एक साथ सुखी होते है।

अनेक जीव जो एक साथ मोक्ष जाते हैं उसका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि योगाच्च वदैककाले ।

प्रयान्ति मोक्षं बहुजीववर्गः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस कार्य के करने से अनेक जीव एक साथ मोक्ष जा विराजमान होते हैं ?

उत्तर- दीक्षाप्रशंसा बहुजीवकैर्ये-

भक्त्या कृता तीर्थकरस्य लोके ।

स्वानन्दतुष्टस्य यतेः स्तुतिर्वा,

त एक काले च शिवं प्रयान्ति ।।161।

अर्थ- जिस समय तीर्थकरपरमदेव दीक्षा धारण करते हैं उस समय अनेक जीव भक्तिपूर्वक उस दीक्षा की प्रशंसा करते हैं अथवा अनेक जीव अपने शुद्ध आत्मा में लीन रहने वाले मुनियों की स्तुति व प्रशंसा एक साथ मिलकर करते है। प्रायः ऐसे ही पुरूष एक ही साथ मोक्ष में जा विराजमान होते है।

भावार्थ- तीर्थकरपरमदेव जी दीक्षा धरण करते हैं तब लौकांतिक देव आकर उन तीर्थकर भगवान् की स्तुति करते हैं तथा तो प्रेम उत्पनन् हो सकता है और न द्वेष ही उत्पनन् हो सकता हैं पहले भव में जिन जीवों ने अपना उपकार किया है अथवा जो अपने द्वारा उपकृत हुए है उन्हें देखकर मोह उत्पनन् हो जाता है और इसीलिए उनसे प्रेम प्रगट होने लगता है पहले जन्म के मित्र व भाई-बंधु भी कहीं भी भिनन्-भिनन् स्थानों में उत्पनन् होते है। परंतु जब वे जीव परस्पर एक दूसरे को देखते हैं तब परस्पर प्रेम उत्पनन् हो ही जाता है। यही समझकर किसी जीव से द्वेष नहीं करना चाहिए किंतु सबका उपकार करते रहना चाहिए।

दुःख में सहायक होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- किं कारणं मेस्ति विना ही कोऽपि ।

दुःखे सहायो भवतीह जीवः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि बिना कारण के ही कोई भी जीव अपने किसी दुःख में सहायक हो जाता है इसका क्या कारण है?

उत्तर- यस्मै प्रदत्तं वसनौषधान्नं,

यस्यैव रक्षा विपदि त्वया चेत् ।

कृता विशेषा हृदि यत्प्रशंसा,

स स्यात्सहायो विषमेपि दुःखे ।।163।।

अर्थ- पहले जन्म में जिस किसी के लिये वस्त्र दिया है औषधि दी है व अनन्-जल दिया है, विपत्ति में किसी की रक्षा की है व किसी की दय से विशेष प्रशंससा की है ऐसा जीव परलोक में जाकर भी किसी आपत्त के समय में भी सहायक हो जाता है।

भावार्थ- पहले जन्म में जिस किसी का हम लोग उपकार करते है। व जिस किसी को किसी आपत्त बचाते हैं, किसी ऱ्राग से बचाते हैं या उसकी इच्छानुसार पदार्थ की प्राप्ति करा देते हैं, जिस किसी की सेवा

सुश्रूषा करते हैं अथवा जिस किसी परदेशी की सहायता कर देते हैं, किसी बिछुड़े हूए को उसके स्थान पर पहुचा देते हैं, अन्य किसी भीप्राकर से जिस किसी का उपकार करते हैं वह जीव इस जन्म में भी अपने ऊपर किसी प्राकर की आपत्त व दुःख आने पर अकस्मात् आकर सहायक बन जाता है और उस दुःख को दूर कर देता है। यही समझकर सदाकाल दूसरे का दुःख दूर करते रहना चाहिये व दूसरों का उपकार करते रहना चाहिये।

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रीाो ! मे ।

व्ययो धनादीावतीह धर्मे ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस

पुण्यकार्य के करने से इस जीव का धन व अन्य पदार्थ धर्म के ही काम में लगते हैं ?

उत्तर- धनव्ययं कुर्वत एव धर्मे,

लीनान् सुविद्याध्ययनेपि जीवान् ।

प्रभावनायां प्रविलोक्य तुष्येद्,

धर्मे सदा तस्य धनव्ययः स्यात् ।।164।।

अर्थ- जो लोग किसी भी धर्मकार्य में व धर्म की प्रभावना करने में अपना धन खर्च करते हैं अथवा जो मोक्षमार्ग का प्रतिपादान करने वाले धर्मशास्त्रों के पठन-पाठन में तल्लीन रहते हैं ऐसे जीवों को देखकर जो अत्यंत संतुष्ट होते हैं उन जीवों का धन सदाकाल धर्म में ही खर्च होता है।

भावार्थ- जिनके धार्मिक संस्कार पहले जन्म से होते हैं, जिनको पहले जन्म से ही धर्म प्रेम है, जो पहले जन्म में भी धर्माकर्यों में खर्च होते देखकर संतुष्ट होते थे, जो धर्म की प्रीावना में खर्च होते देखकर प्रसनन होते थे, अथवा जो धर्म शास्त्रों को स्वाध्याय करने वालों को देखकर व धर्मशास्त्रों को अध्ययन करने वाले विद्यार्थिर्यों को देखकर प्रसनन होते थे, व अन्य भी अनेक धार्मिक संस्कारों को देखकर जो अत्यंत प्रसनन होते थे ऐसे जीव इस लोक में भी आकर धर्म प्रेम रखते हैं, उनके संस्कार

सब धार्मिक होते हैं और उनका धन और अन्य समस्त पदार्थ धर्म के ही काम में खर्च होत हैं, यही समझकर धर्मप्रेम सदा बनाये रखना चाहये। परंपरा से यही जीवों के लिये मोक्ष का साधन है।

श्रुतज्ञानी होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रीाो ! मे।

जीवो भवेन्कौ श्रुतबोधधारी ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह किस-किस पुण्यकार्य के करने से श्रूतज्ञान को धारण करने वाला होता है।

उत्तर- आज्ञापि भक्त्या परिपालिता हि,

गुरोश्र सेवा विनयोपचारः ।

येन प्रशंसापि कृतात्मशुद्धे-

र्भवेत्स भव्यः श्रुतबोधधारी ।।165।।

अर्थ- जो पुरूष भक्तिपूर्वक गुरू की आज्ञा का पालन करते हैं भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करते हैं उनका विनय करते हैं व उनकी सुश्रूषा करते हैं और जो उनकी स्तुति व प्रशंसा करते हैं अथवा जो आत्मा के शुद्ध स्वरूप की प्रशंसा किया करते हें ऐसे भव्य जीव श्रुतज्ञान को धारण करने वाले होते हैं।

भावाथ्र- श्रूतज्ञान श्रुतज्ञज्ञनावरण कर्म के क्षयोपशम से होता है तथा श्रूतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम गुरूभक्ति करने से, गुरू की सेवा करने से, उनकी आज्ञा का पालन करने से, उनकी प्रशंसा करने से, भगवान् जिनेंद्रदेव के कहे हुए वचनों का प्रचार करने से, जिनवाणी का पठन-पाठन करने व कराने से

और जिनवाणी का पाठन-पाठन करने वालों की सहायता करने से होता है।

अभिप्रयाय यह है कि जो भव्यजीव श्रुतज्ञान की वृद्धि करता व कराता रहता है वह जीव अगले जन्म में अवश्य ही उत्तम श्रूतज्ञान को धारण करने वाला होता है। यही समझकर भव्य जीवों को सदाकाल जिनवाण की ही सेवा करते रहना चाहए और उसी का ओायास करते रहना चाहिए।

शीलवान् होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

सच्छीलधारी ीावतीह जीवः ।।

अर्थ- हे भगवनृ ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह जीव परलोक में जाकर शीलवान् उत्पनन होता है।

उत्तर- सुशीलवत्याः सुजनस्य सेवा,

स्वानन्दभाजः सुगुरोः सुसङ्.गः ।

श्रीदा कृता येन निजात्मचर्चा,

स स्यान्मनुष्यश्र सुशीलधारी ।।166।।

अर्थ- जो मनुष्य पहले जन्म में शीलवती स्त्रियों की व शीलवान सज्जन पुरूषो की सेवा सुश्रूषा करता है, अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप में लीन रहने वाले वीतराग निर्ग्रंथ गुरूओं के समीप रहकर उनकी सेवा किया करताहै, और अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी को देने वाली अपने अआत्मा के शुद्ध स्वरूप की चर्चा किया करता है, वह मनुष्य इस लोक में आकर अत्यंत शीलवान् होता है।

भावार्थ- जिस जीव के शील पालन करने की इच्छा होती है, जो शीलपालन करने को श्रेष्ठ समझता है, और आत्मा के यथार्थ स्वरूप को समझता है वह जीव शीलवान पुरूषों की सेवा सुश्रूषा किया करता है।

व शीलवती स्त्रियों को उत्तम समझकर उनकी प्रशंसा किया करता है। अथवा परम शीलव्रत व परम ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले और अपने शुद्ध आत्मा में लीन रहने वाले वीतराग निर्ग्रंथ गुरूओं के समीप रहकर उनकी सेवा सुश्रूषा किया करता है। या परम ब्रह्मचर्य शुद्ध आत्मा का स्वरूप जानने के लिए उसकी चर्चा किया करता है, उसका मनन अध्ययन और ध्यान किया करता है ऐसेा पुरूष परलोक में जाकर परम शीलवान् होता है।

सर्वप्रिय होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च् वद प्रभो ! मे ।

भवेन्मनुष्यः सकलप्रियः कौ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से यह जीव इस संसार में सर्वप्रिय होता है।

उत्तर- स्नेहो मिथो येन कृतोऽनुरागः,

सद्धर्मदेवादिगुरौ क्षमादौ ।

निजात्मनिन्दा च परप्रशंसा,

स एव भव्यः सकलप्रियश्र ।।167।।

अर्थ- जो पुरूष धर्मात्मा भाइयों मे प्रेम धारण करता है, धर्म में अनुराग रखता है, भगवान् अरहंत देव में व वीतराग निर्ग्रंथ गुरू में अनुराग रखकर उनकी भक्ति करता है, उत्तम क्षमा आदि दश प्रकार के धर्म में अनुराग धारण करता है, धर्मात्मा जीवों की प्रशंसा और अपनी निंदा किया करता है, ऐसा भव्य जीव इस संसार में सबको प्रिय लगने वाला होता है।

भावार्थ- जो मनुष्य धर्म में प्रेम रखता है वही मनुष्य धर्मात्माओं में प्रेम रख सकता है तथा जो धर्म में प्रेम रखता है वही पुरूष देव शास्त्र गुरू

की भक्ति व उनकी पूजा-आराधना किया करता है। इस प्रकार जो पुरूष धर्मप्रिय होता है वही पुरूष अगल7 जन्म में जाकर सर्वप्रिय बन जाता है। देखो! धर्म में प्रेम रखने के कारण व धर्म को पूर्ण रीति से पालन करने के कारण तीर्थंकर

परमदेव होत हैं और वे तीर्थंकर समस्त देवों को समस्त मनुष्यों को और समस्त तिर्यंचों को प्रिय होते हैं सामान्य केवली भी धर्म पालन करने के कारण ही होते हैं और इसीलिये वे भी सर्वप्रिय ही होते हैं। अतएव सर्वप्रिय बनने के लिये धर्म पर अनुराग रखना उत्यंत आवश्यक है।

घर घर मंगल गान होने का कारण बतलाते है-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

गृहे गृहे मंगलगीतवाद्यम् ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से घर-घर मंगल गीत और वाद्य होते रहते हैं ?

उत्तर- महोत्सवो येन जिनार्चनादि,

भक्त्या कृता तीर्थंकरस्तुतिश्र।

दूरीकृतं दुःखचयं जनानां,

सन्मङ्.गल स्यात्खलु तद्गृहादौ ।।167।।

अर्थ- जो पुरूष भक्तिपूर्वक भगवान् जिनेन्द्रदेव की पूजा करता है, रथोत्सव-प्रतिष्ठोत्सव आदि उत्सव करता है, भगवान् तीर्थंकर परमदेव की स्तुति किया करता है, और जो समस्त जीवों के दुःखों को दूर करता है, ऐसे पुरूष के घर सदाकाल मंगल गीत हुआ करते हैं।

भावार्थ- जो पुरूष पहले जन्म में बार-बार धमोत्सव किया करता है, कभी रथयात्रा उत्सव कराता है, कभी जिनालय बनवाकर उसका उत्सव कराता है, कभी जिनप्रतिमा बनवाकर उनकी प्रतिष्ठा का महाउत्सव

कराता है, कभी किसी व्रत का उद्यापन कराता है और कभी किसी व्रत का उद्यापन कराकर उत्सव मनाता है। इस प्रकार जो मनुष्य सदाकाल धर्मोत्सव मानाया करता है वह पुरूष परलोक में जाकर भी अनेक उत्सवों का पात्र होता ह।। उसके घर प्रतिदिन उत्सव होता रहता हैं, प्रतिदिन गीत मंगल होते हैं, कभी पौत्रोत्सव के होते हैं कभी धनप्राप्ति के होते हैं, कभी किसी विजय पर होते हे।

यही समझकर प्रत्येक जीव को सदाकाल धर्मोत्सव मनाते रहना चाहिये।

मिष्ट वाणी प्रापत होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च् वदेति वाणी ।

प्रिया भवेत्कोकिलवज्जनानाम् ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से इस मनुष्य को कोकिल के समान मिष्ठ वाणी प्रापत होती है ?

उत्तर- सरस्वतीनां सततं सुसेवां,

जिनेन्द्रभक्तिं कृतवान् सुगीत्या ।

सम्यक् प्रयत्नं प्रियभाषणार्थं,

तेषां भवेत्कोकिलतुल्यवाणी ।।169।।

अर्थ- जो पुरूश सरस्वती देवी की सदाकाल सेवा करता है, जो मीठे-मीठे गीत गाकर भगवान् जिनेन्द्रदेव की भक्ति करता है और जो प्रियभाषण करने के लिए भरसक प्रयतन किया करता है उन पुरूषों की वाणी परलोक में जाकर कोकिल के समान मिष्ट और प्रिय होती है।

भावार्थ- जो पुरूष पहले जन्म में अनेक प्रकार के स्तोत्र पढ़कर, अनेक प्रकार के गीत गाकर, अनेक प्रकार की गद्यपद्यमय कविताबनाकर व अन्य किसी भी प्रकार से ीागवान् जिनेन्द्रदेव की भक्ति

करता है अथवा जो भगवान जिनेन्द्रदे की वाणी का पठन-पाठन करता है, लिखकर व लिखाकर जिनालय मे समर्पण करता है या चारों प्रकार के संघ काक समर्पण करता है अथवा गुरू को भेंट करता है, शास्त्रों को श्रेष्ठ बंधन में बांधकर रखता है, भव्य जीवों के लिए उन शास्त्रों के पठन-पाठन की व्यवस्था कर देता है, उनके रखने के स्थान व साधन बनवा देता है और इस प्रकार जो सरस्वती माता की सेवा किया करता है तथा सदाकाल प्रिय मिष्ठ भाषण करने के लिए प्रयतन किया करता है ऐसे पुरूष को परलोक में जाकर अत्यंत मिष्ट स्वर प्रापत होता है जिससे उसकी वाणी कोकिल के समान सबके लिये प्रिय और मिष्ट मालूम होती है यही समझकर भव्य जीवों को सदाकाल भगवान् की भक्ति करते रहना चाहये और सदाकाल जिनवाणी माता की सेवा करते रहना चाहिये।

संतोष और शांति के लाभ का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रीाो ! स्यात् ।

सन्तोषशान्तेश्र विशेषलाभः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से संतोष और शांति का विशेष लाभ होता है।

उत्तर- निर्ग्रथसाधोश्र जिनागमस्य,

चित्तक्षजेतुश्र विशेषसेवा ।

कृता स्तुतिर्येन च तस्य सड्.गः,

सन्तोषशान्तेश्र विशेषलाभः ।।170।।

अर्थ- जो पुरूष वीतराग निर्ग्रंथ साधुओं की विशेष सेवा करता है, जिनवाणी की विशेष सेवा करता है, इन्द्रिय और मन को जीने वालों की विशेष सेवा करता है, अथवा जो देवशस्त्र-गुरू की स्तुति करता रहता है ऐसे पुरूष को संतोष और शांति का विशेष लाभ हुआ करता है

भावार्थ- जो पुरूष संतोष और शांति का स्वरूप समझते हैं, तथा

जो आत्मा के शुद्ध स्वरूप में ही यथार्थ संतोष और शांति समझते, ऐसे ही पुरूष याार्थ संतोष और यथार्थ शांति को धारण करने वाले वीतराग निर्ग्रंथ गुरूओं की सेवा किया करते है। उनकी स्तुति किया करते हैं उनका वैयावृत्य किया करते हैं, और उनकी आज्ञा का पालन किया करते हैं इसी प्रकार वे मनुष्य भगवान् जिनेन्द्रदे व की भक्ति, स्तुति पूजा आराधना किया करते है।, जिनवाणी की सेवा किया करते है, जिनवाणी के पठन-पाठन का आस्वादन किया करते हैं, और सब प्रकार से जिनवाणी माता की सेवा और भक्ति किया करते हैं, ऐसे ही महापुरूष उस परमसंतोष और परमशांति का विशेषलाभ प्रापत किया करते हैं। देव, शास्त्र, गुरू के समागम और उनकी सेवा से उनके आत्मा में परमशांति और परमसंतोष प्रापत हो जाता है। यह उनकी शांति और संतोष का विशेष लाभ है।

पापकार्यों से होने वाली धन की वृद्धि का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च सदापि जन्तो-

वृद्धिर्भवेत्पापकृते धनादेः ।।

अथ्र- हे भगवन् अब कृपाकर यह बतलाइये कि कैसे पुण्यकार्य से पाप में लगने वाले धन की वृद्धि होती है ?

उत्तर- परोपकारः खलु केवलं यै-

र्मिथ्याव्रतं वा कुतपः कृतं चेत् ।

स्यादेव तेषामपि तत्प्रीावाद्,

वृद्धिः सदा पापकृते धनादेः ।।171।।

भुक्तं यथान्नं ह्युदरे च यावत्,

तिष्ठेन्न तावत्तुदति क्षुधादिः।

पूर्वार्जितं पापमपीह यावत्,

जन्तोर्न सत्कार्यकृतेपि शांतिः ।।172।।

अर्थ- जो पहले जन्म में केवल परोपकार किया करते है, मिथ्याव्रतों का पालन करते हैं, मिथ्या तपश्चरण करते है। ऐसे पुरूषों के उस मिथ्यातपश्चरण आदि के प्रीााव से अनेक पाप उत्पनन करने के लिये धनादिक की वृद्धि होती है। जिस प्रकार जब तक भूख की बाधा नहीं सताती तब तक भोजन किया हुआ अनन पेट में बना ही रहता है, उसी प्रकार जब तक जीवों के सत्कार्य व शांति नहीं होती तब तक पूर्वोपार्जित पापकर्म बने ही रहते है।

भावार्थ- उपकार दो प्रकार का होता है पहला उपकार अपने आत्मा का कल्याण करना और दूसरा उपकार अन्य जीवों की आत्मा का कल्याण करना है। जो जीव पहले अपने आत्मा का कल्याण कर लेते हे।` ही जीव अन्य आत्माओं का कल्याण कर सकते हैं, जो जीव स्वयं अभक्ष्य ाक्षण करता है वह दूसरों के लिए अभक्ष त्याग करने का उपदेश नहीं दे सकता। यदि किसी प्रयोजनवश देता भी है तो उस उपदेश का कोई असर नहीं होता । गृहस्थों के हजारों उपदेशों को जो असर होता है उससे कहीं अधिक असर मुनिराज के एक वाक्य का हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सबसे पहले अपने आत्मा का कल्याण कर लेना चाहिये। अपने आत्मा का कल्याण हो जाने पर अन्य जीवों का कल्याण स्वयं होने लगता है। अतएव जो पुरूष अपने आत्मा का कल्याण न करते हुए केवल दूसरों को उपदेश दिया करते है। उनका वह उपदेश देना व उपकारना मिथ्या है। इसी प्रकार मिथ्या तपश्चरण करने से व मिथ्याव्रतों के पालन करने से आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता। दिनभर उपसास करना और फिर रात में भोजन करना पुण्य का कारण नहीं हों सकता। उतएव ऐसे तपश्चरण व व्रतों के पापानुबंधी पुण्य का बंध होता है। जिस पुण्य के उदय से पाप का बंध होता हो उसको पापानुबुंधी पुण्य कहते है। ऊपर लिखे मिथ्यातपश्चरण व मिथ्याव्रतों से व मिथ्या तपस्वियों को दान देने से परलोक में जाकर धन की प्राप्ति हो जाती है, परंतु ऐसा धन पापकार्यों में ही लगता है, किसी व्यसन में लगता है व किसी हिंसा के साधन में लगता हैं इस प्रकार उससे महापाप उत्पनन होकर नरकादि के दुःख प्रापत होते

है।। यहां पर इतना और समझ लेना चाहिए कि मिथ्याव्रत आदि के द्वारा जो पापानुबंधी पुण्य का बंध होता है उनका उदय अब तक बना रहता है बत बक उस धन के द्वारा होने वाले व्यसनादिाकें से उत्पनन् हुए पाप कर्म उदय में नहीं आते । जब उस पापानुबंधी पुण्य का उदय समाप्त हो जाता है तब उन पापों का उदय होता है। पापी जीवों के सुखी होने का यही कारण है।

देव भी दास हो जाते है।, इसका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च् नृणां भवेयुः ।

सर्वेपि देवाः सुजनाश्र दासाः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से देव भी दास हो जाते हैं, तथा सज्जन भी दास हो जाते हैं ?

उत्तर- सुधार्मिका वा सुखिनश्र जीवाः,

भवन्तु भक्ताः सुगुरोर्जिनस्य ।

पुरेति भावश्र बभूव येषां,

सर्वेपि देवाश्र भवन्ति दासाः ।।173।।

अर्थ- इस संसार में समस्त जीव सुखी हों, समस्त जीव धार्मिक हो, समस्त जीव भगवान् जिनेन्द्रदेव के भक्त हों और समस्त जीव वीतराग निर्ग्रंथ गुरूओं के भक्त हों इस प्रकार क उत्तम भाव जिनके होते है। वे जीव अगले जनम में जाकर उत्तममनुष्य होते हैं और देव लोग भी उनकी सेवा किया करते है।

भावार्थ- इस जीव के जैसे परिणाम होते हैं वैसे ही शुभ व अशुभ कर्मों का बंध हुआ करता है। जो जीव मोक्षमार्ग में लगा रहता है, तथा दूसरों को मोक्ष्मार्ग में लगाने के लिए सदाकाल प्रयतन् किया करता है अथवा सब ीव अपने-अपने पापकर्मो का त्याग कर दें और सब जीव

अहिंसामय पवित्र जैनधर्म का पालन करें, समस्त जीव सुखी हो इस प्राकर जो अपने परिणामों को सदाकाल धर्मध्यान में लगाता रहता है वह जीव उस धर्मध्यान के प्रभाव से स्वर्ग में उत्तमदेव होता है। वहां पर भी अनेक देव उसके दास होते हैं तथा वहां से आकर चक्रवर्ती आदि उत्त्मपदक को धारण करने वाला मनुष्य होता है उस समय में अनेक देव उसकी सेवा करता है यही समझकर भव्य जीवों को सदाकाल अपने परिणाम शुभ व धर्मध्यानरूप ही बनाये रखना चाहिए और सदाकाल मोक्षमार्ग में लगे रहना चाहिए।

खर्च करने पर भी धन की वृद्धि होने का कारण उदाहरण सहित दिखलाते है-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रीाो ! मे ।

धनस्य वृद्धिर्भवति व्ययेऽपि ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से खर्च करने पर भी धन की वृद्धि होती रहती है।

उत्तर- सुपात्रदाने हि धनव्ययेन,

वृद्धिर्धनादेश्र भवेन्न हानिः ।

निष्कासनात्कूपजलस्य बुद्धे-

र्यीान्यविद्यार्थिजनाय दानात् ।।174।।

अर्थ- वीतराग निर्ग्रंथ मुनियों को आहारदान देने से व औषधदान देने से, वसति का बनवा देने से शास्त्रदान देने से सदाकाल धन की वृद्धि होती रहती है सुपात्रों को दान देने से धन की हानि कभी नहीं होती। जैसे कि कुए से जल निकालने पर भी जल की कभी कमी नहीं होती अथवा विद्याथिर्यों को विद्या पढ़ाने से व देने से बुद्धि में किसी प्रकार की कमी नहीं होती, किन्तु विद्यादान देने से बुद्धि की वृद्धि होती है।

भावार्थ- जिस प्रकार प्रतिदिन कुए से पानी निकाला जाता है तब

भी कुए में पानी उतना ही बना रहता है, जितना निकलता है उतना ही आ जाता है। जिस प्रकार विद्या दान देने से विद्या की कमी नहीं होती किंतु विद्याा और बुद्धि दोनों की वृद्धि होती रहती है उसी प्रकार सुपात्रों को दान देने से धन में कभी कमी नहीं होती, किंतु सुपात्रदान देने से जो पुण्य की वृद्धि होती है उससे धन की वृद्धि ही होती रहती है यही समझकर सुपात्रों के लिए सदाकाल चारों प्रकार का दान देते रहना चाहिए।

सर्वत्र कीर्ति फैलने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

सर्वत्र कीर्तिर्भवतीह नृणाम् ।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्य कार्य के करने से मनुष्यों की कीर्ति सर्वत्र फैलती है ?

उत्तर- मानापमानो भवदश्र येन,

त्यक्तः कृतः सर्वहिताय यत्नः ।

तस्यैव कीर्तिः शशिनो विशुद्धा,

समस्तविश्रे प्रसरेत्प्रभेव ।।175।।

अर्थ- जो पुरूष संसार को बढ़ाने वाले अपने मान-अपमान का सर्वथा त्याग कर समस्त जीवों के हित के लिये प्रयतन करता रहता है उसकी चंद्रमा की प्रभा के समान निर्मल कीर्ति समस्त संसार में फैल जाती है।

भावार्थ- जिस प्रकार चंद्रमा की निर्मल चांदनी समस्त संसार में किया करता है वह मनुष्य परलोक में जाकर दिव्य शरीर को धारण करने वाला देव होता है और वहाँ से आकर कामदेव कामदेव के समान मनोहर शरीर को धारण करने वाला उत्तम मनुष्य होता है।

श्रेष्ठ मनुष्यों में भी माननीय होने का कारण बतलाते है-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च जना- प्रभो ! ये ।

सन्मान्यतां श्रेष्ठजनेऽपि यान्ति ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्य कार्य के करने से यह जीव श्रेष्ठपुरूषों में भी माननीय माना जाता है।

उत्तर- पुराभवे सर्वनृणां हिताय,

कृतेः प्रयत्नो विनयोपचारः ।

सतां यथायोग्य नतिक्रिया यै-

स्ते योग्यतां श्रेष्ठजनेपि यान्ति ।।177।।

अर्थ- जो जीव पहले जन्म में समस्त जीवों के हित के लिए प्रयतन् किया करते हैं अथवा जो पुरूष सज्जन पुरूषो का विनय किया करते हैं, उनकी सेवा सुश्रूषा किया करते हैं व यथायोग्य रीति से उनको नमस्कार किया करते हैं ऐसे पुरूष परलोक में जाकर श्रेष्ठ मनुष्यों में भी सवीत्तम योग्यता को धारण करते हैं।

भावार्थ- योग्य काम करने से योग्यता प्रापत होती है। जो जीव समस्त जीवों के हित के लिए प्रयतन् करते रहते हैं, दुःखी जीवों को दुःख दूर करते है।, रोगियों की सहायता करते हैं, भूखों को अनन् जल देते हैं, व सज्जनों की सेवा सुश्रूषा किया करते हैं, उनकी वैयावृत्य किया करते हैं व ऐसे और भी उत्म-उत्तम धार्मिक कार्य करते हैं वे मनुष्य परलोक में जाकर श्रेष्ठ पुरूषो में भी अत्यंत योग्य व सबके माननीय उत्तम मनुष्य होते हैं।

पापानुबंधी पुण्य का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि कार्याच्च् जनश्र लोके ।

पापनुबन्ध्यं च करोति पुण्यम् ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस कार्य के करने से यह मनुष्य पापानुबंधी पुण्य उत्पनन् करता है।

उत्तर- मन्दोदयात्कर्मण एव जीवः,

मिथ्यात्वयुक्तं च करोति पुण्यम् ।

सुखस्य लेशं भुवि दर्शयित्वा,

प्राप्नोति जीवं भुवि पापमार्गे ।।178।।

अर्थ- पापकर्मों के मंद उदय होने से यह जीव मिथ्यात्व के साथि पुण्य कार्य करता है वह पुण्यकार्य परलोक में जाकर थोड़ा सा सुख दिखला देता है, परंतु फिर इस जीव को पापमार्ग में ही घसीट ले जाता है।

भावार्थ- जो जीव मिथ्यात्व के साथ थोड़ा सा पुण्यकार्य करते हैं उनके पुण्यबंध तो थोड़ा होता है, परंतु मिथ्यात्व के निमित्त से पापकर्मों का बंध अधिक होता है। ऐसे पुण्य को पापानुबंधी पुण्य कहते है। ऐसे पुण्य के उदय से थोड़ा सा सुख मिलता है परंतु उस सुख से व उस पुण्य के उदय से मिले हुधनादिक के द्वारा वह पापकर्म अधिक करने लगता है और रि उस पाप के फलरूप नरकादिक के दुःख भोगता है। इसीलिये इस जीव को सबसे पहले मिथ्यात्व का त्याग करना चाहिये। समस्त दुःखों को मूल कारण यही है।

पुण्यानुबंधी पुण्य का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कथं कादयं भुवि भव्यजीवः ।

पुण्यानुबन्ध्यं च करेति पुण्यम् ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव कब और किस प्रकार पुण्यानुबंधी पुण्य प्राप्त करता है ?

उत्तर- भव्यो जनो दर्शनमोहनाशाद्,

यत्किंचिदेवं हि शुभं करोति ।

पुण्यानुबन्ध्यं कथितं तदेव,

तद्योगतो याति शिवं स योगी ।।179।।

अर्थ- जो भव्यजीव दर्शनमोहनीय कर्म के नाश होने से जो कुछ भी पुण्यकार्य करता है उसको पुण्यानुबंधी पुण्य कहते हैं, इस पुण्यानुबंधी पुण्य क निमित्त से यह योगी अनुक्रम से मोक्ष प्रापत कर लेता है।

भावार्थ- इस संसार में दर्शनमोहनीय कर्म ही समसत पापों का कारण है जब यह दर्शनमोहनीय कर्म सर्वथा नष्ट हो जाता है और निर्मल सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है तब यह जीव अपने आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जानने और देखने लगता है तथा साथ में आत्मा से भिनन् शरीरादिक पर पदार्थी का स्वरूप भी समझने लगता है। उन दोनों का स्वरूप समझकर वह आत्मा के शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करने लगता है और आत्मा के शुद्ध स्वरूप से भिनन् राग द्वेष आदि समस्त विभाव परिणामों का त्याग कर देता है, तथा धनधान्य व शरीरादिक से भी ममत्व को त्याग देता है। ऐसी अवस्था में उससे पापकार्य तो कभी बनता ही नहीं है वह जो कुछ करता है वह पुण्यकार्य व शुभकार्य ही होता है। ऐसे पुण्यकार्य से जो पुण्यकर्म का बंध होता है उसे पुणनुबंधी पुण्य कहते है।। ऐसे पुण्यकर्म के निमित्त से तीर्थंकर चक्रवर्ती, कामदेव, बलदेव आदि उत्तम पद को धारण करने वाली उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर जैनेश्रवरी दीक्षा लेता है और घोर तपश्ररण कर समसत कर्मी का नाश कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यही समझकर समस्त भव्य जीवों को सबसे पहले मोहनीयकर्म का नाश कर सम्यग्दर्शन

प्राप्त कर लेना चाहिये। सम्यग्दर्शन के प्राप्त होने से अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती हैं

परस्पर शांति का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे।

मिथो जनानां भवतीह शांतिः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस

पुण्यकार्य के करने से लोगों में परस्पर शांति बनी रहती है ?

उत्तर- गुरूपदेशामृतपानतृप्ता,

दक्षा सदा ये स्वपरोपकारे ।

तेषां जनानां शिववाछकाना-

मिहान्यलोकेऽपि मिथः प्रशान्ति ।।180।।

अर्थ- जो पुरूष वीतराग निर्ग्रंथ गुरूओं के उपदेशरूपी अमृत के पीने से सदाकाल तृप्त रहते हैं, और जो अपने आत्मा का मकल्याण करने में तथा अन्य जीवों के कल्याण करने में सदाकाल चतुर रहते हैं ऐसे मोक्ष इच्छा करने वाले जीवों को इस लोक में सबके साथ शांति रहती है और परलोक में भी सदाकाल शांति रहती है।

भावार्थ- जो आत्मा के शांत स्वभाव को समझते हैं, वे ही भव्य जीव सदाकाल शांत रहते हैं। जो जीव पंचपरमेष्ठ की भक्ति करते हैं, सदाकाल उनकी पूजा करते हैं, आर्चा-उपाध्याय-साधुओं की आज्ञा का पालन करते हैं, उनके उपदेश से अपने आत्मा को तृप्त करते हैं, व्रत उपवास व ध्यान आदि के द्वारा अपने आत्मा का कल्याण करते हैं तथा अन्य भव्य जीवों को भी उसी आत्मकल्याण के मार्ग में लगाते रहते हैं। वे जीव इस लोक में भी शांति और निराकुलता के साथ व्यतीत करते हैं और परलोक में जाकर भी परमशांत अवस्था को प्रापत हो जाते हैं।

सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न होने का कारण बतलाते है-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रीाो ! मे ।

सर्वाार्थिसिद्धिं लभते मनुष्यः ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से सर्वार्थसिद्धि में उत्पनन होता है ?

उत्तर- धर्मानुरागात्स्वपदाभिलाषात,

स्वस्वादिनः पचगुरोः कृपाब्धेः ।

सेवाविशेषाच्छूभशुक्लयोगात,

सर्वार्थसिद्धिं लभते मनुष्यः ।।181।।

अर्थ- जो मनुष्य सदाकाल धर्म से अनुराग रखते हैं, अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप के प्राप्त होने की अभिलाषा रखते हैं, अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अनुभव करते रहते हैं, कृपा के सागर ऐसे पंचपरमेष्ठियों की विशेष सेवा किया करते हैं और धर्मध्यान तथा शुक्लध्यापन को धारण किया करते हैं ऐसे जीव सर्वार्थसिद्धि में जाकर उत्पनन होते हैं।

भावार्थ- स्वर्ग में सवार्थसिद्धि सबसे ऊपर और सबसे उत्तम विमान है, वहाँ के देवों का शरीर एक हाथ का होता है वे अहमिन्द्र कहलाते हैं, सब समान ऋद्धिको धारण करने वाले होते हैं। उनकी आयु तेतीस सागर की होती है। वे अपना विमान छोड़कर कहीं नहीं जाते । वहीं पर बैठे-बैठै केवल तत्व की चर्चा किया करते हैं और आयु पूर्णकर उत्तम मनुष्य होते हैं वहां तपश्चरण कर नियम से मोक्ष प्राप्त करते हैं। सर्वार्थसिद्धि के देव घोर तपश्चरण करने से होते है।, उत्कृष्ट धर्मध्यान व शुक्ल ध्यापन से उत्पनन से होते हैं, व पंच परमेष्ठी की विशेष सेवा करने से होते हैं आत्मा के शुद्धस्वरूप में लीन होने से होते हैं और उत्कृष्ट धर्म धारण करने से होते हैं।

तीर्थकर होने का कारण बताते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।

प्रबध्यते तीर्थकरस्य पुण्यम् ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से तीर्थंकर होने योग्य पुण्यकर्म का बंध होता है ?

उत्तर- संसारसिन्धी पतितान् जनान् हि,

वोध्दृत्य यत्नो भुवि यैः कृतश्च ।

शुद्धे सदा स्थापयितुं स्वधर्मे,

तैर्बध्यते तीर्थाकिरस्य पुण्यम् ।।182।।

अर्थ- जो सम्यग्दृष्टि पुरूष संसाररूपी महासागर में पड़े हुए जीवों को उठाकर अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप में स्थापन करने के लिए प्रयतन करते रहते हैं ऐसे पुरूष तीर्थंकर होने योग्य पुण्य प्रकृतिका बंध करते हैं।

भावार्थ- जो पुरूष शुद्ध सम्यग्दृष्टि होते हैं ताकि सोलह कारण भावनाओं का चितवन करते रहते है। और जो समस्त जीवों के दुःखों को दूर करने की तााि सबको मोक्ष प्राप्त करा देने की भावना रखते है। ऐसे जीवों के तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है। अपने सम्यग्दर्शन को निर्मल रखना, पंच परमेष्ठियों की विनय करना शील औरव्रतों को अतिचार रहित पालन करना, निरंतर ज्ञान का अभयास करना, संसार से भयभीत रहना, शक्ति के अनुसार तप करना शक्ति के अनुसाार दान देना, साधुओं की सेवा करना, वैयावृत्य करना, अरहंतदेव की भक्ति करना, आचार्य परमेष्ठी की भक्ति करना, उपाध्यायों की भक्ति करना, शास्त्र की भक्ति करना, छह आवश्यक कों कभी न छोड़ना, धर्म की प्रभावना करना और धर्मात्माओं में अनुराग रखना ये सोलह भावनाएँ है। इनका चिंतन करने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है तथा उसके उदय से समवसरण की विभूति प्राप्त होती है। आठ प्रातिहार्य और चैंतीस अतिशय प्राप्त होते हैं और सब इन्द्र आकर उनकी सेवा करते है।। यह सब विभूति केवल ज्ञान उत्पनन होने पर होती है और फिर वे अपनी पहले भवकी भावना के अनुसार समस्त जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते है। और उनके जीवों को मोक्षमार्ग में लगाकर उनका कल्याण करते हैं।

आचार्य इस अध्याय का उपसंहार करते हैं-

स्वशुद्धचिद्रूपपदाश्रितेन,

श्रीकुंथुनाम्ना वरसुरिणेति ।

शुभोपयोगस्य मयाक्षसौख्य-

दातुः स्वरूपः कथितोऽक्षशान्त्यै।।।183।।

अर्थ- अपने आत्मा के शुद्ध चैतन्य स्वरूप में जीन रहने वाले मूझ श्रेष्ठ आचार्य श्री कुंथुसागर ने इन्द्रिय और मन को शांत व वश करने के लिये इंद्रियों को सुख देने वाले शुभोपयोग का स्वरूप कहा है।

भावार्थ- इस अध्याय में शुभोपयोग का स्वरूप कहा है शुभोपयोग के फल से इन्द्रियों को सुख प्राप्त होता है व ऐहिक सामग्री प्रापत होती है। उस इन्द्रियसुख व ऐहिकसामग्री से विर होने के लिये व इन्द्रिय और मन को वश में करने के लिये इन्द्रियों का विजय करने के लिये इस अध्याय का निरूपण किया है।

इति आचार्यश्रीकुंथुसागर विरचिंते भावत्रय-

फलप्रदर्शिनामके ग्रंथे शुभोपयोगफल

वर्णनो नाम द्वितीयोऽध्यायः

इस प्रकार आचार्य श्री कुंथुसागर विरचित भावत्रयफलप्रदर्शी नाम के ग्रंथ की 'धर्मरतन्' पं0 लालाराम शास्त्री कृत हिन्दी भाषा टीका में शुभोपयोग के फल को वर्णन करने वाला यह दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय

शुद्धोपयोग का वर्णन

शुद्धस्वरूप का निरूपण करते हैं-

निर्द्वन्दं निर्मदं सिद्धं शान्तं नत्वा शिप्रदम् ।

शुद्धोपयोगरूपं हि वक्ष्ये शुद्धात्मसिद्धये ।।184।।

यद्विना जन्तुनो जन्म ब्रवीति दुःखदं वृथा ।

चिदानन्दालयस्यैवं स्वामी श्रीकुन्थुसागरः ।।185।।

अर्थ- जो सिद्ध भगवान् समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित है, मद-रहित है, अत्यंत शांत हैं और मोक्ष को देने वाले हैं ऐसे सिद्धपरमेष्ठी को नमस्कार करके चिदानंदमय अपने शुद्ध आत्मा का मैं स्वामी आचार्य श्रीकुंथुसागर आत्मा की शुद्धता प्राप्त करने के लिये शुद्धोपयोग का स्वरूप निरूपण करता हूँ, क्योंकि उसके बिना जीवों का जन्म दुःख देने वाला और व्यर्थ समझाा जाता है।

भावार्थ- आत्मा का शुद्धोपयोग साक्षात् मोक्ष का कारण है। यही कारण है कि शुद्धोपयोग के बिना इस जीव का जन्म लेना और विशेषकर मनुष्यपर्याय का धारण करना व्यर्थ और दुःखदायी कहलाता है। ऐसे इस शुद्धोपयोग का स्वरूप इस अध्याय में निरूपण किया जाता है।

अनुभूति के स्वामी होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च् वद प्रभो ! ना ।

स्वात्मानुभूतेश्र पतिः प्रियः स्यात।।

अर्थ- हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यार्य के करने से यह जीव अपने शुद्ध आत्मा की अनुभूति का स्वामी व

प्रिय हो जाता है ?

उत्तर- स्वानन्दतुष्टस्य मुनेः प्रशंसा,

कृता क्षमादा निजतत्त्वचर्चा ।

शिवप्रदा येन निजात्मशुद्धिः,

स्वात्मानुंभूतेः स पतिः प्रियः स्यात् ।।186।।

अर्थ- जो जीव अपने आत्मा शुद्ध स्वरूप में संतुष्ट रहने वाले मुकनयों की प्रशंसा किया करता है, जो उत्तमक्षमा को प्रापत कराने वाली अपनी आत्मा के शुद्धस्वरूप की चर्चा किया करता है जो मोक्ष देने वाली अपने आत्मा की शुद्धि किया करता है ऐसा पुरूष अपने शुद्ध आत्मा की अनुभूति का प्रियपति होता है।

भावार्थ- जो मनुष्य शुद्धात्मानुभूति का स्वरूप समझता है और उसकी महिमा को जानता है, वही मनुष्य शुद्धात्मा में लीन रहने वाले मुनियों की प्रशंसा करता है, उनकी स्तुति करता है, उनकी वैयावृत्य करता है और उनकी सेवा भक्ति करता है। इसी प्रकार वही मनुष्य अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप की चर्चा करता है, उसके गुणों को जानने का प्रयतन करता है, अपनी आत्मा को शुद्ध करने का व कर्मों के नाश करने का प्रयतन करता है। इस प्रकार मोक्ष प्राप्त होने का प्रयतन करने वाला पुरूष अपनी आत्मा की शुद्धानुभूति का स्वामी होता है।

मन -वचन-काय की सरलता का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- ब्रवीति यस्मान्मनसा यथा यः ।

करोति वा चिन्तयतीह कस्मात् ।।

अर्थ- यह मनुष्य जैसा मन से चिंतवन करता है वेसा ही कहता है और वैसा ही करता है इसका क्या कारण है ?

उत्तर- द्रष्टुः प्रबोद्ध स्वपरात्मनो वा,

द्वेषस्य रागस्य विनाशकर्तुः ।

सड्.ग कृतो येन निजात्मना हि,

ब्रूयाद् यथा कौ सुकृतिं स कुर्यात् ।।187।।

अर्थ- जो पुरूष्ज्ञ अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप को देखता है व जानता है और जिससे रागद्वेष दोनों को नष्ट कर दिया है ऐसे महापुरूषों की जो सड्गति करता है अथवा जो अपने शुद्ध आत्मा में लीन रहता है, ऐसा पुरूष्ज्ञ जो मन में चितवन करता है वही कहता है और जो कहता है वही करता है।

भावार्थ- जिसका मन, वचन, काय सरल होता है, व जिसके हृदय में किसी प्रकार की मायाचारी नहीं होती, किसी प्रकार का लोभ नहीं होता, किसी प्रकार का क्रोध नहीं होता और किसी प्रकार का मान नहीं होता, वहीं पुरूष जो चिंतवन करता है वहीं कहता है तथा वहीं करता है। मन, वचन काय का सरल होना अत्यंत कठिन है जो मनुष्य शुद्ध आत्मा का स्वरूप समझता है और इसीलिए उसमें जीन रहता है, अथवा जो शुद्ध आत्मा में लीन रहने वालों की संगति करता है, उनकी सेवा भक्ति करता है ऐसे पुरूष का मन, वचन, काय सरल होता है।

मनः पयर्च्यज्ञान का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रीाो ! स्या-

ज्जीवो मनः पयर्च्यबोधधारी ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य के करने से इस जीव को मनः पयर्च्यज्ञान उत्पन्न होता है।

उत्तर- ध्यानं च धर्म्यं सुतपः प्रकुर्वन्,

यो वा चिदानन्दरसेन तृप्तः।

रत्नत्रयी वा समशान्तिमूर्तिः,

स स्यान्मनः पयऱ्यबोधधारी ।।188।।

अर्थ- जो मुनि धर्मध्यान का चितवन करते हैं, श्रेष्ठ तपश्चरण करते हैं अथवा शुद्ध चिंदानन्द के विज्ञानमय रस में जीन रहते है। जो रतन्त्रय को धारण करते है। और समता तथा शान्ति की परम मूर्ति है ऐसे परम मुनियों के मनः पयऱ्य के ज्ञान उत्पनन होता है।

भावार्थ- जो ज्ञान दूसरे के मन में विचार किए हुए पदार्थों को प्रत्यक्ष जान ले उसको मनःपयऱ्यज्ञान कहते हैं। यह मनःपयऱ्यज्ञान निर्मलसम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और निर्मल सम्यक्चारित्र को धारण करने वाले परम मुनियों के ही होता है । विपुलमति मनःपयऱ्य को धरण करने वाले उसी भव से मोक्ष को जाते हैं तीि ऋजुमति मनःपयऱ्यको धारण करने वाले उस भव से भी जाते हैं और कभी-कभी एक दो भव धारण करके भी मोक्ष जाते हैं जो मुनि घारे तपश्चरण करते है। और ध्यान में जीन रहते हैं आत्मा के शुद्धस्वभाव में लीन रहते हैं अथवा परमशांति और परम समता को धारण करते है। ऐसे मुनियों के मनःपयऱ्यज्ञान होता है।

केवल ज्ञान होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि हेतोश्र वद प्रभो ! मे ।

जीवो भवेत्केवलबोधधारी ।।

अर्थ- हे देव ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस कार्य के करने से केवल ज्ञान प्रापत करता है ?

उत्तर- दृग्बोधचारित्रमये स्वरूपे,

तिष्ठेन्निजानन्दपदे पवित्रे।

ज्ञातापि दृष्टाखिलवस्तुनो यः,

स स्यात्कृती केवलबोधधारी।।189।।

अर्थ- जो सम्यग्दृष्टि भव्य मुनि परम पवित्र रतन्त्रयस्वरूप आत्मा

में सदा लीन रहते हैं व अपनी आत्मा के शुद्धस्वभाव में लीन रहते है तथा जो समस्त पदाथी के ज्ञाता दृष्टा हैं ऐसे परमोत्कृष्ट मुनि विश्य ही केवल ज्ञान प्राप्त करते है।

भवार्थ- केवलज्ञानी की प्राप्ति के लिए शुक्लध्यान कारण है। बिना शुक्लध्यान के केवल ज्ञान कभी नहीं होता। इसका भी कारण यह है कि मोहनीयकर्म के नष्ट होने पर तथा ज्ञानावरणण् दर्शनावरण और अंतराय कर्म के नष्ट होने पर केवल ज्ञान होता है तथा ये सब कर्म शुक्लध्यान से ही नष्ट हजोते हैं। बिना शुक्लध्यान के घातियाकर्म कभी नष्ट नहीं होते हैं। ऐसा यह शुक्लध्यान श्रेणी चढ़ने के अनंतर होता है। श्रेणी चढ़ने में वे मुनि ध्यानस्थ ही होते है। और शुद्ध आत्मा का ध्यान करते हैं, शुद्ध आत्मा में लीन रहते हैं, अपने आत्मा को अन्य समस्त पदार्थों का ज्ञाता-दृष्टा मानते हुए सबसे भिनन् मानते हैं। ध्यान में वे केवल आत्मामय रहते हैं अथवा रतन्त्रयमय शुद्धात्म स्वरूप में रहते है।। ऐसे मुनि अपने शुक्लध्यानरूपी महाअग्नि के द्वारा कर्मों को नाश करते हाते हैं और गुणस्थानों को पार करते जाते हे।। इस प्रकार वे बारहवें गुणस्थान के अंत में घातियाकर्मों को नाशकर केवलज्ञान प्राप्त कर लेते है।। आयु पूर्ण होने पर वे अघातियाकर्मों को नाश कर डालते है।। और मोक्ष प्राप्त कर लेते है।

आत्मा के शुद्धस्वरूप में अनुराग होने का कारण बतलाते है।-

प्रश्न- कस्माद्धि हेतोश्र वद प्रीाो ! मे ।

प्रीतिः पवित्रे स्वपदे भवेद्धि ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस कारण से आत्मा के पवित्र शुद्धस्वरूप में अनुराग उत्पनन् होता है।

उत्तर- दृग्वृत्तमोहक्षद्धायसम्भव या,

स्वानन्दतुष्टे सुगुरौ प्रतीतिः ।

श्रद्धा स्वधर्मे भवतीह पश्रात,

स्वानन्दसाम्राज्यपदे प्रवेशः ।।190।।

अर्थ- दर्शनमोहनीय व चारित्रमोहनीय कर्म का क्षय क्षयोपशम होने पर सबसे पहले अपने शुद्ध आत्मा में संतुष्ट रहने वाले वीतराग निर्ग्रंथ गुरूओं में विश्वास होता है अथवा भगवान् जिनेंद्रदेव के कहे हुए अहिंसामय जैनधर्म में श्रद्धा उत्पनन होती है। तदनंतर वह जीव चिदानंदमय आत्मा के शुद्ध स्वरूप में अनुराग कर उसमें प्रवेश करने लगता है।

भावार्थ- देर्शनमोहनीय कर्म के उपशम होने से व क्षयोपशम होने से अथवा क्षय होने से देश शास्त्र गुरू में श्रद्धा उत्पनन होती है। भगवान् जिनेंद्रदेव के कहे हुए सप्त तत्त्वों में व छहों द्रव्यों में श्रद्धा उत्पनन होती हे। तदनंतर वह आत्मा के यथार्थ स्वरूप को समझने लगता हैं तथा उसके शुद्ध स्वरूप को उपदेय व ग्रहण करने योग्य समझता हुआ उससे भिनन शरीर, परिग्रह कुटुंब, धन आदि समस्त पदार्थों को अपने आत्मा से सर्वथा भिनन और इसीलिए त्याग करने योग्य हेय समझ लेता है। तदनंतर चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशमादिक होने पर हेय पदार्थों का त्याग कर देता है और उपादेय स्वरूप अपने शुद्ध आत्मा को ग्रेहण करने लगता है व उसमें प्रवेश करने लगता है। बस यहीं से उसका सम्यक्चारित्र प्रारंभ होता है। और वह धीरे-धीरे पूर्ण चारित्र को धारणप करता हुआ केवल ज्ञान और मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

स्वभाव से ही शुद्ध आत्मा में लीन होने का कारण बतलाते है-

प्रश्न- कस्य प्रसादाद्धि वद प्रीाो ! मे ।

स्वात्मा स्वभावात्स्वपदे प्रतिष्ठेत् ।।

अर्थ- हे भगवन् अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किसके प्रसाद से स्वभाव से ही अपने आत्मा में लीन रहता है।

उत्तर- निजान्यवेदी च दयार्द्रचित्ते,

यः पूर्वतो वा सुसमाधिनिष्ठः ।

चारित्रमोहादिविशेषनाशात्,

स्वात्मा स्वभावात्स्वपदे प्रतिष्ठेत् ।।191।।

अर्थ- जो आत्मा अपनी आत्मा के स्वरूप को जानता है, अन्य जीवों के स्वरूप को व पुद्रलादिक अन्य समस्त पदार्थों के स्वरूप को जानता है, जिसका हृदय सदाकाल दया से परिपूर्ण रहता है और जो पूर्व जन्म से ही समाधि व ध्यान में लीन रहता है ऐसा आत्मा चारित्र मोहनीय आदि कर्मों के विशेष नाश होने से स्वभाव से ही अपने आत्मा के शुद्धस्वरूप में लीन हो जाता है।

भावार्थ- आत्मा को अपने ही शुद्धस्वरूप में लीन होने के लिये सम्यग्दर्शन की आवश्यक्ता है। बिना सम्यग्दर्शन के न तो सम्यग्ज्ञान होता है न आत्मा का यथार्थस्वरूप जाना जाता है और न अन्य पदार्थो का यथर्थस्वरूप जाना जाता है। बिना सम्यग्दर्शन के जीवों की दया का पालन ीाी नहीं होता और न समाधिमरण व शुभध्यान होता है। जब सम्यग्दर्शनपूर्वक ये ऊपर लिखे हुए सब साधन मिल जाते हैं और उस समय चारित्रमोहनीय कर्म का विशेष क्षय हो जाता है तब यह आत्मा स्वभाव से ही अपने आत्मा में लीन हो जातता है। यह मोहनीय कर्म ही आत्मा को अपने स्वभाव में स्थिर नहीं होने देता, जब दर्शनमोहनीय और फिर क्रमशः चारित्रमोहनीय कर्म नष्ट होता जाता है तब यह आत्मा अपनी आत्मा में स्थिर होकर आत्मा के यथार्थ स्वीााव कोप्राप्त कर लेता है और फिर शीघ्र ही कर्मो कों नष्ट कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। शुद्धअशुद्धनिश्रयनय से सप्त तत्त्वों का निरूपण करतेत हुए अपनी शुद्ध आत्मा को समस्त तत्त्वों से भिनन दिखलाते हैं-

चन्मात्रमूर्तिः परमार्थदृष्ट्या,

रागादिकर्ता व्यवहारदृष्टया ।

ज्ञज्ञत्वेति पूर्वोक्तचिदात्मचिह्नं,

चिन्मात्रमूर्तिर्भवनात्ममात्मा ।।192।।

अर्थ- यदि शुद्धनिश्रयनय से देखा जाय तो यह आत्मा अत्यंत शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, किन्तु व्यवहार दृष्टि से ;अशुद्ध श्रियनय सेद्ध तो रोग द्वेष आदि विभाव परिणामों का कर्ता है। इस प्रकार शुद्धनिश्रयनय से तथा अशुद्ध निश्रयनय से चैतन्य स्वरूप आत्मा के चि बतलाये है इनको जानकर मेरा यह आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप बना रहे।

भावार्थ- यह आत्मा अनादिकाल से कर्मी कं आधीन होकर अनेक प्रकार के शरीरधारण करता है। कर्मके वश होकर ही नरक में जाता है, स्वर्ग में जाता है, तिर्यंच होता है व मनुष्य होता है। इस प्रकार कर्मों के आधीन होकर यह चारों गतियों में परिभ्रमण करता है। वहाँ पर यह अपने शरीर के द्वारा कुछ न कुछ क्रियायें करता ही रहता है। कभी घट अनाता है, कभी वस्त्र बनाता है, कभी भोजन बनाता है, कभी यात्रा करता है, कभी किसी को मारता है, कभी बोझा ढोता है व अन्य अनेक कार्य किया करताहै। यद्यपि ये सब क्रियायें शरीर के द्वारा होती है। तथापि इनका करनेवाला जीव ही माना जाता है और व्यवहारदृष्टि से माना जाता है। इसलिए व्यवहारदृष्टि से यह जीव घट पट आदि का कर्ता कहा जाता है। यदि अशुद्ध श्रियनय से देखा जाय तो ये सब क्रियायें शरीर से होती हैं, आत्मा तो केवल राग, द्वेष, इच्दा व क्रोध, मान माया, लोभ आदि विकारों का करने वाला है, आत्मा में इन विकारों के हाने से ही ये घट पटादिक पदार्थ बनाये जाते हैं इसलिए अशुद्धनिश्रयनय से यह रागादिक विकारों कर्ता है तथा यदि शुद्धनिश्रयनय से देखा जाय तो यह आत्मा शुद्धस्वरूप है और इसीलिए वह शुद्धभावों का कर्ता है। शुद्धनिश्रयनय से यह जीव अशुद्ध भावों का भी कर्ता नहीं है। जिस प्रकार इस जीव को शुद्ध-अशुद्ध व व्यवहारदृष्टि से कर्ता बतलाया है उसी प्रकार इन्हीं तीनों नयों से भोक्ता भी समझ लेना चाहिये। इसी प्रकार यह जीव व्यवहारदृष्टि से श्रासोच्छावासादिक दश प्राणों से जीवित रहता है, निश्रयनय से

शुद्धचैतन्यस्वरूप प्राणों`से जीवित रहता है। व्यवहारदृष्टि से चक्षुदर्शनख् अचक्षुदर्शन व अवधिदर्शन को धारण करता है तथा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपयर्यज्ञान, कुमति, कुश्रुत और कुअवधि को धारण करता है और निश्रयनय से केवल दर्शन और केवल ज्ञान को धारण करता है। व्यवहारदृष्टि से संसारी है, निश्रयदृष्टि से सिद्धों के समान है। इस प्रकार भिनन्-भिनन् नयों से जीव अनेक प्राकर का सिद्ध होता है। इन सबको समझकर अपने आत्मा को शुद्ध बनाने का प्रयतन् करना चाहिये, क्योंकि आत्मा के शुद्ध होने पर ही संसार की समस्त व्याधियाद्द और चारों गतियो ंका परिभ्रमण मिटता है। जब आत्मा शुद्ध हो जाता है तब इस आत्मा के समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं और यह आत्मा शुद्ध चिदानंदमय व परबह्यस्वरूप अवस्था को प्राप्त हो जाता है और फिर वह कभी भी इस संसार में नहीं आता अर्थात् फिर कभी भी शरीर धारण नहीं करता, फिर तो अनंतानंत काल तक अनंत सुखमय बना रहता है। मेरा भी यह आत्मा ऐसी ही चिदानंदमय अवस्था को प्रापत हो ऐसी मैं सदाकाल भावना रखता है।

अजीवपदार्थों को बतलाते हुए उन सबसे अपने शुद्ध आत्मा की भिन्नता दिखलाते हैं-

धर्मोऽप्यधर्मोऽस्ति नभश्र कालो,

ह्याजीवरूपो भुवि पुद्गलोऽपि ।

नाजीवरूपोऽपि कदा भवामि,

चिन्मात्रमूर्तिः खलु किन्तु शुद्धः ।।193।।

अर्थ- धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल ये सब अजीव पदार्थ हैं, यह मेरा आत्मा कभी भी अजीवरूप न हो किन्तु सदाकाल शुद्ध चैतन्यस्वरूप बना रहे, ऐसी मैं भावना करता हूँ।

भावार्थ- आकाश अनंत है इसक`मध्यभाग में लोकाकाश है जो

घनवात धनोदधिवात और तनुवात के आधार है। इस लोकाश में सर्वत्र व्यापत होकर धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य भरे हुए हैं, जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं उतने कालाणु हैं। अनंतानंत जीव है। और उनसे भी अनंतानंत पुद्रल हैं इनमें से जीव और पुद्रल ये दो पदार्थ क्रियावान हैं अर्थात इनमें चलने की शक्ति हैं। जीव में तो चलने की शक्ति प्रत्यक्ष दिखाई देती है तथा पुद्रल में भी वायु बिजली आदि मे दिखाई देती है। जीवों में जैसे वृक्षादिक नहीं चलते उसी प्रकार प्रदृलों में ाारी पुद्रल नहीं चलते । वे ही पदार्थ हलक ेहोने पर चलने लगते हैं जैसे लकड़ी नहीं चलती परंतु जल जाने पर उसक बहुत से परमाणु उड़कर चले जाते हें, जिनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हो उनको पुद्रल कहते हैं। अचेतन पृथ्वी, जल, अग्रि, वायु, शब्द आदि सब पुद्रगल है। इनमें सुक्ष्म व स्थूलरीति से रूपादिक चारों गुण पाये जाते हैं। जैसे वायु में रूप दिखाई नहीं देता परंतु जब दो प्रकार की वायु मिलाकर पानी बना लेते हैं तब उसमें रूप दिखाई देने लगता है। यदि वायु में रूप नहीं होता है तो पनी में कहां से आता इससे साबित होता है कि वायु में भी रूप है। इसी प्राकर सब में समझनाचाहिए। इन जीव-पुद्रलों को जो गमन करने में सहायता देता है उसको धर्मद्रव्य कहते हैं। जो ठहरने में सहायता देता है उसको अधर्मद्रव्य कहते हैं जो इन समस्त पदार्थों को ठहरने के लिए स्थान देता है उसको आकारश कहते हैं। तााि जो इन समस्त पदार्थों की अवस्था को बदलने में सहायता देता रहता है उसको कालद्रव्य कहते हैं। इस प्राकर धम्र, अधर्म, आकाश, काल और पुद्रल ये पांचों तत्व अजीवतत्व कहलाते हैं। आत्मद्रव्य इन सबसे सर्वथा भिनन्‌ है

आत्मा चैतन्य स्वरूप है, ज्ञान-दर्शनमय है और ये पाँचों तत्व चैतन्यस्वरूप से सर्वथा भिनन्‌ व रहित हैं तथा ज्ञान-दर्शन से सर्वथा भिनन्‌ व रहित हैं। आत्मा ज्ञाता-दुष्टा है तथा ये पांचों तत्व ज्ञेय और दृश्य हैं। इसलिए मेरी आत्मा अजीव तत्वरूप कभी नहीं हो सकती। मेरी आत्मा शुद्ध चैतन्य स्वरूप है, समस्त पदार्थों की ज्ञाता-द्रष्टा है, रतन्त्रयस्वरूप है

उत्तमक्षमा आदि दश धर्मस्वरूप है, पूर्ण चारित्रस्वरूप है, और कर्मो से रहित अत्यंत शुद्धस्वरूप है। ऐसी मेरी आत्मा सदाकाल ऐसी ही बनी रहे और अनंतकाल तक के लिए अनंत सुखमय हो जाय ऐसी मैं भावना करता हूं। आस्त्रव तत्व का निरूपण करते हुए अपने आत्मा को उससे सर्वथा भिन्न बतलाते हैं-

अशुद्धजीवस्य च पुद्गलस्य,

समागमादास्त्रवतत्त्वजन्म ।

नाशुद्धजीवोऽस्मि न पुद्गलोऽस्मि,

भिन्नस्ततश्चास्त्रवतत्त्वतोऽहम् ।।194।।

अर्थ- अशुद्धजीव और अशुद्धपुद्गल के मिलने से आस्त्रव तत्त्व उत्पन्न होता है। मेरा यह आत्मा न तो अशुद्धजीवस्वरूप है और न अशुद्धपुद्गलस्वरूप है। इसीलिये मेरा यह आत्मा आस्त्रव तत्त्व से सर्वथा भिन्न है।

भावार्थ- कर्मों के आने को आस्त्रव कहते हैं अथवा जिन कारणों से कर्म आते हैं ऐसे मनवचनकाय की क्रियारूप योगों को भी आस्त्रव कहते हैं। अथवा मिथ्यादर्शन, अविरत, प्रमाद, कषाय, योग आदि बंध के कारणों को भी आस्त्रव कहते हे।। यह आस्त्रव अशु0जीव अशुद्धपुद्गलों से उत्पन्न होता है उसका भी कारण यह है कि जब इस अशुद्धजीव के परिणाम राग-द्वेषरूप होते हैं तब उन रागद्वेष के निमित्त से कार्मणवर्गणाएँ कर्मरूप परिणत होकर आत्मा के साथ मिल जाती हैं। उन कार्मणवर्गणाओं का आत्मा के साथ मिल जाना तो बंध है और कर्मरूप परिणत होना आस्त्रव है। रागद्वेषरूप परिणाम योगों की क्रियाओं से ही होते हैं। इसलिए योग भी आस्त्रव कहलाते हैं। अथवा राग-द्वेषरूप परिणाम भी भावस्त्रव कहलाते हैं। ये सब आस्त्रव पौद्गलिक हैं, क्योंकि राग द्वेष भी कर्मो के उदय से होते हैं इसलिए वे भी पौद्गलिक हैं मन-वचन-काय की क्रिया पुद्गलरूप मन-वचन,काय से होती है। इसलिए वह भी पौद्गलिक ही है तथा

कार्मण वर्गणाओं को कर्मरूप परिणत होना पोद्रलिक है ही। इस प्राकर आस्त्रव तत्व पौद्रलिक है और अशुद्ध जीव में होता है, क्यों अशुद्धजीव में ही रागद्वेष उत्पनन् हो सकते हैं शुद्धजीव में रागद्वेष कभी उत्पनन् नहीं हो सकते। इसलिए आस्त्रव तत्व अशुद्ध जीव और अशुद्ध पुदल से ही उत्पनन् होता है। परन्तु मेरा यह शुद्धस्वरूप आत्मा न तो मन, वचन, काय की क्रियारूप परिणत होता है, न रागद्वेषरूप परिणत होता है और न कर्मी को ग्रहण करता है। इसलिए मेरा यह शुद्धआत्मा आस्त्रवतत्व से सर्वथा भिनन् है। आस्त्रवतत्व संसार का कारण है और मेरा शुद्धआत्मा मोक्षस्वरूप है। इस प्रकार भी मेरा शुद्धआत्मा आस्त्रवतत्व से सर्वथा भिनन् है ऐसी भावाना रखना शूद्धोयोग कहलाता है।

बंधतत्व का स्वरूप बतलाते हुए उससे अपने शुद्ध आत्मा को सर्वथा भिन्न बतलाते हैं-

अशुद्धजीवस्य च पुद्गलस्य,

बन्धे मिथः स्यान्नयमानसिद्धः ।

नाऽशुद्धजीवोऽस्मि न पुद्गलोऽस्मि,

बन्धस्ततो मे च कि। समं स्यात् ।।195।।

अथ्र- अशुद्धजीव और अशुद्धपुद्रलों का परस्पर मिल जाना प्रमाण और नयों से सिऋ होनेवाला बंधतत्व कहलाता है। परनतु मैं न तो अशुद्धजीव हूँ और न अशुद्धपुद्रल हूँ। अतएव मेरे साथ यह बंधातत्व कैसे हो सकता है अर्थात् कभी नहीं हो सकता।

भावार्थ- बंधतत्व तो सर्वथा पौद्रलिक ही है। क्योंकि बिना कार्मणवर्गणाओं के बंध होता ही नहीं है। जब कार्मणवर्गणाएँ कर्मरूप परिणत होकर आत्मा के अशुद्धप्रदेशों के साथ मिल जाती हैं ब उसको बंध कहते हैं। यह बंध जिन परिणामों से होता है उन परिणामों को भावबंध कहते है। यह भावरागद्वेष कारण पड़ता है। राग-द्वेषरूप परिणाम कमी के

उदय से होते हैं तथा कर्मविशिष्ट आत्मा में ही होते हैं। इसलिए वे भी पौद्रलिक ही कहलाते हैं। इस प्राकर भावबंध व द्रव्यबंध दोनों ही पौद्रलिक सिद्ध हो जाते हैं परन्तु मेरा यह शुद्ध आत्मा तो न भावबंधरूप है और न द्रव्यबंधरूप है। वह दोनों से सर्वाीा भिनन् हैं। मेरा आत्मा शुद्धचैतन्यस्वरूप है और बंधतत्व पौद्रलिक है। मेरा आत्मा शुद्धज्ञानदर्शनमय है, रतन्त्रयस्वरूप है और सबका ज्ञाता दृष्ट है, परंतु बंधतत्व न ज्ञाता-दृष्टा है, न रतन्त्रय स्वरूप है और न दृष्ट है, परंतु बंधतत्व न ज्ञाता दृष्टा है, न रतन्त्रय स्वरूप है और न ज्ञानदर्शनमय है। अतएव मेरा और बंधतत्व का कभी कोई संबंध नहीं हो सकता इस प्रकार के शुद्ध भाव रखना शुद्धोपयोग कहलाता है। ऐसा शुद्धोपयोग धारण करने से कमी के बंध का सर्वथा नाश हो जाता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

संवरतत्व का निरूपण करते हुए अपने शुद्ध आत्मा को उससे सर्वथा भिन्न बतलाते हैं-

मिथ्यात्वभावादिनिरोधतः स्यात,

सुखप्रदं संवरतत्वजन्म ।

चिन्मात्रमेर्तिः परमार्थतोऽस्मि,

ततो न मे संवरतत्वजन्म ।।196।।

अर्थ- मिथ्यात्व अविरत आदि भावों का निरोध करने से सुख देने वाला संवरतत्व उत्पनन् होता है परन्तु परमार्थदृष्टि से देखा जाय तो मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ। इसलिये मेरी आत्मा में संवर तत्व कैसे उत्पनन् हो सकता है।

भावार्थ- आस्त्रव का निरोध करना संवर है। वह दो प्रकार का है, एक भावसंवर और दूसरा द्रव्यसंवर। आत्मा के जिन परिणामों से आस्त्रव रूकता है व आते हुए कर्म रूकते हैं उन परिणामों को भावसंवर कहते हैं तथा उस कर्म आस्त्रव को जो रूक जाना है उसको द्रव्यसंवर कहते हैं यह

दोनों प्रकार का संवर कर्मविशिष्ट अशुद्धआत्मा के ही होता है, क्योंकि आस्त्रव रूकना ही संवर है तथा कमी का आस्त्रव किसी न किसी कर्म के उदय होने पर ही होता है। बिना किसी कर्म के उदय से आस्त्रव कभी नहीं हो सकता। ऐसे पौद्रलिकरूप ास्त्रव के रूकने से जो संवर होता है उसको भी पौद्रलिक रूप ही मानना पड़ता हैं ऐस संवर तत्व शूद्ध आत्मा में नहीं हो सकता। क्योंकि शुद्ध आत्मा में रागद्वेषरूप आस्त्रव को उत्पनन करने वाले अशुद्धभाव ही उत्पनन नहीं हो सकते, फिर भला रूकेगा क्या ? शुद्ध आत्मा में जब अशुद्ध भाव ही नहीं है तब उनका रूकना व रूक जानारूप संवरतत्व ही कैसे हो सकता है। इससे सिद्ध होता है कि शुद्ध आत्मा में संवरतत्व कभी नहीं हो सकता। यदि परमार्थदृष्टि से देखा जाये तो मेरा आत्मा भी अत्यंत शुद्ध है, शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, ज्ञानदर्शनमय है, ज्ञाता द्रष्टा है और सिद्धों के समान है तथा संवरतत्व इससे विपरी है। वह न तो चैतन्यस्वरूप है, न ज्ञाता द्रष्टा है, न ज्ञज्ञनदर्शनमय ह, न रतन्त्रयस्वरूप है और न शुद्ध आत्मस्वरूप है। इसलिए वह संवरतत्व मेरे शुद्ध आत्मा से सर्वथा भिनन है। इस प्रकार वे अपने परिणाम रखना शुद्धोपयोग कहलाता है।

निर्जरातत्व का स्वरूप बतलाते हुए उससे अपने शुद्ध आत्मा को सर्वथा भिन्न बतलाते हैं-

सद्दृष्टिजीवाच्च कुपुद्रलस्य,

वियोगतो निर्जरतत्वजन्म ।

चिद्रपमूर्तिः परमार्थतोऽस्मि,

ततो न मे निर्जरतत्वजन्म ।।197।।

अर्थ- सम्यग्दृष्टि जीव के कर्मरूप पुद्रगलवर्गणाओं को नष्ट हो जाना व उस आत्मा से उन कमी का संबंध हट जाना निर्जरातत्व कहलाता है। परंतु मेरा शुद्धआत्मा परमार्थदृष्टि से शुद्धचैतन्यस्वरूप है इसलिए मेरे आत्मा से निर्रातत्व कभी उत्पनन नहीं हो सकता।

भावार्थ- कर्मों का एकदेशक्ष होना निर्जरा है। वह दो प्रकार की हैं एक भावनिर्जरा और दूसरी द्रव्यनिर्जरा। आत्मा के जिन परिणामों से निर्जरा होती है उन परिणामों को भावनिर्जरा कहते है। तथा जो कर्मो का क्षय होता है उसको द्रव्यनिर्जरा कहते हैं अथवा सविपाक अविपाक के भेद से निर्जरा के दो भेद हैं। जो कर्म अपना फल देकर क्षय होते है। उसको सविपाकनिर्जरा कहते है। तथा जो कर्म तपश्चरण आदि के निमित्त् से बिना फल दिये ही नष्ट हो जाते हैं उसको अवपाकनिर्जरा कहते है।। यह सब निर्जरा पौद्रलिक है। क्योंकि द्रव्यनिर्जरा में तो कर्मों का ही नाश होता है, तथा कर्मों के पौद्रलिक होने`से वह द्रव्यनिर्जरा भी पौद्रलिक ही सिद्ध होती है। भावनिर्जरा भी अशुद्ध जीव के ही होती है। जो जीव कर्मविशिष्ट है उसी के भावनिर्जरा हो सकती हैं । तथा कर्मविशिष्ट जीव के जो परिणाम होते हैं वे कर्मो के निमित्त से ही होते है। इसलिये वे भी पौद्रलिक ही कहलाते हैं। इस प्रकार सब प्रकार की निर्जरा पौद्रलिक सिद्ध होती है। मेरा यह आत्ता`शुद्ध चिदानंदस्वरूप है इसलिये निर्जरा तत्व से सर्वथा भिनन् है। मेरा आत्मा ज्ञानदर्शनमय है, निर्जरा इससे विरीत पौद्रलिक व जड़स्वरूप है। यह आत्मा रतन्त्रयस्वरूप है, निर्जरा इससे विपरीत पौद्रलिक व जड़स्वरूप है। मेरा आत्मा-दृष्टा है निर्जरा तत्व ज्ञाता-दृष्टा से विपरीत पौद्रलिक है। इस प्राकर चैतन्यस्वरूप मेरे शु॰ आत्मा से निजरातत्व सर्वथा ीिनन् है। इस प्रकार के परिणाम रखना शुद्धोपयोग कहलाता है।

मोक्षतत्त्व का निरूपण करते हुए उससे अपने शुद्ध आत्मा को सर्वथा भिन्न दिखलाते हैं-

निर्ग्रंथसाधोर्भुवि पुद्रलस्य,

मोक्षः किलात्यन्तवियोगतः स्यात् ।

चिद्रपमूर्तेर्न च मे वियोगः,

संयोगवार्ता क्रियते कथं हि।।198।।

अर्थ- वीतराग निर्ग्रथ साधुओं के जो कर्मरूप पुद्गलों का अत्यंत वियोग हो जाता है उसको मोक्ष कहते हैं, परंतु मेरा आत्मा शुद्धचैतन्य स्वरूप है। इसलिए उससे किसी भी कर्म के वियोग होने की संभावना भी नहीं हो सकती, क्योंकि शद्धआत्मा में कर्मों का संयोग है ही नहीं। जहाँ पर कर्मों का संयोग ही नहीं है वहाँ पर कर्मों के संयोग की बात ही नहीं करनी चाहिए।

भावार्थ- इस आत्मा से समस्त कर्मों का नाश हो जाना मोक्ष है। वह भी दो प्रकार है- एक भावमोक्ष और दूसरा द्रव्यमोक्ष। आत्मा के जिन परिणामों से समस्त कर्म नष्ट होते हैं उन परिणामों को भावमोक्ष कहते है। तथाउन समस्त कर्मों का जो नष्ट हो जाना है उनको द्रव्यमोक्ष कहते हैं। यह दोनों प्रकार कोक्ष कर्मविशिष्ट आत्मा के ही होती है। जो आत्मा अत्यंत शुद्ध है कर्मों से सर्वथा रहित है उससे किसी का भी वियोग नहीं हो सकता। उसके जब कर्म ही नहीं है तब वियोग व नाश किसका होगा ? मेरा आत्मा सर्वथा शुद्ध और कर्मों से सर्वथा रहित है इसलिए मोक्षतत्त्व भी मुझसे सर्वथा रहित है इसलिए मोक्षतत्त्व भी मुझसे सर्वथा भिनन् है। इस प्रकार शुद्धपरिणामों का होना शुद्धोपयोग कहलाता है।

सप्ततत्त्वों के कनि का उपसंहार करते हैं-

तत्त्वस्वरूपं कथितं मयेति,

तयागाय हेयस्यय चितो ग्रहाय।

समस्ततत्त्वानि विवर्ज्य योगात,

गृह्णातु योगी च निजात्मतत्त्वम् ।।199।।

अर्थ- इस प्रकार हेय पदार्थों के त्याग के लिए और शुद्ध चैतन्यस्वरूप अपनी आत्मा को ग्रहण करने के लिए मैने यह सातों तत्वों का स्वरूप निरूपण किया है। अतएव योगियों को अपने मन, वचन, काय से समस्त तत्त्हवों को त्याग कर केवल अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप को

ग्रहणकर लेना चाहिए।

भावार्थ- ऊपर अनुक्रम से सातों तत्त्वों का स्वरूप दिखलाया है और उनमें यह भले प्रकार दिया है कि अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा के सिवाय अन्य समस्त तत्त्व त्याग करने योग्य हैं क्योंकि वे समस्त तत्त्व अपने शुद्ध आत्मा से सर्वथा भिनन् है।। अतएव शुद्धोपयोग धारण करने वाले व अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप में लीन होने वाले मुनराजों को मन, वचन, काय तीनों योगों से समस्त तत्त्वों का तयाग कर देना चाहिए और अपने शुद्धस्वरूप आत्मा को ग्रहण कर उसी में सदा लीन रहना चाहिए। आत्मा के अनंतसुख का यही एक साधन है। इस प्रकार सातों तत्त्वों का निरूपण किया।

याचना करने पर भी धनादिक की प्राप्ति क्यों नहीं होती यही दिखलाते हैं-

प्रश्न- कुर्वन्त एवाप धनादियाचां ।

कथ धनादिं न च ते लभन्ते ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि ये जीव धनादि की याचना करते हैं और फिर भी उनको धनादिक की प्राप्ति नहीं होती इसका क्या कारण है ?

उत्तर- ये केपि जीवाश्र यथैव बीजं,

वपन्ति भूमौ समये हि तेऽपि ।

तादृक् फलं निश्रयतो लभन्ते,

न केवलं याचनतः कदापि ।।200।।

ज्ञात्वेति भक्त्या सुकृतिं कुरूष्व,

कौ केवलं याचक एव न स्याः ।

ततो भवेदेव तवेष्टसिद्धि-

र्नश्येत्त्थाशाा सुखशान्तिहर्त्री ।।201।।

अर्थ- इस संसार में जो जीव इस पृथ्वी पर जैसा बीज बोते हैं वैसा ही फल पाते हैं। केवल याचना करने से कोई फल नहीं मिलता। यही समझकर इस संसार में भक्तिपूर्वक पूण्यकर्म करते रहना चाहिए। केवल याचना करने से काम नही चलता। पुण्यकार्य करने से ही आत्मा की इष्टसिद्धि होती है और सुख शांति को नाश करने वाली आशा नष्ट हो जाती है।

भावार्थ- किसान जैसा बीज बोते है। वैसा ही फल पाते हैं। माँगने से कहीं कुछ नहीं मिलता। इसी प्रकार ये जीव जैसा करते हैं वैसा ही फल पाते हैं । जो प्रतिनित्य देवपूजा पात्रदान आदि पुण्यकार्य करते रहते हैं उनको यथष्ट धनादिक की प्राप्ति होती रहती है और जो पूर्व जन्म में पापकर्म करते रहते हैं उनको दरिद्रता, रोग आदि के दुःख भोगने पड़ते हैं। यही समझकर भव्य जीवों को सदाकाल देवपूजा पात्रदानआदि पुण्यकार्य करते रहना चाहिये जिससे इस लोक संबंधी विभूति भी प्रप्त होती रहे और परलोक में भी स्वर्गादिक के सुख प्राप्त होकर मोक्ष प्राप्त हो जाय। देवपूजा, पात्रदान आदि पुण्यकार्य करने से आत्मा का यथार्थ स्वरूप मालूम हो जाता है वीतराग निर्ग्रथ गुरू की सेवा करने से आत्मा का यथार्थ ज्ञान हो जाता है और संसार को बढ़ाने वाली आशा सब नष्ट हो जाती है। आशा के नष्ट होने से शुभोपयोग की वृद्धि होती है और अनुक्रम से शुद्धोपयोग की प्राप्ति हो जाती है।

शुद्ध चैतन्य स्वरूप सुख के विना समस्त क्रियाएँ निरर्थ हैं ऐसा दिखलाते हैं-

व्रतेन किंवा विनयेन किंव,

मानेन किंवा मनसापि किंवा ।

ध्यानेन किंवा खलु किं च धृत्वा,

तापेन किंवा तपसापि किंवा ।।202।।

योगेन किंवा स्मरणेन किंवा,

बलेन किंवा बलिनापि किंवा ।

यागेन किंवा जनेन किंवा,

क्रोधेन किंवा कृतिनापि किंवा ।।203।।

शास्त्रेण किंवा मननेन किंवा,

यन्त्रेण किंवा यतिनापि किंवा ।

मन्त्रेण किंवा मुनिनापि किंवा,

कालेन किंवा कलहेन किंवा ।।204।।

रत्नेन किंवा रजसापि किंवा,

मत्र्येन किंवा मरणेन किंवा ।

कायेन किंवा वचनेन किंवा,

ज्ञानेन किंवा नमनेन किंवा ।।204।।

कीत्र्यापि किंवा कलुषेण किंवा,

दानेन किंवा दययापि किंवा ।

धर्मेण किंवा दमिनापि किंवा,

मौनेन किंवा शमनेन किंवा ।।206।।

स्वर्गेण किंवा स्वनितेन किंवा,

नार्यापि किंवा नगरेण किंवा ।

भोगेन किंवा भुजगेन किंवा,

करेण किंवा करणने किंवा ।।207।।

हारेण किंवा हरिणापि किंवा,

जाडयेन किंवापि जडेन किंवा ।

रूपेण किंवापि रूजापि किंवा,

दानेन किंवा धनिनापि किंवा ।।208।।

गंधेन किंवापि घृतेन किंवा,

सारेण किंवा सूपनेन किंवा ।

त्यागेन किंवा ग्रहणेन किंवा,

हर्षेण किंवा रूदनेन किंवा।।209।।

उच्चेन किं नीचजनेन किंवा,

काचेन किंवा कलशेन किंवा ।

खलेन किंवा कपटेन किंवा,

शीतेन विापि शठेन किंवा ।।210।।

दुःखेन किं धूर्तशतेन किंवा,

पूज्येन किं पुण्यशतेन किंवा ।

मोहेन किंवा मणिनापि किंवा,

वनेन किंवा व्यसनेन किंवा ।।211।।

वासेन किंवा वसनेन किंवा,

कार्येण किंवा करणेन किंवा ।

राज्ञापि किंवा सुरसेन किंवा,

ह्यलंच किंवा बहुभाषणेन।।212।।

स्वशुद्धचिद्रूपपदं न लब्धं,

लब्ध्वापि तस्मिन्न कृता स्थितिश्चेत।

पूर्वोक्तकृत्येन निरर्थकेन,

लाभस्तवात्मन भुवि कोऽपि न स्यात् ।।213।।

ज्ञात्वेति नित्यं स्वरसं पिबन् हि,

स्वशुद्धचिद्रूपपदे प्रतिष्ठ ।

कस्यापि कार्यस्य यतोवशक्ता,

ह्यनन्तकालेऽपि गते न ते स्यात् ।।214।।

अर्थ- हे आत्मन् ! तुझको जब तक अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमपद की प्राप्ति नहीं होती अाि‌वा उस पद को प्राप्त करके भी जब तक उस परमपद में स्थिरता नहीं होती तब तक न तो व्रत करने से कोई लाभ है, न अभिमान करने से कोई लाभ है , न उत्तम हृदय को धारण करने से कोई लाभ है, न ध्यान करने से कुछ लाभ है, न धैर्य धारण करने से कुछ लाभ है, न संताप करने से लाभ है, न तपश्चरण करने से कुछ लाभ है , न योग धारण करने से कुछ लाभ है, न मनन करने से कुछ लाभ है, न बल से कुछ लाभ है,न बलवान् होने से कुछ लाभ है, न यज्ञ व पूजा प्रतिष्ठा करने से कुछ लाभ है, न किसी यंत्र से लाभ होता है, न किसी यति से लाभ होता है, न किसी मंत्र से लाभ होता है, न किसी मुनि से लाभ होता है, न समय से लाभ होता है, न किसी के साथ कलह करने से लाभ होता है, न रतनें से कुछ लाभ होता है, न धूलि मिटटी से कुछ लाभ होता है, न मनुष्यों से कोई लाभ होता है, न मर जाने से कोई लाभ होता है, न शरीर से कुछ लाभ होता है, न वचन से कुछ लाभ होता है, न ज्ञान से कुछ लाभ होता है, न नम्रीभूत होने से कुछ लाभ होता है, न कीर्ति से कुछ लाभ होता है, न कलुषता से कुछ लाभ होता है, नद दान से कुछ लाभ होता है, न दया से कुछ लाभ होता है, न धर्म से कुछ लाभ होता है,

न इन्द्रियों को दमन करने से कुछ लाभ होता है, न मौन धारण करने से कुछ लाभ होता है, न शंत रहने से कुछ लाभ है, न स्वर्ग की प्राप्ति से कुछ लाभ है, न ऊँचे स्वर से कुछ करने से कोई लाभ है, न स्त्री के रहने से कुछ लाभ है, न नगर में रहने से कुछ लाभ है, न भोगविलास करने से कुछ लाभ है, न सर्पादिक के रखने से कुछ लाभ है, न हाथ पैरों से कुछ लाभ है, न अन्य साधनों से कुछ लाभ है, न हार पहनने से कुछ लाभ है, न इन्द्रादिक को वश में रखने से कुछ लाभ है, न मूर्खों की संगति से कुछ लाभ है, न मूर्खता करने से कुछ लाभ है, न सुंदररूप धारण करने से कुछ लाभ है, न किसी रोग के हो जाने से कुछ लाभ है, न धन से कुछ लाभ है, न किसी धनी से लाभ है, न सुगंधियों से कुछ लाभ है, न धीरज से कुछ लाभ है, न किसी सारभूत पदार्थ से लाभ है, न अभिषेक आदि के करने से कुछ लाभ है, न त्याग करने से कोई लाभ है, न ग्रहण करने से कुछ लाभ है, न हर्षत होने से कुछ लाभ है, न नीच बनने से कुछ लाभ है, न काच रखने से कुछ लाभ है, न कलश रखने से कुछ लाभ है, न दुष्टों की संगति से कुछ लाभ है, न कपट करने से कुछ लाभ है, न शीतल पदार्थों से कुछ लाभ है, न दुर्जनों से कुछ लाभ है, न दुःखों से कुछ लाभ है, न सैकड़ों धूर्ती के इकटठे करने से कुछ लाभ है, न पूज्य पुरूषों से कुछ लाभ है, न सैकड़ों पुण्यकार्य करने से कुछ लाभ है, न मोह करने से कुछ लाभ है, न मणियों के रखने से कुछ लाभ है, न वन में रहने से कुछ लाभ है, न किसी व्यसन के सेवन करने से लाभ है, न किसी स्थान पर निवास करने से कुछ लाभ है, न सुन्दर वस्त्रों के पहनने से कुछ लाभ है, न किसी कार्य के करने से कुछ लाभ है, न किसी इन्द्रिय से कुछ लाभ है, न किसी राजा को अपने वश कर लेने से कुछ लाभ है और न मिष्टरसोंके पान करने से कुछ लाभ है। बहुत कहने से क्या थोड़े से में इतना समझ लेना चाहिये कि जब तक शुद्ध चैतन्य स्वरूप अपने आत्मा की प्राप्ति नहीं होती व जब तक उसमें स्थिरता नहीं होती तब तक ऊपर लिखे हुए कृत्यों से कोई लाभ नहीं होता। तब तक ऊपर लिखे कृत्य सब निरर्थक माने जाते हैं । यही समझकर अपने आत्मंजन्य आनंद का पान करते हुए अपने

शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा में लीन हो जाना चाहिये। अन्य सबका त्याग कर देना चाहिये। क्योंकि संसार के किसी भी कार्य में लीन होने से अनंतकाल व्यतीत होने पर भ्झी शुद्ध आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती।

भावार्थ- आत्मा के शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होना ही शुद्धोपयोग है। तथा यही शुद्धोयोग मोक्ष कारण है। इस जीव को जब तक यह शुद्धोपयोग प्रापत नहीं होता तब तक यह आत्मा कल्याण के यथर्थ मार्ग पर नहीं लग सकता। यद्य॰पि व्रत, उपवास, तपश्चरण , ध्यान समिति, गुप्ति, परीषहसहन, चारित्र आदि व्यवहार साधन सब शु॰ोपयोग के साध नहैं तथापि भव्य जीवों के ये सब मोक्ष के साधन है। और अभव्यजीव के ये सब मिथ्यारूप से धारण किये जाते हैं इसलिए वे मिथ्याव्रत उपवास आदि संसार के ही कारण होते हैं। यही समझकर भव्य जीवों को सबसे पहले मोहनीयकर्म को नाश कर सम्यग्दर्शन कधारण करना चाहिए। सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान हो ही जाता है। तदनंतर सम्यक्चारित्र धारण कर पापकर्मों का नाश करते रहना चाहिये और फिर शुक्ऋोपयोग को धारण कर व अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप में स्थिर होकर समस्त कर्मों का नाश कर डालना चाहिये। समस्त कर्मो का नाश होना ही मोक्ष है, और इसी मोक्ष में अनंतकाल तक रहने वाला अनंतसुख प्राप्त होता है। फिर अनंतानंत कल्पकाल व्यतीत होने पर भी उसमें कुछ परिवर्तन नहीं होता ।

शुद्धोपयोग का विशेष वर्णन करते हैं-

प्रश्न- शुद्धोपयोगस्यारंभः ।

कस्मिन् स्थाने च लीनता ।।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि शुद्धोपयोग का प्रारम्भ कहाँ से होता है और उसकी स्थिरता व लीनता किस गुणस्थान से होती है ?

उत्तर- स्थानाच्चतुर्थात्खलु शांतिरूप-

शुद्धोपयोगस्य शिवप्रदस्य ।

प्रारंभ एवात्मरतस्य नृणां,

स्याच्छुद्धचिद्रूपपदेऽनुरागः ।।215।।

ततः किलोर्द्ध स्थिरतां स्वधर्मे,

व्रती व्रते स्वात्मरसेऽतिमिष्टे ।

प्रमादनाशाद्धि सुखं स्वभावात् ।।216।।

अर्थ- यह शुद्धोपयोग अत्यंत शांतिस्वरूप है, मोक्ष देने वाला है। और अपने आत्मा के शुद्धस्वरूप में ही रहने वाला है। ऐसे इस शुद्धोपयोग का प्रारंभ स्वात्मानुभूति की अपेक्षा चैथे गुण स्थान से होता है। तथा चैथे ही गुणस्थान से शुद्ध चिदानंद स्वरूप में अनुराग उत्पनन् होता है। तदनंतर ऊपर के गुणस्थानों मे व्रती पुरूषों में स्थिरता उत्पनन् हो जाती है तथा उससे भी आगे के गुणस्थानों मे योगी पुरूषों को अत्यंत मिष्ट ऐसे अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप में विशेष रूचि हो जाती है और फिर प्रमाद के नाश होने पर स्वभाव से ही आत्मसुख प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ- इस संसार में यह प्राणी मोहनीयकर्म के उदय से अपने आत्मा का स्वरूप भूल जाता है। तथा परपदार्थों में मोह उत्पनन् करता हुआ उनसे राग-द्वेष करने लगता है। राग द्वेष करने से अशुभोपयोग होता है। परंतु जब वह मोहनीयकर्म उपशमको प्रापत हो जाता है अथवा उसका क्षय व क्षयोपशम हो जाता है तब उस जीक के एक प्रकार का आत्मजन्य अमूर्त प्रकाश उत्पनन् होता है, जिससे यह आत्मा अपने आत्मा के यथार्थ स्वरूप को पहचानने लगता है। इस प्रकाश ाके सम्यग्दर्शन कहते हे।। इस सम्यग्दर्शन के उत्पनन् होने से यह जीव परपदार्थों को हेय समझने लगता है और आत्मा के यथार्थस्वरूप को उपादेय समझने लगता है। इस प्रकार जब उसके हेयोपदेयबुद्धि उत्पनन् हो जाती है तब अनुक्रम से उसका राग द्वेष्ज्ञ छूट जाता है।, ता रागद्वेष के छूटने से अशुभोपयोग छूट जाता है,

और शुद्धोपयोग में प्रृत्ति होने लगती है। उसी समय में शुद्धोपयोग में अनुराग होने लगता है और जितने अंश में मोहनीयकर्म का नाश हो गया है उतने अंश में आत्मा की शुद्ध अवस्था प्रगट हो जाती है। इसी को उपचारनय से शुद्धोपयोग का प्रारीा कहते हैं। तदनंतर जब अप्रत्याख्यानावरण कर्म नष्ट हो जाता तब यह जीव एकदेश व्रत धारण कर लेता है तथा प्रत्याख्यानावरणकर्म के नष्ट होने पर महाव्रत धारण कर लेता है। उस समय महाव्रत धारण करे के कारण कर्मों की अधिक निज्ञरा होती रहती है और वह योगी अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप में व शुद्धोपयोगम में विशेष रूचि उत्पनन करने लगता है। तदनंतर जब प्रमाद नष्ट हो जाता है तब वह आत्मा शुद्धोपयोग को प्राप्त हो जाता है। आगे जैसे जैसे ऊपर के गुणस्थानों में पहुचता जाता है वेसे ही आत्मा की शुद्ध अवस्था बढ़ती जाती है और घातिया कर्मो के नाश होने पर तेरहवे गुणस्थान में अत्यन्त शुद्धता प्राप्त हो जाती है। वहाँ शुद्धोपयोग की पूर्णता हो जाती हैं उसी समय अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य और अनंतसुख प्रापत हो जाता है, और ये चारों ही अनंत चतुष्टय फिर अनंतकाल तक बने रहते हैं। फिर उनमें कोई किसी प्रकार का विकार उत्पनन नहीं होता है।

शुद्धोपयोग की सिद्धि के लिए छहों द्रव्यों का निरूपण करते हैं

त्यजेन्न धर्मो गमनोपकारं,

स्थितौ सहाययं न कदाप्यधर्मः ।

नभोऽपि नित्यं ह्यवकाशदानं,

त्यजेन्न कालः परिवर्तनत्वम।।217।।

स्पर्शादिधर्मं न च पुद्गलोऽपि,

संसारिजीवश्र विभावभावम् ।

लब्ध्वोपदेशं सुगुरोर्निजात्म-

सुशुद्धचिद्रपपदं लभेत ।।218।।

पूर्वोक्त षड्द्रव्यचयस्य लक्षम,

ज्ञात्वा फल स्वात्मतरोः सुमिष्टम् ।

स्वात्मात्मना वात्मनि वात्मने वा-

त्मानः किलात्मानमपि प्रयत्नात् ।।219।।

जानाति यः पश्यति तिष्ठतीति,

शुद्धोपयोगी स मुनिः प्रपूज्यः ।

निजात्मतृप्तेन दिगम्बरेण,

श्रीकुंथुनाम्ना वरसूरिणोक्तम् ।।220।।

अर्थ- धर्मद्रव्य जीव और पुद्रलोकों गमन करने में सहायता देनेरूप अपने कर्म को कभी नहीं छोड़ता। अधर्मद्रव्य उन्हीं जीव पुद्रलों को ठहरने में सहायता देने रूप अपने धम्र को कभी नहीं छोड़तौ आकाशद्रव्य समस्त पदार्थों को स्थान देने रूप अपने धर्म को कभी नहीं छोड़ता। कालद्रव्य समस्त पदार्थों को परिवर्तन करने रूप अपने धर्म को नहीं छोड़ता। पुद्रलद्रव्य परिणामों को नहीं छोड़ते। परनतु वे ही संसारी जीव अपने वीतराग निर्ग्रंथ गुरू का उपदेश सुनकर विभावपरिणामों को त्याग कर देते हैं और अपने आत्मा के चिदानंदस्वरूप अत्यंत शुद्ध स्वभाव को प्राप्त कर लेते हैं। इस प्राकर जो जीव छहो द्रव्यों का स्वरूप समझ लेते है। और फिर अपने ही आत्मा के शुद्धस्वरूप वृक्ष् के मीठे फलों को जानकर जो चिदानंद स्वरूप शुद्ध आत्मा अपने ही आत्मा के द्वारा अपने ही आत्मा के लिये अपने ही आत्मा को देखते हैं और अपने ही आत्मा में प्रयतन्पूर्वक स्थिरता के साथ लीन रहते हैं ऐसे शुद्धोपयोगी मुनि सदाकाल पूज्य माने जाते हैं। इस प्रकार यह कथन अपने आत्मा में तृप्त रहने वाले और दिगम्बर अवस्था को धारण करने वाले आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागरस्वामीने निरूपण किया है।

भावार्थ- इस संसार में छह द्रव्य हैं जीव, पुद्रल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनमें से पुद्रलद्रव्य रूपी है। जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चार गुण हों उसको रूपीद्रव्य कहते हैं ये चारों गुण साथ-साथ रहते हैं। जैसे वायु में केवल स्पर्शगुण जान पड़ता है परंतु उस वायु में चारों ही गुण रहते हैं जिस समय साइंस के द्वारा पानी को दो प्रकार की वायु में परिणत करते हैं तो वह पानी में रहने वाला रूप सुक्ष्मरीति से वायु में परिणत हो जाता है। तदनंतर यदि उन्हीं दोनों प्रकार की वायु को पानी में परिणत कर लेते हे। तब वही सुक्ष्मरूप स्थूलरूप होकर प्रगट हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि वायु में रूप है। यदि वायु में रूप नहीं होता तो उससे बने हुए पानी में काहं से आता। परंतु वायु से बने हुए पानी में रूप दिखाई पड़ता है इसलिय वायु में भी रूप अवश्य मानना पड़ता है तथा जहाँ-जहाँ रूप होता है वहाँ-वहाँ रस और गंध भी अवश्य होते हैं। जैसे- आम में रूप है इसलिए उसमें स्पर्श, रस, गंध भी है। इस प्रकार वायु में चारों गुण अवश्य मानने पढ़ते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी में चारों गुण है। जल में चारों गुण हैं अग्नि में चारों गुण है। क्योंकि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चारों ही पौद्रलिक है। इसी प्रकार शब्द भी पौद्रलिक है। क्योंकि वह कान से सुनाई पड़ता है। कान से सुनाई देने के कारण उसमें स्पर्शगुण मानना ही पड़ता है। इसके सिवाय तोप आदि के शब्दों से बड़े-बड़े मकान हिल जाते हैं व गिर जाते है। स्त्रियों के गर्भ गिर जाते है। इससे सिद्ध होता है कि शब्द में स्पर्शगुण अवश्य है। जहां स्पर्श रहता है वहां रूप भी अवश्य रहता है और रूप के साथ रस, गंध भी अवश्य रहता है इस प्रकार रूप, रस, गंध गुण सूक्ष्मरीति से रहते है। । इन चारों गूणों के रहने से शब्द पौद्रलिक है यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है। यह पुद्रल अपने इन गुणों को कभी नहीं छोडता। इसके सिवाय इस पुद्रलद्रव्य में क्रिया भी होती है अर्थात् पुद्रल में गमन करने की भी शक्ति है। जैं वायु बिना किसी की सहायत से चलता है। इस प्रकार अन्य पदार्थ भी हल्के होने पर चलने लगते है। तथा जीव में चलने की शक्ति है ही। इस प्रकार जीव और पुद्रल दोनों मे चलने की शक्ति रहते हुए भी इनके चलने में

धर्मद्रव्य सहायक होता है। जैसे मछली में चलने की शक्ति रहते हुए भी उसके चलने में पानी सहायक होता है। यदि पानी न हो तो मछली नहीं चल सकती। इसी प्रकार यदि धर्मद्रव्य न हो तो जीव-पुद्रल भी नहीं चल सकते। जीव-पुद्रलों के चलने से ही धर्मद्रव्य की सत्त सिद्ध होती है। इसी प्रकार जीव-पुद्रलों के ठहरने में छाया सहायक हो जाती है। जीव-पुद्रलों के ठहरने में अधर्मद्रव्य की सत्ता सिद्ध होती है। धर्म-अधर्म दोनों ही द्रव्य व्यापक ही है। और कालद्रव्य द्रव्यों के परिवर्तन होने में कारण है। काल के प्रत्येक समय में प्रत्येक पदार्था का परिवर्तन हुआ करता है। इस प्रकार परिवर्तन होते-होते कोई भी नवीन पदार्थ कालांतर में जीर्णरूप हो जाता है। इससे काल की सत्त सिद्ध होती है। जीवपदार्थ चैतन्यस्वरूप है यह पहले बता ही चुके है।। जीवों में जो संसारी जीव है। वे सब राग-द्वेष रूप विभावपरिणामों को प्रप्त होते रहते है। तथा उन्हीं विभावपरिणामों के कारण चारों गतियों में परिभ्रमण करते रहते हे।। इस प्रकार जीव, पुद्रल,धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये छह द्रव्य कहलाते है।। इन छहों द्रव्यों में से जब यह गुरू के उपदेश को सुनकर अपने विभावपरिणामों का त्याग कर देता है और अपनी आत्मा के शुद्धस्वरूप को जानकर उसी को ग्रहण करने लगता है उस समय यह जीव ऊपर लिखे छहों द्रव्यों को हेय समझकर उन सबका त्याग कर देता है।। तथा आत्मकल्याण के लिये अपनी आत्मा के शुद्धस्वरूप को प्रगटकर उसी अपने आत्मा के शुद्धस्वरूप में जीन व स्थिर हो जाता है। इसी शुद्ध आत्मा में स्थिर होने को शुद्धोपयोग कहते है।। यह शुद्धोपयोग समस्त कर्मों को नाश करने वाला है और साक्षात् मोक्ष काकारण है। ऐसा आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागरस्वामीने निरूपण किया है। इसका स्वरूप समझकर समस्त भव्य जीवो को अपने कल्याणमार्ग में लग जाना चाहिए। यही उनके निरूपण करने का अभिप्राय है।

जीवों को अवगाहन बतलाते हैं-

प्रश्न- जीवानामवगाहश्र कियन्मे साम्प्रतं वद।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि जीवों का अवगाह कितना है ?

उत्तर- अवगाहनेन जीवाः सन्ति देहप्रमाणकाः ।

प्रदेश एकजीवस्य संख्यातीता जगत्समाः ।।221।।

वीतरागजिनेन्द्रस्यानन्तं ज्ञानं नभः समम् ।

ज्ञानापेक्षया व्याप्ताः सर्वेजीवा नभः समाः ।।222।।

यद्येवं प्राणिनां लक्ष्म न स्यात्त्हि निरजनम् ।

सुखदुःखादिसन्बन्धः सर्वैः सार्द्ध भवेद्ध्रुवमफ ।।223।।

किन्तेवं दृश्यते नातो ग्राह्यः पूर्वविधिर्मुदा ।

भव्या मोहं यतस्त्यक्त्वा लभेरन्मुक्तिकामिनीम् ।।224।।

अर्थ- अवगाहन की अपेक्षा ये समस्त जीव अपने-अपने शरीर के प्रमाण समान हैं तथा प्रदेशों की अपेक्षा प्रत्येक जीव के लोकाकाश के प्रदेशों के समान असंख्यात प्रदेश है। भगवान् वीतराग सर्वज्ञादेव का ज्ञान अनंत आकाश के समान व उससे भी अनंत गुणा है। इसलिए ज्ञान की अपेक्षा समस्त जीव आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त है।

कदाचित् यहाँ पर कोई प्रशन करे कि यदि ज्ञान की अपेक्षा जीव को व्यापक माना जायगा तो फिर जीव का निरंजन चिह्न सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि जीव को व्यापक मानने से सुख-दुख का संबंध समस्त जीवों के साथ हो जायेगा, परनतु ऐसा दिखाई नहीं देता । इसलिए ज्ञान की अपेक्षा भी जीव को व्यापक नहीं मानना चाहिये। इस प्रशन का उत्तर यह है कि पहले कहीं हुई विधि को ग्रहण करने से ऊपर लिखा दोष नहीं आता अर्थात् जब यह जीव अन्य समस्त पदार्थों को त्यागकर केवल अपने आत्मा में लीन हो जाता है तब उसका संबंध केवल अपने आत्मा से रह जाता है अन्य सबसे संबंध छूट जाता है। तथा यह भव्यजीव मोह का

तयागकर मुक्ति रूपी कन्या को प्रापत कर लेता है।

भावार्थ- जिस प्रकार दर्पण में समस्त पदार्थों का प्रतिबिम्ब पड़ता है, सामने के समस्त पदार्थ उसमें दिखाई पडत्रते हैं तथापि वह दर्पण उन पदार्थों के पास नहीं पहुंचता है और न वे पदार्थ दप्रण के समीप आ जाते हैं किंतु उस दर्पण की निर्मलता के कारण उसमें समस्त पदार्थी का प्रतिबिंब पड़ जाता हैं इसी प्रकार आत्मा का ज्ञान आत्मा में ही रहता है वह आत्मा को छोड़कर अन्यत्र कभी नहीं जाता, किन्तु उस ज्ञान में निर्मलता हाहेने के कारण लोकाकाश के समस्त पदार्थ उसमें प्रतिभासित होते है। तथा समस्त अलोकाकाश भी उसमें प्रतिभासित होता है इसी को ज्ञान की व्यापकता कहते है। ऐसा मानने से किसी भी जीव के सुख दुःख किसी भी दूसरे जीव के साथ संबंधित नहीं हों सकते और न जीव का निरंजन लक्षण नष्ट हो सकता है। अतएव यह जीव ज्ञान की अपेक्षा व्याप्त है, प्रदेशें की अपेक्षा व्याप्त नहीं है। प्रदेशों की अपेक्षा से यद्यपि उसके अंख्यात प्रदेश है और लोकाकाश के प्रदेशों के समान है तथापि वे शरीर के प्रमाण ही रहते है। यह जीव जैसा छोटा व बड़ा शरीर धारण करता है उसी के समान जीव के प्रदेश हो जाते है।जीव क`प्रदेशों में संकोच विस्तार होने की शक्ति है। जिस प्रकार किसी दीपक को यदि घड़े के भीतर रखा दें तो उसका प्रकाश घड़े के ही समान होता है। और उसी दीपक को उस घड़े से नकालकर यदि किसी बड़े कमरे में रख दें तो उसका प्रकाश फैलकर समस्त कमरे मं फैल जाता है जैसे इस दीपक में संकोच-विस्तार होने की शक्ति है उसी प्रकार जीव के प्रदेशों में संकोच-विस्तार होने की शक्ति है। उसी प्रकार जीव के प्रदेशों में संकोच-विसतार होने की शक्ति है। इसलिये यह जीव जब छोटा शरीर धारण करता है तब उसके प्रदेश संकुचित होकर उसी शरीर के समान हो जाते है।, जब यह जीव बड़ा शरीर धारण करता है तब उसके प्रदेश विस्तृत होकर उस बड़े शरीर के समान हो जाते है। इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक जीव के प्रदेश असंख्यात है। और अवगाहन की अपेक्षा समस्त जीव अपने-अपने शरीर

के प्रमाण के समान है। युक्त जीव सब अपने-अपने अंतिम शरीर के समान अवगाहना धारण करते है। जिस शरीर से वे मुक्त होते हे। व कर्मों को नाश करते हैं उसी शरीर के समान उन मुक्त जीवों की अवगाह रहती है।। पहले शरीर की अवगाहना कर्मों के उदय से बदलती थी तथा उन्हीं कर्मों के उदय से जीव की अवगाहना भी बदल जाती थी परंतु मुक्त होन पर समस्त कर्म नष्ट हो ही जाते है। । क्योंकि समस्त कर्मों का नाश होना ही मोक्ष है। इसलिए मुक्त होने के समय में जो शरीर और जीव की अवगाहना थी फिर उस जीव की वही अवगाहना ज्यों की त्यों बनी रहती है कर्मो के नष्ट होने से फिर वह बदल नहीं सकती । क्योंकि फिर उसके बदले का कोई भी कारण नहीं रता है। इसलिए मुक्त जीवों की अवगाहना अंतिम शरीर के समान ही होती है।

शुद्धोपयोग प्राप्त करने के लिए कौन सा धर्म स्वीकार करना चाहिए यह बतलाते हैं-

प्रश्न- शुद्धोपयोगसिद्धयर्थं कीदृगधर्मो वरो वद ।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि शुद्धोपयोग प्राप्त करने के लिये कौन सा धर्म स्वीकार करना चाहिये ?

उत्तर- शुद्धोपयोगी सुगुरूर्ब्रवीति,

ह्येकोऽस्ति धर्मो वरवीतरागः ।

त्राता स लोकेऽखिलप्राणिनां वै,

सम्पद्विधायीति विपद्विनाशी ।।225।

पूर्वोक्तरीतेः खलु यो विरूद्धः,

स एव निद्योऽस्ति सरागधर्मः ।

तथापि धर्मोऽस्त्यशुभोपयोगी,

ह्याश्चर्यमेवं कुगूरूर्ब्रवीति ।।226।।

ज्ञात्वेति निन्द्यं च सरागधर्मं,

त्यक्त्वैव गृह्णातु विरागधर्मम् ।

यतस्त्रिलोके स्वरसस्य पानं,

स्याच्छुद्धचिद्रपसुखस्य चर्चा ।।227।।

अर्थ- शुद्धोपयोग का धारण करने वाले गुरू यही उपदेश देते हैं कि इस संसार में एक वीतराग धर्म ही सबसे उत्त्म धर्म है। यही वीतरागधर्म इस संसार में समस्त जीवों की रक्षा करने वाला है, आत्मा को अनंतचतुष्टय आदि समस्त विभूतियों को देने वाला है और संसार की समस्त विपत्तियों को नाश करने वाला है। इस वीतरागधर्म से जो विरूद्ध है वह निंदनीय सरागधर्म कहलाता है। यद्यपि यह सरागधर्म निंदनीय और त्याग करने योग्य है तथपि अशुभोपयोग को धारण करने वाले कुगूरू इस सरागधर्म को ही धर्म कहते है। यह भी एक आश्चर्य की ही बात है। यही समझकर भव्य जीवों को इस निंदनीय सरागधर्म का त्याग कर देना चाहिए और पमपूज्य वीतरागधर्म को धारण कर लेने से यह जीव तीनों लोकों मे अपने शुद्धात्मजन्य परमरस का पान करने लगता है और चिदानंदमय शुद्ध आत्मा के परम सुख को प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ- धर्म के दो भेद हैं एक सरागधर्म और दूसरा वीतराग धर्म। सरागधर्म को धारण करने वाले गृहस्थ और मुनि दोनों ही होते है। और वीतराग धर्म को धारण करने वाले केवल उत्तम मुनि ही होते है। जो आत्मा समस्त मोह का त्याग कर केवल अपने शुद्ध आत्मा में लीन हो जाता है उसके वीतराग धर्म होता है। यही वीतराग धर्म साक्षात् मोक्ष का कारण है। इस संसार में होने वाले चारों गतियों के दुःखों से बचाने वाला है, और अनंतचतुष्टय आदि आत्मा की समस्त विभूतियों को देने वाला है। सरागधर्म के दो भेद है। ऐ एकदेश धर्म और दूसरा पूर्ण धर्म। ग्रृहस्थ व श्रावक लोग एकदेश धर्म को धारण करते है। और मुनि लोग पूर्णधर्म को धारण करते है। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों का पालन

करना और अंत में समाधि मरण धारण करना गृहस्थों का धर्म है। पंचमहाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समिति यह तेरह प्रकार का चारित्र पूर्णसराग धर्म है अथवा जब तक इस जीव के राग अवस्था रहती है तब तक उस जीव के सरागधर्म रहता है और रागद्वेष के छूट जाने पर वीतराग धर्म उत्पनन् होता है। यह सरागधर्म परंपरा से मोक्ष का कारण है और वीतराग धर्म साक्षात् मोक्ष का कारण है। इस सरागधर्म और वीरागर्ध से जो सर्वथा विरूद्ध है उसको मिथ्याधर्म कहते है। यह मिथ्याधर्म तीव्र रागद्वेष रूप है इसलिए संसार का कारण है यह मिथ्याधर्म अशुभोपयोग को धारण करने वाले कुगुरू ही इस मिथ्याधर्म का उपदेश देते हैं यही समझकर भव्यजीवों को इस मिथ्याधर्म का त्याग कर देना चाहिए और सरागधर्म को धारण कर लेना चाहिए। तदनंतर धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा रागद्वेष को सर्वथा नष्ट करते रहना चाहिए। रागद्वेष का अभाव होते हुए सरागधर्म भी छूटता जाता है तब यह जीव परमोत्तम और अत्यंत शुद्ध ऐसे वीतरागधर्म को प्रापत कर लेता है। आत्मा के कल्याण करने का यहीसबसे उत्तम मार्ग है।

शुद्धोपयोग के लिए विचार करते है-

प्रश्न- शुद्धोपयोगसिद्धयर्थं विचारः क्रियते पुनः ।।

अर्थ- अब आगे शुद्धोपयोग की प्राप्ति के लिए कुछ थोड़ा सा विचार करते हैं।

उत्तर- द्रव्यादिकर्मणः स्वात्मरागादिभावकर्मणः ।

देहादिकर्मणोऽत्यन्तभिन्नश्रिद्रूपनायकः ।।228।।

शुद्धोपयोगिनः साधोः स्वभावादिति निश्रयः ।

चित्ते मे जायते चैवमागाधो महिमा ह्यहो ।।229।।

अर्थ- शुद्ध चिदानंदस्वरूप यह मेरा आत्मा ज्ञानावरण आदि आठों द्रव्यकर्मों से, रागद्वेष आदि भावकर्मों से और शरीर आदि नाकर्मों से

सर्वथा भिनन्न है, जो मुनि शुद्धोपयोग को धारण करते हैं उनको स्वभाव से ही यह निश्च हो जाता हैं इसलिये मेरे हृदय में इस चिदानंद स्वरूप शुद्ध आत्मा की महिमा अगाध सिद्ध हो जाती है।

भावार्थ- ज्ञज्ञनावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय ये आठों कर्म तथा इन आठों कर्मों के एस सौ अड़तालीस भेद सब द्रव्यकर्म कहलाते है। आत्मा के जिन परिणामों से ये द्रव्यकर्म आते है। ऐसे राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि सब भावकर्म कहलाते हैं। तथा जिन पुद्रल वर्गणाओं से औदारिक वैक्रियक, आहारक ये तीनों शरीर बनते हैं और छहों पर्याप्तियाँ बनती है। उन पुद्रल वर्गणाआं को नोकर्म कहते है। इस प्रकार कमी के द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म ये तीन भेद होते है।। ये तीनों ही प्रकार के कर्म अशुद्ध जीव के ही होते है। मेरा आत्मा शुद्ध है, इसलिये वह द्रव्यकर्म , भावकर्म और नोकर्म तीनों से रहित है, परंतु ऐसा निश्चय शुद्धोपयोग धारण करने वाले उत्तम मुनियो को ही होता है। ईलिये वे मुनि ही इसका निश्च कर सकते है। वास्तव में देखा जाय तो शुद्ध आत्मा की महिमा अगाध है, कोई भी पुरूष इसका पार नहीं पा सकता अतएव भव्यजीवों को अपना आत्मा सर्वथा शुद्ध बना लेना चाहिये, जिससे कि समस्त कर्म नष्ट होकर शीघ्र ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाये।

बाह्या पदार्थों के तयाग करने से कुछ लाभ होता है या नहीं यही बतलाते हैं-

प्रश्न- स्याद्वाह्यवस्तुनस्त्यागात्कोऽपि लाभो न मे वद ।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि बाह्य पदार्थों के त्याग करने से कुछ लाभ होता है या नहीं।

उत्तर- बहाह्यादिवस्तुलाभेन कोऽपि लाभो भवेन्न हि ।

न तदलाभतो हानिर्मानापमानतस्तथा ।।230।।

एवं स्यान्निश्चयो यस्य स स्यात्स्वमीक्षदायकः ।

सोपि शुद्धोपयोगीति ज्ञेयः सिद्धयै प्रमाणतः ।।231।।

अर्थ- बाह्या पदार्थों के लाभ होने से मेरे आत्मा को कोई लाभ नहीं होता तथा बाह्य पदाथी की प्राप्ति न होने से मेरी कोई हानि नहीं होती । इसी प्रकार मेरा मान होने से मेरा कुछ लाभ नहीं होता और मेरा अपमान होने से मेरे आत्मा की कुछ हानि नहीं होती। यह निश्चय करने वाला महात्मा स्वर्ग-मोक्ष को प्रापत होता है और स्र्व मोक्ष को देनेवाला होता है। तथा उसी को शुद्धोपयोग का धारण करने वाला कहते है। और वही जीव सिद्ध अवस्था को प्रापत होता है। ऐसा प्रमाण से सिद्ध होता है।

भावार्थ- धन, संपत्ति, कुटुंब, राज्य आदि संसार के समस्त सामग्री बाह्यपदार्थ कहलाते है।, यहाँ तक कि शरीर भी बाह्यपदार्थ है, और रागद्वेषादिक भाव भी आत्मा के शुद्ध स्वभाव से िभन्न बाह्यपदार्थ है। इन पदाथी के मिल जाने से आत्मा को कोई लाभ नहीं होता तथा न मिलने से आत्मा की कोई हानि नहीं होती। यदि वास्तव में देखा जाय तो इन बाह्यपर्दाि के मिल जाने से आत्मा के शुद्धस्वरूप की हानि हो रही है। इन बाह्यपदार्थों का मोह ही इस आत्मा को यथार्थ स्वरूप समझ लेता है और इन पदाथी को अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप से सर्वथा िभन्न समझ लेता है तब वह इन पदार्थों का मोह छोड़ देता है, तब इन पदाथी का आत्मा से किसी प्रकार का संबंध नहीं रहता। ऐसा होन पर इन पदाथी के मिलने व न मिलने से आत्मा को कोई हानि लाभ नहीं होता। इसी प्रकार मान व अपमान होने से भी शुद्ध आत्मा को कोई हानि लाभ नहीं होता। इस प्रकार बाह्य समस्त पदार्थों से आत्मा की सर्वथा भिन्न अवस्था प्राप्त हो जाती है उसी को शुद्धोपयोग कहते है। ऐसा शुद्धोपयोग ही मोक्ष प्राप्त कराने वाला है और मोक्ष का साक्षात् कारण है। यही समझकर भव्यजीवों को सबसे पहले मोह त्यागकर देना चाहिये। मोह का त्याग कर देने से बाह्य पदार्थों को संबंध छूट जाता है। और शुद्ध अवस्था प्रापत होकर शीघ्र ही मोक्ष की प्रापित हो जाते हैं।

ध्याता ध्यान और ध्येय में भेद अभेद दोनों दिखलाते हैं।

प्रश्न- ध्यातृध्यानसुध्येयेषु भेदोऽस्ति वा न मे वद ।

अर्थ- हे गुरो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि ध्याता ध्यान और ध्येय का चिह्न व इनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर- यो ध्यायति शुद्धात्मा, ध्याता, स्वात्मैव स्वात्मनि ।

शुद्धात्मानं स्वकीयं च. तद्ध्येयं ध्यायतीति वा ।।233।।

ध्यानं स एव शुद्धात्मा, यतस्तेनैव चिन्त्यते ।

प्रोक्तं च स्वात्मतुष्टेन, कुंथुसागरसूरिणा ।।234।।

अर्थ- जो अपना ही शुद्ध आत्मा अपने ही आत्मा में ध्यान करता है वह ध्यान करने वाला शुद्धद्धात्मा ध्याता कहलाता है। तथा वह शुद्धात्मा अपने ही शुद्धात्मा का चिंतवन करता है इसलिए उसका वही शुद्धात्मा ध्येय कहलाता है और वह शुद्धात्मा अपने उसी शुद्धात्मा के द्वारा चिंतवन करता है इसलिए उसका वही शुद्धात्मा ध्यान कहलाता है। इस प्रकार अपने आत्मा में संतुष्ट रहने वाले आचार्य श्री कुंथुसागर ने निरूपण किया है।

भावार्थ- ध्यान करने वाले को ध्याता कहते है।, जिसका ध्यान किया है उसको ध्येय कहते हैं और ध्यान करने व चितवन करने की ध्यान कहते है। यहाँ पर अपना शुद्ध आत्मा ही ध्यान करने वाला है। अपने ही शुद्धात्मा का ध्यान किया जाता है और उसी शुद्ध आत्मा में लीन होकर उसका ध्यान किया जाता है। इसलिये वहीं अपना शुद्धात्मा ध्याता है। वही अपना शुद्धात्मा ध्येय है और वही शुद्धात्मा ध्यान है। उस ध्यान में किसी प्रकार का संकल्प विकल्प नहीं है। वह शुद्धात्मा में लीन होकर निश्चल अवस्था को धारण कर लेता है। इसीलिये उसमें ध्यान, ध्येय, ध्याता तीनों ही अपने शुद्धात्मा स्वरूप ही होते है। और इसीलिये वे तीनों एक ही शुद्धात्मा स्वरूप कहे जाते है।

शूद्धोपयोग की सिद्धि के लिये कैसी भावना रखनी चाहिये यही दिखलाते हैं-

प्रश्न- भावना कीदृशी कार्या शुद्धोपयोगसिद्धये ।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये शुद्धोपयोग प्राप्त करने के लिये कैसी भावना रखनी चाहिये ?

उत्तर- नित्ये निजानन्दपदे निषद्या,

शुद्धेऽस्ति चर्यापि निजप्रदेशे।

चिद्रूपशय्याशयनं सदा मे,

शुद्धोपयोगीति स यस्य भावः ।।235।।

अर्थ- जो योगी सदाकाल रहने वले अपने चिदानंद स्वरूप शुद्धात्मा में ही अपनी निषद्या व बैठक समझता है जो अपने आत्मा के ही शुद्ध प्रदेशों में चर्या गमनागमन समझता है और अपने ही शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा को शय्यारूप समझकर उसी पर शयन करता रहता है। इस प्रकार जो सदाकाल अपनी भावनाएँ रखता है उसको शुद्धोपयोग को धारण करने वाला समझना चाहिये।

भावार्थ- जब यह शुद्ध आत्मा अपने ही स्वरूप में लीन हो जाता है, यहाँ तक कि ध्याता ध्यान और ध्येय तक का विकल्प छोड़ देता है उस समय वह आत्मा अपने ही शुद्ध आत्मा में स्थिरता के साथ लीन हो जाता है । उस समय में वह शुद्धात्मा अपने ही उस शुद्धात्मा में चर्या करने वाला, बैठने वाला व सोने वाला समझा जाता है। यद्यपि वहाँ पर शय्या निषद्या कुछ है नहीं केवल शुद्ध आत्मा में व अपने ही शुद्ध स्वरूप में लीन है तथापि वह शुद्धात्मा अपनपे शुद्ध आत्मा को सब प्रकार से सुख्या देने वाला समझता है। उसी को सुख देने वाली शय्या समझता है उसी काो सुख से बैठने योग्य आसन समझता है और उसी को विहार करने योग्य स्थन समझता है। इस प्रकार जो अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप में सर्वथा

लीन रहने की भावना रखता है उसी को शुद्धोपयोगी समझना चाहिए। शुद्धोपयोग को धारण करने वाला जीव कुछ वचन भी कहता है या नहीं यही दिखलाते हैं-

प्रश्न- कचिच्छुद्धोपयोगीह ब्रवीति वा न मे वद ।

अर्थ- अब कृपाकर यह बतलाइये कि श्खुद्धोपयोग को धारण करने वाला जीव कभी कुछ वचन कहता है या नहीं ।

उत्तर- प्रायश्रिदानन्दमयी विरागी,

शुद्धोपयोगी भवतीति मौनी ।

शुद्धात्माशान्त्यै यदि चेद् ब्रवीति,

हितं मितंशांतिकरं प्रियं वा ।।236।।

दृगबोधचारित्रमयो ममात्मा,

साध्यः प्रसिद्धो व्यवहारतोऽस्ति ।

चिद्रपमूर्तिः परमार्थ तो वा,

ह्यादयन्तमध्यादिविवर्जितोऽस्ति ।।237।।

अर्थ- शुद्धोपयोग को धारण करने वाले और परम वीतराग अवस्था को धारण करने वाले चिदानन्दस्वरूप शुद्ध आत्माएँ प्रायः मौन धरण करते है। यदि वे अपने शुद्ध आत्मा में परमशांति स्थपन करने के लिये कभी कुछ वचन कहते हैं तो हितरूप परिमित अत्यंत प्रिय और परम शांति उत्पनन हकरने वाले वचन कहते है, मेरा यह आत्मा सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमय है, व्यवहार से सिद्ध करने योग्य है, संसार में प्रसिद्ध है, परमार्थदृष्टि से शुद्ध चैतन्यस्वरूप है और आदि-मध्य-अंत तीनों से रहित है। इस प्रकार अपने शुद्ध आत्मा के स्वरूप का निरूपण करते हैं।

भावार्थ- जब यह शद्ध आत्मा अपने शुद्धस्वरूप में जीन रहता है तब उसक`शुद्धोपयोग होता है। उस समय वह कुछ भरी क्रिया नहीं करता। न श्यारीर से कुछ क्रिया करता है, न मन से कुछ चिंतवन करता है और न वचन से कुछ कहता है। उस समय वह सर्वथा मौन धारण करता है, परंतु ध्यान के अनंतर यदि वह किसी भव्यजीव से कुछ कहता है तो सब जीवों के हित करने वाले वचन कहता है, जितने वचनों की आवश्यक्ता होती है उतने ही वचन कहता है अधिक वचन नहीं कहता। तथा सबको प्रिय लगने वाले वचन कहता है अप्रिय कटुक व निंदनीय वचन कभी नहीं कहता। इसके सिवाय समस्त जीवों में शांति उत्पनन करने वाले वचन कहता है क्षद्वोभा उत्पनन् करने वाले व कषाय उत्पनन करने वाले वचन कभी नहीं कहता। अथवा जब कभी उपदेश देने का काम पड़ता है तो उनका यही उपदेश होता है कि यह मेरा आत्मा अत्यंत शुद्ध है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और समयक्चारित्र स्वरूप है, शुद्ध चैतन्यस्वरूप है और आदि-मध्य-अंत तीनों से रहित है। यद्यपि परमार्थदृष्टि से आत्मा का यही स्वरूप है तथापि संसारी जीवों को अपनी आत्मा को व्यवहारचारित्र धारण कर शुद्ध कर लेना चाहिये। इसीलिए इसको व्यवहार से सिद्ध करने योग्य बतलाया है। उन परम योगियों का उपदेश इसी प्रकार का होता है।

यथार्थ विजयी का स्वरूप कहते हैं-

प्रश्न- सत्यार्थविजयी कः स्यात् वद मे सांप्रतं प्रभो।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि इस संसार में कौन सा विद्वान मनुष्य यथार्थ विजयी कहलाता है।

उत्तर- व्याघ्रस्य सिंहस्य वशं विधाता,

शत्रोर्विजेताक्षसुखादि भोक्ता ।

गजाश्रजन्तोर्मणिरत्नपृथ्व्याः,

परीक्षकः शोधक एव सुज्ञः ।।238।।

दृष्टा अनेके भुवि किंतु नैव,

कर्मारिजेतात्प्रसुखस्य भोक्ता ।

शुद्धात्मरूपस्य परीक्षकश्च,

शुद्धोपयोगी विरलः कृतार्थी।।239।।

अर्थ- इस संसार में सिंह व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं को वश करने वाले बहुत है, अपने प्रबल शत्रुओं को जीतने वाले भी बहुत है।, उत्तम से उत्तम इंद्रियों के सुखों को भोगने वाले भी बहुत है।। हाथी घोड़े आदि पशुओं की परीक्षा करने वाले व मणिरतन्- पृथ्वी आदि का संशोधन करने वाले विद्वान-पुरूष इस संसार में अनेक हैं, परन्तु कर्मों के जीतने वाले, आत्मसुख का उपभोग करने वाले, अपने शुद्ध स्वरूप की परीक्षा करने वाले, कृतकृत्य और शुद्धोपयोग को धारण करने वाले जीव बहुत ही थोड़े हैं। अथवा ये कहना चाहिए कि ऐसे जीव हैं ही नहीं।

भार्वाार्थि- जो जीव अपने शत्रुओं को जीत लेते है। उनको विजयी कहते हे। जो कोई अपने आत्मा व शरीर को दुःख देता है उसको शत्रु कहते है। जैसे कोई मनुष्य किसी का धन लूटता है व उसके किसी कुटुंबी को मार देता है तो वह उसका शत्रु कहलाता है। वास्तव में देखा जाय तो वह जीव उसका शत्रु नहीं है किंतु इस संसार में जितना सुख दुःख होता है वह सब अपने अपने कर्म के उदय के निमित्त से होता है। यदि अशुभ कर्म का उदय न हो तो कोई किसी का धन नहीं ले सकता। अथवा कोई किसी को नहीं मार सकता। अपने अशुभ कर्म के उदय होने पर ही कोई भी मनुष्य व पशु पक्षी अपने को व कुटुंबी को मार सकता है। हां ! उसमें कोई न कोई निमित्त् कारणअवश्य मिल जाता है और वह कर्म का उदय ही उस निमित्त् को मिला लेता हैं इससे सिद्ध होता है कि मारने वाला तो निमित्तमात्र है। वास्तव में मारने वाला तो अपना कर्मरूप शत्रु है। इसीलिए जो पुरूष अपने उस प्रबल कर्मरूपी शत्रु को जीत लेते है। वे ही यथार्थ

विजयी कहलाते हैं। जिस प्रकार शत्रु को जीतने वाला अनेक प्रकार की सुख्या सामग्री प्राप्त कर सुख का अनुभव किया करता है उसी प्रकार कर्मरूपी शत्रुओं को जीततने वाला पुरूष भी अनंतचतुष्टयरूपी महाविभूति को प्राप्त कर आत्मजन्य अनुपम अनंत सुख का अनुभव किया करता है और शुक्रोपयोग को धारण करने वाला वह कृतकृत्य कहलाता है। परंतु इस प्रकार कर्मरूप यथार्थ शत्रुओं को विजय करने वाले इस संसार में मिलते नहीं है। यदि मिलते हैं तो बहुत ही विरले व बहुत ही थोड़े मिलते है। यही समझकर भव्यजीवों को यथार्थ शत्रुओं को स्वरूप समझकर उन्हीं कर्मरूप शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयतन करते रहना चाहिये। उसमें भी सबसे पहले मोहनीयकर्म को नाशकर शुद्धोपयोग को धारण करने का प्रयतन करना चाहिये। जिससे कि शीघ्र ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाये।

आत्मा का आधाराधेय भाव बतलाते हैं-

प्रश्न- आधारः कश्र लोकेऽस्मिन् स्वात्मनो मे गुरो वद ।

अर्थ- हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि इस संसार में इस मेरे आत्मा का आधार क्या है।

उत्तर- अनादिकर्मसम्बन्धादाधयशरः स्वात्मनो वपुः,

अथवा पृथिवी ज्ञेया, क्वचिद्बन्धुजनादिकः ।।2401।।

आधेयोपि स एव स्याद् योगी जानाति शुद्धधीः ।।241।।

अर्थ- इस संसारी जीव के साथ अनादिकाल से कर्मो का संबंध लगा हुआ है । उस कर्मों के संबंध से देखा जाय तो इस अपने संसारी आत्मा का आधार यह शरीर है। अथवा उस शरीर विशिष्ट आत्मा का आधार पृथ्वी है तथा उस शरीरविशिष्ट आत्मा के पालन-पोषण की दृष्टि से देखा जाय तो कहीं-कहीं पर भाई बंधु भी इस जीव के आधार बन जाते है।, परंतु यदियथार्थदृष्टि से देखा जाय तो कर्मबंधन से रहित यह अपना

शुद्ध आत्मा ही अपने शुद्ध आत्मा आधार है, तथा यही अपना शुद्ध आत्मा आधेय है। इस आधाराधेय-भाव को शुद्ध बुद्धि को धारण करने वाले योगी ही जानत है।

भावार्थ- वास्तव में देखा जाय तो यह आत्मा कर्मों से सर्वथा रहित शुद्ध है, परंतु अनादिकाल से ही कर्मों के बंधन में बँध हुआ है। तथा कर्मो के बंधन में बँध जाने के कारण ही वह अनेक प्रकार के शरीर को धारण करता रहता है, और उस शरीर के प्रमाण ही रहता है। इसलिए यदि इस दृष्टि से देखते हैं तो इस आत्मा का आधार शरीर है, क्योंकि इस शरीर में ही आत्मा रहता ह। परंतु वह शरीर मूर्त होने से निराधार रह नहीं सकता, इसलिए वह आत्मविशिष्ट शरीर इस पृथ्वी पर ही रहता है अथवा लोकाकाश के किसी भी स्थान में रहता है। इसलिए इस जीव का आधार इस पृथ्वी को मानना पडत्रता है। अथवा इस लोकाकाश को मानना पड़ता है। इसके सिवाय इस पृथ्वी को आधार मानते हुए भी बालक अवस्था में अथवा किसी रोग की अवस्था में व अन्य किसी निरूपाय अवस्था में व पालन पोषण की दृष्टि से भाई-बंधुओं को व माता-पिताओं को भी आधार मानना पड़ता है। ये सब आधार कर्म और शरीर सहित जीव के हैं, परंतु वास्तव में देखा जाय तो शरीर और कर्म दोनों ही पौद्रलिक और जड़ स्वरूप है तथा यह आत्मा ज्ञान दर्शन स्वरूप चैतन्यमय है। कर्म मूर्त है, आत्मा अमूर्त है। इसलए यह आत्मा शरीर व कर्मों से सर्वथा भिनन्‌ है ऐसा यह अमूर्त आत्मा अपने ही प्रदेशों में व अपने ही स्वरूप में रहता है इसलिए इस अपने शुद्धस्वरूप आत्मा का आधार यही अपना शुद्ध आत्मा रहता है इसलिए यही अपना शुद्ध आत्मा आधेय है। इस शुद्ध आत्मा के आधाराधेय भाव को केवल शुद्धउपयोग को धारण करने वाले योगी पुरूष ही जानते हैं उससे रहित संसारी जीवन नहीं जानते। संसारी जीव तो व्यवहार दृष्टि में लगे रहते हैं, इसलिए वे तो पृथ्वी आदि आधार को ही जानते है।। शुद्ध आत्मा के आधाराधेय को शुद्ध आत्मा को धारण करने वाले योगी ही जानते हैं।

विश्व धर्म का निरूपण करते है।-

शुद्धोपयोगसिद्धयर्थं विश्वधमी विवेच्यते ।

अर्थ- शुद्धोपयोग की सिद्धि के लिए गुरू स्वयं विश्वधर्म का निरूपण करते है।

उत्तर- धनस्य बुद्धेः समयस्य शक्तः,

नियोजनं प्राणिहिते सदैव ।

स्याद्विश्रधर्मः सुखदोऽसुशान्तयै,

ज्ञात्वेति पूर्वोक्तविधिर्विधेयः ।।242।।

यतस्त्रिलोके स्वरसस्य पानं,

स्याच्छुद्धचिद्रूपसुखस्य चर्चा ।

आचन्द्रतारार्कमितीह कीर्ति-

र्गृहे गृहे मंगलगीतवाद्यम् ।।243।।

अर्थ- भव्य जीवों को सदाकाल समस्त प्राणियों के हित के लिए ही अपने धन का अपनी बुद्धि का अपने समय का और अपनी शक्ति का उपयोग करना चाहिए। यही समस्त संसार का हित करने वाला विश्व धर्म है। यही समस्त प्राणियों को सुख देने वाल है और इसी धर्म को धारण चर्या करने वाला, बैठने वाला व सोने वाला समकरने से समस्त संसार को शांति प्राप्त होती है। यही समझकर समस्त जीवों को इस विश्वधर्म का पालन करते रहना चायिे, क्योंकि इस विश्वधर्म के पालन करने से आत्मजन्य अनुपम सुख्या की प्राप्ति होती है, चिदानंद स्वरूप शुद्ध आत्मा से उत्पनन् होने वाले सुख की प्राप्ति होती है तथा इस संसार में जब तक तारे और चन्द्रमा व सूर्य विद्यमान है तब तक कीर्ति फैलती रहती है और तब तक ही घर-घर मंगल गान होते रहते हैं।

भावार्थ- समस्त जीवों के कल्याण करने की भावना रखना सवीत्कृष्ट भावना है। परंतु यह भवना आत्मा के कल्याण करने की होनी चाहिये, केवल लौकिक उपहार करने की भावना रखना उत्कृष्ट भावना नहीं है। संससार में ऐसे बहु से जीव देखे जात हैं जो सदाकाल दूसरों का उपकार किया करते है परंतु वे न तो अपने आत्मा का कुछ कल्याण करते हैं और न अन्य आत्माओं का कल्याण करते हैं वे केवल दिखाऊ लौकिक उपकार किया करते हैं तथा वे उस काम में यहाँ तक लीन हो जाते हैं कि वे अपना धर्म कर्म भी छोउ॰ देते हैं। परोपकार करने वाले अनेक जैनी भी ऐसे देखे गये हैं जो उसी परोपकार में लगे रहने के कारण बिना छना जैसा मिला वैसा पानी पी लेते हैं, रात में भोजन कर लेते हैं और देवदर्शन तक नहीं करते। यदि उनसे कहा जाता है तो वे यही कहते हें कि हमें इस काम से अवकाश ही नहीं मिलता। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि यह उनका परोपकार आत्मा के कल्याण का कारण नहीं है। उस थोड़े से लौकिक परोपकार से न तो अन्य जीवों के आत्मा का कल्याण होता है और न अपने आत्मा का कल्याण होता है। इसलिए ऐसे लौकिक परोपकार से आत्मा कोई कल्याण नहीं होता । इस जीव को सबसे पहले अपने आत्मा का कल्याण कर लेना चाहिए। जो आत्मा अपना कल्याण कर लेता है, अपने क्रोध, मान, माया, लोभ, मद, मत्सर, काम आदि समस्त विकारों को दूर कर अपने आत्मा को शुद्ध बना लेता है वही आत्मा अन्य जीवों का कल्याण कर सकता है। विकाररहित आत्मा से व्वयमेव दूसरों की आत्मा का कल्याण हो जाता है। यहाँ तक मुनियों की परम निर्विकार और अत्यंत शांतमुद्रा देखकर सिंह, व्याघ्र आदि क्रूर पशु भी शांत हो जाते हैं और वे स्वयं निर्विकार होकर उन मुनिराज के समीप बैठ जाते है। इससे सिद्ध होता है कि आत्मा का कल्याण विकारों के त्याग करने से होता है। अतएव उन विकारों के त्याग करने व कराने के लिए ही अपना सब शक्ति लगा देनी चाहिए, उन्हीं विकारों के त्याग करने कराने के लिए अपना सब धन लगा देना चाहिए, उन्हीं विकारों के त्याग करने कराने के लिए समस्त बुद्धि और अपना समस्त समय लगा देना चाहिए। इसके

सिवाय अपने पास जो कुछ है वह सब आत्मा के कल्याण करने कराने में ही लगा देना चाहिए। विकारों को त्याग कर देने से ही आत्मा शुद्ध होता है, आत्मजन्य अनुपम सुख की प्राप्ति होती है, शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा का अनुीाव होता है और शुद्धोपयोग की प्राप्ति होकर शीध्र ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।। यही सवीत्कृष्ट आत्म कल्याण है। तथा उन सिद्धों का स्वरूप चिंतवन कर अनेक जीव मोक्षमार्ग में लग जाते हैं यहाँ तक कि तीर्थंकर परमदेव भी उन्हीं सिद्धातों का स्मरण कर दीक्षा लेते हैं। यह सवीत्कृष्ट परोपकार कहलाता है। यही समझकर सबसे पहले आत्मकल्याण में लगाना चाहिए और फिर अन्य जीवों को मोक्षमार्ग में लगाकर अन्य जीवों का कल्याण करते रहना चाहिए। यही सबसे उत्कृष्ट अपना और दूसरों का उपकार है, आर इसी को विश्वधर्म कहते हैं

शुद्धोपयोग की सिद्ध के लिए ध्यान का फल दिखलाते हैं-

शुद्धोपयोगसिद्धयर्थं फलं ध्यानस्य. कथ्यते ।।

अर्थ- आगे शुद्धोपयोग की सिद्धि के लिए उत्कृष्ट ध्यान का फल दिखलाते हैं।

एकाग्रचिन्ताप्रविरोधनामं,

ध्यानं च शुक्लु सुखशांतिमूलम् ।

कुर्वन्प्रवेशं ह्यचले स्वधर्मे,

मिष्टातिमिष्टं स्वरसं पिवन् हि ।।244।।

शुद्धोपयोगी सहजेन साधुः,

प्राप्रोति शुद्धां निजराजधानीम् ।

स्वानन्दतुष्टेन सूखप्रदेन,

श्रीकुन्थुनाम्ना वरसूरिणोक्तम् ।245।।

अर्थ- समस्त चिंतवनों को रोककर केवल अपने शुद्ध आत्मा में लीन होकर उसी अपने शुद्ध आत्मा का चिंतन करना शुक्लध्यान कहलाता है। यह शुक्लध्यान अनंतसुख और अनंत शांति का मूल कारण है। जो ध्यानी महात्मा अपने निश्चल आत्मधर्म में लीन हो जाता है वह मीठे से मीठे शुद्धात्मजन्य अनपम सुख का पान करता रहता है। तनदंतन वह शुद्धोपयोग को धारण करने वाला साधु अत्यंत शुद्ध ऐसी अपनी मोक्षरूपी राजधानी में जा पहुँचता है। इस प्रकार अपने आत्मजन्य सुख मं लीन रहने वाले और समस्त जीवों को सुख देने वाले आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागर ने निरूपण किया है।

भावार्थ- अन्य समस्त चिंतवनां का तयागकर किसी एक पदार्थ का चिंतन करना ध्यान है। उस ध्यान के चार भेद है। आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान। जो ध्यान सिी दुःख से किया जाता है उसको आर्तध्यान कहते ह।। यह आर्तध्यान तिर्यंचगति का कारण ह।। जो ध्यान रूद्रपरिणामों से व हिंसा झूठ चोरी रूप क्रर परिणामों से किया जाता है उसको रौद्रध्यान कहते हैं यह रौद्रध्यान नरक का कारण है। जो ध्यान धर्म के चिंतवन से किया जाता है उसको धर्म्यध्यान कहते हैं यह धर्मध्यान मनुष्य व देवगति का कारण है। जो ध्यान केवल शुद्ध आत्मा से आत्मा में किया जाता है उसको शुक्लध्यान कहते हैं यह शुक्लध्यान मोक्ष का कारण है। इस शुक्लध्यानी के ही द्वारा आत्मा के घातिया कर्मो का नाश होने से अनंतचतुष्टय की प्राप्ति होती है। तथा अनेक अतिशयों की प्राप्ति होती हैं तदनंतर उसी शुक्लध्यान के द्वारा वह अघातिया कर्मों का भी नाश कर डालता है और फिर उसी समय में अपने-अपने शुद्ध आत्मा की सदाकाल रहने वाली मोक्षरूपी राजाधानी में जा विराजमान होता है। अनन्तर वह अनंतानंतकाल तक वहां पर अनंतसुख का अनुभव करता है। मोक्ष किसी काल में भी किसी प्रकार का विकार उत्पनन नहीं होता है। यही समझकर भव्यजीवों को आर्तध्यान और रौद्रध्यान का सर्वथा त्याग कर धर्म्यध्यान का चिंतवन करते रहना चाहिये और फिर धीरे-धीरे

शुक्लध्यान का अभ्यास करते रहना चाहिए। यह शुक्लध्यान ही अनंतसुख का कारण है।

संक्षेप अशुभोपयोग, शुीोपयोग और शुद्धोपयोग इन तीनों प्रकार के भावों को फल दिखलाते हैं-

संक्षेपतो वर्ण्यत एव चाथ ।

भावत्रयाणां च फलस्वरूपम् ।।

अर्थ- अब आगे अत्यंत संक्षेप अशुभोपयोग, शुीोपयोग और शुद्धोपयोग इन तीनों प्रकार के भावों का फल दिखलाते हैं।

दुःखप्रदा श्रभ्रगतिर्भवेद्धाऽ-

शुभोपयोगात्कुगतिस्तिरश्राम् ।

दरिद्रता हीननृता पशुत्वं,

मायाविता बंधुविहीनतादिः ।।246।।

शुभोपयोगेन निरोगता स्यात,

साम्राज्यलखमीः सुखदा स्वदासी ।

धर्मानुकूलः सुकुटुम्बवर्गः,

सुमान्यता श्रेष्ठजनैश्र पूजा ।।247

शुद्धोपयोगेन निजाश्रितेन,

स्वराज्यलक्ष्मीश्र भवेत्स्वदासी ।

गतिः स्थितिः सौख्यमये स्वधर्मे,

चिदात्म के स्वात्मर से हि तृप्तिः ।।248।।

एवं नृणां कारणकार्यभेदाद्-

भवेद्धि भेदः खलु तत्फलेऽपि ।

नानाव्यथादः सुखदः सदैव,

शंका न कार्या विषये किलास्मिन् ।।249।।

अर्थ- अशुभोपायोग का फल दुःख देने वाली नरकगति व तिर्यंच गति का प्राप्त होना है, अथवा दरिद्रता का होना, नीच मनुष्य होना, पशु होना, मायाचारीपना करना और भााई बंधुओं से रहित होना आदि सब अशुभोपयोग का फल है। शुीोपयोग के फल से निरोग शरीर प्रापत होता है, सुख देने वाली साम्राज्य लक्ष्मी अपनी दासी हो जाती है। ध्शर्म के अनुकूल चलने वाले कुटुंब की प्राप्ति होती है, और त्तम मान्य मनुष्यों के द्वारा मान्यता तथा पूज्यता प्रापत होती है। केवल अपने शुद्धात्मा के ंिआश्रत रहने वाले शुद्धोपयोग के फल से मोक्षरूप स्वराज्य लक्ष्मी भी अपनी दासी ाहे जाती है, अनंत सुखमय आत्मा के शुद्धस्वरूप में स्थिति व चर्या प्राप्त हो जाती है और शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मसुख में अनंततृप्ति हो जाती है। इस प्रकार मनुष्यों के कारण रूपकार्य के भेद से उनके फलों मे भी भेद हो जाता है किसी कारण रूपकार्य का फल अनेक प्रकार के दुःख देनेा वाला होता है और किसी कारण रूपकार्य का फल सुख देने वाला होता है। इस विषय में किसी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिये।

भवाार्थ- इस संसार में नरक निगोदादिक के जितने दुःख है, तिर्यंच और मनुष्ययोनि में जितने दुःख हैं, चाहे वे शारीरिक दुःख हों, चाहे मानसिक दुःख हो, चाहे आकस्मि दुःख हो, और चाहे कौटाम्बि दुःख हो, वे सब दुःख अशुभोपयोग से ही प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार इस संसार में जिनंत सुख है, चाहे वे सुख धन से प्राप्त होने वाले हो, चाहे इन्द्रियों से प्राप्त होने वाले हों, चाहे कुअुंब से प्रापत होने वाले हो और चाहे अन्य किसी प्रकार से उत्पनन होने वाले हों सब इन्द्रियजन्य सुख व सांसारिकक सुख शुभोपयोग से प्रापत होता है। शुद्धोपयोग का फल मोक्ष है। इस प्रकार कारण के भेद से कार्य में भेद अवश्य हो जाता है। इसमें किसी

प्रकार की शंका नहीं है।

सब ग्रंथ का सारांश बतलाते है।-

कौ केवलं क्लेशकरांस्ति निंद्योऽ-

शुीोपयोगो विषवद्व्यथादः ।

शुीोपयोगो स्वसुखप्रदोऽस्ति,

शुद्धोपयोगो निजसौख्यदाता ।।250।।

ज्ञात्वेति मुक्त्वा ह्यशुभोपयोगं,

कचित्प्रवृत्तिश्र शुीोपयोगे ।

कुर्वन्सदा तिष्ठतु सर्वलोकः,

शुद्धोपयोगे हि ममापि चात्मा ।।251।।

अर्थ- इस समस्त ग्रंथ का सार यह है कि इस संससार में अशुभोपयोग अत्यंत क्लेश उत्पनन करने वाला है, अत्यंत निंदनीय है और विष के समान दुःख देने वाला है तीि शुभोपयोग इंद्रियजन्य सुखों को देने वाला है और शुद्धोपयोग अपने शुद्ध आत्मा से उत्पनन होने वाले अनंतसुख को देने वाला है। यही समझकर अशुभोपयोग का सर्वथा त्याग कर शुभोपयोग में लगकर समसत जीवों को शुद्धोपयोग में स्थिर हो जाना चाहिए। इसी प्रकार मेरा यह आत्मा भी इसी शुद्धोपयोग में सदाकाल स्थिर रहे ऐसी मैं भावना करता हूँ।

भावार्थ- इस ग्रंथ में अशुभोपयोग, शुीोपयोग और शुद्धोपयोग इन तीनों उपयोंगां का फल दिखलाया है। इन तीनों उपयोगों से अशुभोपयोग तो सर्वथा त्याग करने योग्य है। इसलिए उसका तो सर्वथा त्याग ही कर देना चाहिए। शुभोपयोग भी यद्यपि त्याग करने योग्य है तथापि जब तक शुद्धोपयोग की प्राप्ति नहीं होती तब तक शुीोपयेाग में अपनी प्रवृत्ति रखनी चाहिये। शुीोपयोग में प्रवृत्ति् रखते हुए भी शुद्धोपयोग का

अभयास करते रहना चाहिये। और शुद्धोपयोग की प्राप्ति होने पर शुीोपयोग का भी सर्वथा त्याकग कर देना चाहिये। इस संसार में शुद्धोपयोग ही मोक्ष का सुख देनेा वाला है शेष शुीोपयोग और अशुभोपयोग दोनों ही संसार के कारयण है। इस प्रकार आत्मा का हित करने वाला और मोक्ष के अनंत सुख्या देने वाला एक शुद्धोपयोग ही है। अतएव समस्त जीव इसी शुद्धोपयोग को प्राप्त कर इसी में सदाकाल स्थिर बने रहें तथा मेरा आत्मा भी इसी शुद्धोपयोग को प्राप्त कर सदाकाल इसी में स्थिर बना रहे। ग्रन्थकर्ता आचार्य कुंथुसागर स्वामी ऐसी ही भावना करते हैं।

ग्रंथ उपसंहार करते हैं-

एवं यथावत्कथितं स्वरूपं,

भावत्रयाणां सकलात्मशुद्धयै ।

स्वानंदतुष्टेन तमोहरेण,

श्रीकुंथुनामा वर सूरिणात्र ।।252।।

अर्थ- इस प्रकार अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करने वाले और अपने आत्मा के शुद्धस्वरूप में व आत्मजन्य सुख में संतुष्ट रहने वाले आचार्यवर्य मुझ श्री कुंथुसागर स्वामीने समस्त जीवों की आत्माओं को शुद्ध करने के लिये अशुभोपयोग शुभोपयोग और शुद्धोपयोग इन तीनों भावों का यथार्थस्वरूप इस ग्रंथ मे निरूपण किया है।

भावार्थ- अनेक प्राकर से अशुभोपयोग का फल दिखलाया है, अनेक प्रकार से शुभोपयोग का फल दिखलाया है, और अनेक प्रकार से शुद्धोपयोग का स्वरूप दिखलाया है। समस्त जीव शुभोपयोग व अशुभोपयोग का त्याग कर शुद्धोपयोग धारण कर अपने आत्मा को शुद्ध बनावें और शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लें इसी अभिप्राय से इनका स्वरूप दिखलाया है। इनको जानकर समस्त भव्यजीवों को शुद्धोपयोग धारण

करने का प्रयतन् करते रहना चाहिये यही इस ग्रंथ के निरूपण करने का अभिप्राय है। इति शम् ।

इति श्रींआचार्यवर्य श्रीकुंथुसागरविरचिते भावत्रयफल-

प्रदर्शिनाम्नि ग्रंथे शुद्धोपयोगवर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः ।

इस प्राकर आचार्य श्रीकुथुंसागर विरचित भात्रयफलप्रदशी नाम के ग्रंथ की 'धर्मरतन्' पं0 लालाराम शास्त्री विरचित सरल हिन्दी भाषा टीका में शुद्धोपयोग को वर्णन करने वाला यह तीरा अध्याय समाप्त हुआ।

अथ प्रशस्तिः

आगे प्रशस्ति लिखते हैं-

दीक्षागुरोः शान्तिसुधाकरस्य,

कृपाप्रसादात्सुखशान्तिदातुः ।

विद्यागुरोरेव सुधर्मसिन्धो-

राबालवृद्धदिविबोधनार्थम् ।।243।।

भवत्रयाणां च फलप्रदर्शी,

ग्रंथो मयायं लिखितो मनोज्ञः ।

आचार्यवर्येण विचक्षणेन,

श्रीकुन्थुनाम्नात्मरतेन नित्यम् ।।254।।

अर्थ- सदाकाल अपने आत्मा में लीन रहने वाले और अत्यंत बुद्धिमान ऐसे आचार्यवर्य मुझ श्री कुंथुसागर स्वामीने शुीोपयोग अशुभोपयोग और शुद्धोपयोग इन तीनों भावों के फल को दिखलाने वाला यह मनोहर ग्रंथ सुख और शान्ति को देने वाले और चन्द्रमा के समान महाशांत ऐसे आचार्यवर्य मेरे दीक्षा गुरू श्रीशान्तिसागर स्वामी की तथा मेरे विद्यागुरू आचार्यवर्य श्रीसुधर्मसागर की परमकृपा के प्रसाद से लिखा

गया है। बालक वृद्ध व युवा सब ही जीव पढ़कर अपने आत्मा का कल्याण करें इसी अभिप्राय से यह ग्रंथ लिखा गया है।

भावाथ्र- आचार्चवर्य श्रीशातिन्तसागर जी महाराजा मेरे दीक्षा गुरू हैं तथा आचार्यवर्य सुधर्मसागर जी महाराजा मेरे विद्यागुरू हैं इन दोनों परम वीतराग निर्ग्रंथ गुरूओं की कृपा ही मैंने इस ग्रंथ को समाप्त किया है।

ग्रंथं ह्यमुं वांच्छितदं सदा ये,

स्मरन्ति गायन्ति पठन्ति मतर्या ।

स्वमीक्षलक्ष्मीं क्रमतो लभन्ते,

यथार्थविद्यां सुगुरोश्र भक्तः ।।255।।

अर्थ- जो श्रेष्ठ गुरूओं के भक्त इच्छानुसार फल देने वाले इस ग्रंथ को सदाकाल पढ़ते हैं स्मरण करते हैं व इसको गाते हैं वे पुरूष यथार्थ विद्या को प्राप्त होते हैं और अनुक्रम से स्वर्ग मोक्ष की लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ- इग ग्रंथ के पठन-पाठन करने का फल आत्मा के शुद्धस्वरूप का ज्ञान होना है और अंतिम फल स्वर्गों के सुख भोगकर मोक्ष लक्ष्मी का प्राप्त होना है। अतएव इस ग्रंथ का पठन-पाठन अवश्य करते रहना चाहिये।

ग्रंथकार अपनी लघुता दिखलाते हैं-

ग्रंथे क्वचिन्मे स्खलनं भवेच्चेत,

बुधा यतीशाः खलु शोधयित्वा ।

पठन्तु नित्यं परिपाठयन्तु,

ग्रंथस्य भावोऽस्ति च कर्तुरस्य ।।256।।

अर्थ- मेरे अज्ञान व प्रमाद से यदि गंथ में कोई भूल रह गई हो तो बुद्धिमान मुनियों का उसका संशोधन कर लेना चाहिये और फिर सदाकाल उसका पठन-पाठन करते रहना चाहिये। इस ग्रंथ की रचाना करनेवाले का यही अभिप्राय है।

भावार्थ- हम लोग अल्पज्ञ है। अल्पज्ञों से भूल होना स्वाभाविक है। इसलिये यदि इसमें किसी छेद मात्रा अक्षर व किसी आिाप्राय की ज्ञील हो तो पंडित मुनीश्वरों को उसका संधोधन कर लेना चाहिये और फिर उसका पठन-पाठन करना चाहिए।

ग्रंथ रचना का समय और स्थान बतलाते हैं-

मोक्षे गते महावीरे विश्वशान्तिविधायके ।

चतुर्विंशति संख्याते सप्तषष्ठयधिके शते ।।247।।

पौषशुक्लचतुर्दश्यां शुभे च रविवासरे ।

भारते गुर्जर देशे सुंदरे सादरापुरे ।।258।।

भावत्रयफलानां हि प्रदर्शी सर्वदेहिनाम् ।

ग्रंथोऽयं लिखितो भव्यो भव्यानां बोधहेतवे ।।259।।

प्रणेता ग्रंथरत्नानां आचार्यः कुंथुसागरः ।

मोक्षमार्गप्रदीपाद्यनेकेषां वोधकारिणाम् ।।260।।

अर्थ- अपने आत्मा में लीन रहने वाले आचार्य श्रीकुंथुसागर स्वामी ने आत्मज्ञान उत्पनन करने वाले भव्यों को ज्ञानप्राप्ति के लिए मोक्षमार्ग प्रदीप आदि अनेक ग्रंथरतनें के रचना की है। तथा उन्हीं श्रीकुंथुसागरस्वामी ने समस्त संसार में शांति उत्पनन करने वाले भगवान् महावीरस्वामी के मोक्ष जाने के अनंतर चैबीस सो सडसठवे वर्ष के पौष शुक्ला चतुर्दशी रविवार के दिन भारतवर्ष के अंतर्गत गुजरात देश सादरानगर के जिनचैत्यालय में समस्त जीवों को अशुभोपयोग शुभोपयोग

और शुद्धोपयोग इन तीनों भावो के फल को दिखलाने वाला भावत्रयफलप्रदर्शी नाम के सुंदर ग्रंथ की रचना समाप्त की है।

भावार्थ- आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागर ने चतुर्विंशतिस्तोत्र, मोक्षमार्गप्रदीप, सुधर्मोपदेशामृतसार, शांतिसुधासिंधु, प्रतिक्रमणसार, ज्ञानामृतसार, बोधामृतसार, श्रीशांतिसागरचरित्र आदि अनेक ग्रंथों की रचना की है। उन्हीं आचार्य श्रीकुंथुसागरस्वामीने इस भावत्रयफलप्रदर्शी ग्रंथ की रचना की है। यह रचना पौष शुक्ला चर्तुदशी रविवार के दिन वीर निर्वाण संवत् चैबीसौ सडसठवें वर्ष में हुई है तथा सादरा नगर में समाप्त हुई है।

अंति मंगलाचारण करते हैं-

शान्तिनाथः सदा जीयाज्जगच्छान्तिविधायकः ।

सर्वे भव्या परां शांति लभेरन् तत्प्रसादतः ।।261।।

अर्थ- समस्त संसार में परमशांति उत्पनन करने वाले सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शांतिनाथ परमदेव सदाकाल जयशील बने रहें। तथा उन्हीं भगवान् शांतिनाथ के प्रसाद से समस्त भव्यजीव मोक्षरूप परमशांति को प्राप्त हों।

समाप्तोऽयं गंथः।